श्रीहरिः।

॥ बिहारीबिहार ॥

बिहारीसतसई पर कुण्डलियामय ग्रन्थ।

(सुकवि)

भारतरत्न-पण्डित-अम्बिकादत्त-व्यास-साहित्याचार्य्य विरचित।

भारतसाम्राज्यव्यवस्थापकसभा तथा 'रायलएशियाटिक सोसायटी' कलकत्ता के सभासद और अवध "ब्रिटिश् इण्डियन् असोसियेशन्" के सार्वदिक सभापति, श्रीमन्महाराजाधिराज द्विजराज आनरेब्ल श्रीप्रतापनारायणसिंह देव, के॰ सी॰ आई॰ ई॰ कोशलाधीश्वर वीरवर को समर्पित और उनी की आज्ञा तथा सहायता से प्रकाशित।

भारतजीवनयन्त्रालय में मुद्रित।

संवत् १९५५।

पहली बार] [एक हज़ार

विषयों की सूचनिका ।

श्रीपण्डित अम्बिकादत्त व्यास।

सं॰ १९५३ में, नागपुर में, सोमैया नर्सूने जो फोटो उतारा था। उसी से यह चित्र बनाया गया है।

॥ श्रीहरिः ॥

सादर समर्पण ।

श्रीमन्नन्दनन्दन के अनुग्रह से, जो विद्वान् जनों के एकमात्र आधार हैं, कवि-जनों के गुणग्रहण के लिये जिनका अवतार है, जो सरस कविता के रिझवार हैं, गुणी के लिये दया के पारावार हैं, गुप्त औ लुप्त विद्याओं के प्रचार सनातन सद्धर्म के उद्धार निज प्रजा में सार्वदिक सुख के संचार स्वदेश के उपकार राजनीति के अ-धिकार तथा शान्तिमय विचार से भरे जिनके आचार हैं, उन्ही परमोदार धीरधुरन्धर वीरवर अयोध्यानरेश्वर श्रीयुत महाराजाधिराज आनरेब्ल सर प्रतापनारायणसिंह देव के० सी० आ० ई० महामहोदय के करकमल में श्रीराधामाधव के प्रसाद स्वरूप तथा आशीर्वाद की कुसुमाञ्जलिस्वरूप यह विहारीविहार ग्रन्थ अर्पित है । यह भला बुरा जैसा कुछ हो परन्तु वे इस शुभचिन्तक को निज समझ अङ्गीकार करें यही प्रार्थनीय है ।

इस ग्रन्थ का प्रकाश उन्ही के उत्साह औदार्य और साहाय्य से हुआ है इसलिये उन पर जितने धन्यवाद और आशीर्वादों की कुसुमवृष्टि की जाँय सो थोड़ी हैं । ऐसे महाराजों पर परमात्मा सदा अनुग्रह करैं ॥

इति ।

माघ शुक्ल श्रीपञ्चमी ।
संवत् १९५४

तदीय सार्वदिक शुभचिन्तक
अम्बिकादत्त व्यास ।
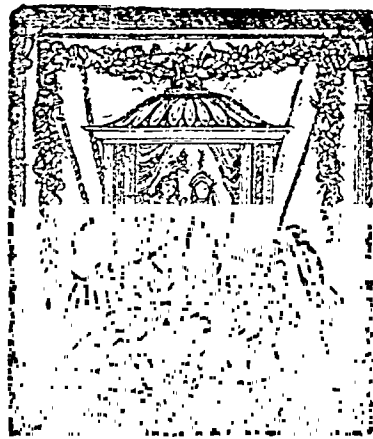
॥ श्रीः ॥

श्रीयुत विविधविरुदावलीविराजमान महाराजाधिराज आनरेबुल सर् प्रतापनारायणसिंह बहादुर के. सी. आई ई. अयोध्यानरेश की सेवा मैं।

कवित्त।

मनिगनमण्डित सु मोर को मुकुट मञ्जु माथे पै सवारे कर मुरली लियो करैं।
सुन्दर सलोने स्याम सोहने सयाने सुठि सुकवि समूहन को सरस हियो करैं॥
एहो महाराज परतापनारायणसिँह तेरी परजा मैं सदा कुसल कियो करैं।
आनँद के कन्द दुख दन्द कों मिटाइ तोपै नन्द के नँदन दीठ दया की दियो करैं॥१॥

कोसलानरेस तोपै कोसलानरेस सदा करुना की कोर करै देवन को सिरताज।
पारवतीपति सब बातन मैं पति राखै परमपवित्र तेरो हियरो करै दराज॥
सुकवि सुजान सबै सुजस बढ़ावैं तेरो पण्डित महान तेरो मण्डित करैं समाज।
अधिक बढ़ावै परताप नारायन तेरो एहो परतापनारायनसिंह महाराज॥२॥

चुटकी बजैबेवारे चुहल चलाक चुस्ती चक्कर जमाये रहैं केती सरकार मैं।
छोकारे हँसोकारे हहास कै हँसैबेवारे हिले मिलें गिने जात कहूं सरदार मैं॥
कञ्चन लुटत काहूं कञ्चनीप्रपञ्चन मैं रञ्च न विचार देख्यो गुनी उपकार मैं।
पण्डित महानन को सुकवि सुजानन को देख्यो सनमान एक तेरे दरबार मैं॥३॥

मिलिबे के हेत पाग कसिबे चहत जौलों तौलों सिरपेच मोती भब्बा लहरात हैं।
आसिष कों गोजा उपवीत के गहत कर कङ्कन औ मूंदरी की छवि छहरात हैं॥
पावत तुरङ्ग औ मतङ्ग किते चलतें हीं भूमि औ भवन बन वाटिका सुहात हैं।
आप की नजर तो परत कछु पाछें पर पहिलें हीं सुकवि निहाल होइ जात हैं॥४॥

मत्त गज मदधारा कीचर मचाय रही आँगन बिगारे देत इत तो जियो करो।
रङ्ग रङ्गवारे त्यों कुरङ्ग से तुरङ्गन सों बाड़ा भरि दीनो एजू यामें का लियो करो॥
मनिगन मोतिनको बोझा लादि दीनों अङ्ग सोना सों लकरि मति काठिन हियो करो।
एहो महाराज परतापनारायनसिंह सुकवि सों ऐसी अनरीति ना कियो करो॥५॥

गुनगनमण्डित सुपण्डित कों देखत ही करत निहाल ऐसो औढरढरत है।
जाचक कों दान दै करत अजाचक है विधि की दरिद्ररेखा छन में हरत है ॥
रस को विकास करै काव्य को प्रकास करै जस को उजास करै आनँद भरत है।
वाह करी जौपै रीझि कोसलनरेस नै तो दूजे को सुकवि परवाह ना करत है ॥६॥

दीह अथादीठ दै के देखत ही दीनन के दुरित उभारे दुख भारे दुरिजात हैं।
सुकवि सुजानन की कविता सुनत ही मैं सुजससमूह दोऊ ओर लहरात हैं ॥
छनक अलाप ही मैं करत गुनीजन के सातहु अभाग कै विलाप भहरात हैं।
वाह वाह भाषत ही कोसलानरेस जू के आह आह करि दूरि दारिद परात हैं ॥७॥

घर घर घुस्यो फिरै घेरत घनाघनन घूमै गिरिकन्दर पुरन्दर के वासा है।
फूल्यो सेसफन पैं फिरत फहराय रह्यो भेटि रमाकन्त अन्त चाहत अकासा है ॥
रोम रोम माहिँ रम्यो सुकबि सुजान हू के छीनत दिगन्तदन्तिदल को अवासा है।
लंघत अचल तलातलहू के तल जात रावरो सुजस करै अजब तमासा है ॥ ८ ॥

चन्दा की किरन गहि चढ़त अकास माहिँ तारन कों छूइ गहै भानुछटा छटकी।
दिग्गज विकट कट चटपट थाप मारि सेस के निकट जाय देत ताहि हटकी ॥
सुकवि चमकि चकाचौंध कै गहत गैल झट बंसीवट पनिघट गंगातट की ।
वटा सो उछरि बिधिअटा लौं दिखात खरो सुजस तिहारो है करत कला नट की ९॥

गुनिगनमण्डित सुपण्डित हू गावैं जाहि परम अखण्डित जो सुन्दर सरस है ।
जाको नाहिँ मापक जो व्यापक दुनी मैं देख्यो मन और वानी को न जामैं कछू लस है॥
सुकवि सुजान घन आनँद निधान जाके ज्ञान भये ज्ञानी हिय होत परबस है ।
एहो परतापनारायनसिंह महाराज पूर्न परब्रह्म ऐसो रावरो सुजस है ॥ १० ॥

दूषन-रहित कवि भूषन ज्यों मान पायो सिवराज वीर मरहट्टा मण्डलेस सों ।
पायो त्यों विहारी नाम गाम सङ्ग सान घनो जयसिंहराज जयनगरनरेस सों ॥
साल औ दुसाल सङ्ग लाल कवि मान पायो महाराज छत्रसाल भूपति सुबेस सों ।
अस्वादत्त सुकवि त्यों दान सान पायो परतापनारायनसिंह भूप अवधेस सों ॥११॥

जाकि खानदान में भये हैं ज्ञानवान जन दुनी में गुनी कों एक सोई पहिचानै गो
जाको होनहार ह्वै है भलो सब भाँति ही तें सोई बुध पण्डित की प्रीति उर आनै गो॥
भाग में वद्यो है जाके कछु हू अनन्दकन्द कवितावितान के सु सोई रस सानै गो ।
सुन्दर सुजस जाकि भाल में लिख्यो है सोई सुकवि सुजानन को मान करि मानै गो॥

* रोज रोज ओज कौन भोज के वखानते औ कौन इन्द्रजीत हू के खोज माहिँ परते।
आज सिवराज महाराज कों वरनते को कौन छत्रसाल के विसाल नाम धरते ॥
लगतो कहाँ पै पतो राजा श्रीहरष हू को कौन सिवसिंहहू के सुजस उचरते ।
विक्रम के विक्रम के क्रम कौन जानतो जो सुकवि सुजान इनैं अमर न करते॥१३॥

सोरठा।

धन्य धन्य अवधेस, सुकवि सुजानन आदरत ।
तुअ जस देस विदेस, रहहु अचल अचलेस जिमि ॥ १४ ॥
धनि ते सुकवि सुजान, सरस सरल कविता रचत ।
पावत तुमसों मान, अचला पुनि कीरति लहत ॥ १५ ॥
धनि सो रसिकससाज, सरस कवित जिनकों रुचत ।
धनि सो नर सिरताज, जिन हिय है हरि चरन रति ॥ १६ ॥

* इन्द्रजीत ओरछा के राजा ने केशव कवि को २१ ग्राम दिये। शिवसिंह मिथिलानरेश ने पण्डित विद्यापति को बिसपी ग्राम दिया। शिवाजी ने भूषण को ५२ हाथी २५०००) औ ग्राम दिये। छत्रसाल ने लालकवि को जीविका दी। विक्रम के नवरत्न थे। भोज एक श्लोक बनानेवाले को एक लक्ष मुद्रा देते थे।

श्रीमन्महाराजाधिराज अयोध्यानरेश्वरवीरवर आनरेबूल सर प्रतापनारायणसिंह बहादुर के. सी. आई. ई.।

अवध के इतिहास जानने वालों में ऐसा कौन होगा जो अवधधेश श्रीदर्शनसिंह * राजा बहादुर को न जानता हो। इनको शाही दर्बार से राजा बहादुर को पदवी मिली थी। अयोध्या की शोभा इनके कारण अत्यन्त ही बढ़ी थी प्रसिद्ध सूर्यकुण्ड और महाप्रासाद शाहगञ्ज इन्हीं का बनाया तथा बसाया है। श्रीअयोध्या में इनके कामदारों के बनाये भी बहुत मन्दिर हैं। ये बड़े वीर तथा योद्धा थे। राजाशिवदीनसिंह बलदेवसिंह प्रभृति अनेक राजाओं से युद्ध कर इनने विजयलाभ किया था। अयोध्या में शिव स्थापन किया यह दर्शनेश्वर का विशाल मन्दिर अद्यावधि वर्त्तमान महाराजा साहब के उद्यान के मध्य में विराजमान है और उच्च सौवर्ण शिखरों के अग्रों से मेघमण्डली में महाराज दर्शनसिंह का प्रताप लिख रहा है, ऐसा विदित होता है कि इसी की रगड़ की लील पड़ने से चन्द्रमा सकलङ्क हो गया है॥ इनके बनाये और भी अनेक स्थान हैं। इनके भाई का नाम बख़्तावरसिंह था और वे सदा लखनऊ के पादशाह (शआदत अली खां) के साथ रहते थे और उनके अति कृपापात्र थे॥

दर्शनसिंह राजा बहादुर को सन् १८०७ में सुलतानपुर और फ़ैज़ाबाद के नाज़िम का पद मिला॥ और सल्तनत बहादुर की पदवी मिली संवत् १८०१ में सलतनत बहादुर महाराजा दर्शनसिंह राजा बहादुर इस संसार का त्याग कर गये और संवत् १८०२ में उनके सब से छोटे पुत्र महाराजा मानसिंह गद्दी पर विराजे॥ ये महाराज मानसिंह भी बड़े वीर और योद्धा हो गये हैं। ये अमेठी, टिकारी, टियरा, भदरगढ़, भिनगा आदि से लड़े थे और विजय कर पादशाह के अत्यन्त कृपाभाजन हुए॥ यहां तक कि जगन्नाथसिंह और रजावन्द सिंह इन दो बीर राजद्रोहियों को कोई भी वश में न ला सका था सो इनने रजावन्द को मारा और जगन्नाथ को पकड़ा। इसपर अतिप्रसन्न हो पादशाह ने अनेक राजा और तअल्लुक़ेदारों के देखते ही इन्हें अपने साथ गाड़ी पर बैठाया इनके अनेक बीरता के कार्य्यों पर प्रसन्न हो कर पादशाह ने इन्हें क्रमश: राजा बहादुर, सलतनत बहादुर कायमजङ्ग, सरकीबमर- कशान् राजेराजगान् इत्यादि पदवियाँ दीं। संवत् १८१२ में राजा बख़्तावरसिंह बहादुर के परलोक होने पर उनके राज्य का आधिपत्य भी इनही महाराजा मानसिंह बहादुर को मिला। संवत् १८१४ में जिस समय अचानक भारत वर्ष में घोर राज्यविद्रोह फैल गया था उस समय इनने ५० से अधिक अंगरेजों की प्राणरक्षा की थी इस पर अंगरेजी गवर्मेण्ट अत्यन्त ही प्रसन्न हुई यहां तक कि स्वयं महा राज का पद दिया और संवत् १८०७ में लखनऊ के भरे दरबार में उस समय के गवरनर जेनरल

---

* इनके भ्राता राजा बख़्तावरसिंह थे जिनके साकार यश: पटलस्वरूप, विशालशुभ्र सोपानयुत शि- लामयघाट श्रीअयोध्या में स्वर्गद्वारपर, शोभायमान है॥ और इनके पिता का नाम श्रीपुरन्दर था॥ इनके पूर्वजों में सदासुख पाठक बड़े यशस्वी औ प्रतापी हो गये हैं॥ यह विद्व शाकद्वीपी ब्राह्मण वंश हैं।

लार्ड लारेन्स ने इनको अति प्रशंसा की थी *। इनको गवर्मेण्ट से के॰ सी॰ एस॰ आई की उपाधि मिली थी। संवत् १९१६ में महाराजा ने राजद्रोहियों से जो तोप छीनी थी वह अभी तक राजभवन में विराजमान है। इनके सुयोग्य मन्त्री लक्ष्मणप्रसाद थे॥ महाराज को वीरता और सुशासन के सिवा विद्या को भी बड़ी रुचि थी यहां तक कि ज्योतिष में इनने यन्त्रराज बनवाया। और संगीत की भी इनके यहां बड़ी चर्चा रहती थी॥ संस्कृत में भी ये अद्वितीय पण्डित थे॥ इनने पन्द्रह श्लोक का काशीवर्णनात्मक एक अविमुक्तपञ्चदशी ग्रन्थ बनाया है वह पण्डित सूर्यवलिरामशर्मरचितटीकासहित वर्तमान महाराज बहादुर की आज्ञा से छपा है॥ व्रजभाषा में इन महाराज के रचित तीन ग्रन्थ मैंने देखे हैं। १ शृङ्गारलतिका (शृङ्गाररस के स्फुट कवित्त सवैये) २ शृङ्गारलतिका की टीका (व्रजभाषा गद्य में) ३ शृङ्गारचालीसी (कवित्त सवैये) ॥ महाराज ने निज विषय में केवल शृङ्गारचालीसी में इतना लिखा है॥

दोहा।

"अवध ईस मण्डन भुवन दर्शनसिंह नरेस।
तिन के यश सों सेत भो दिशि दिशि देश बिदेस॥ १॥
तिन को सुत अति अल्पमति मानसिंह द्विजदेव।
किय शृङ्गारचलीसिका हरिलीला पर भेव" ॥ २॥

इनकी रचित शृङ्गार लतिका की आदि और अन्त की कवितायें क्रमशः ये हैं। (इस ग्रन्थ में भी वंशचरित मिति आदि कहीं कुछ नहीं हैं, इसकी टीका में भी कुछ इस विषय का उल्लेख नहीं है इस लिये इसके बनने का समय मैं नहीं लिख सकता)

आज सुख सोवत सलोनी सजी सेज पैं घरीक निसि बाकी रही पीछिले पहर की।
भड़कन लागो पौन दच्छिन अलच्छ चारु चांदनी चहूँघाँ घिरि आई निसिकर की॥
द्विजदेव की सौं मोहि नेकहू न जानि पर्‍यो पलट गई धौं कबै सुषमा नगर की।
औरे मैन गति जति रैन की सु औरे भई औरे भई रति मति औरे भई नर की॥१॥

चित चाहि अबूझ कहैं कितने छबि छीनी गयन्दन की टटकी।
कवि केते कहैं निज बुद्धि उदै यहिं सीखी मरालन की मटकी॥

* उनने यों कहा था " You have, in my estimation, special claim to honor and gratitude, in asmuchas, at the commencement of the mutiny in 1857, you gave refuge to more than 50 English people in your fort at Fyzabad, most of whom were helpless women and children, and thus by God's mercy, were instrumental in saving all their lives.

द्विजदेव जू ऐसे कुतर्कन मैं सब की मति यौंही फिरै भटकी ।
वह मंद चलै किन भोरी भटू पग लाखन कौं अखियाँ अटकी ॥२॥

इनकी रचित शृङ्गार चालीसी में भी अच्छी कविता है उदाहरणार्थ कुछ उद्धृत की जाती है,—

आज मणिमन्दिर मनोजमद चाखे दोऊ लगनि लगालगि के मगन मजेज पर ।
द्विजदेव ताहू पैं दुहू के अलि आनन की दूनी दुति दै रही तमीपति के तेज पर ॥
नेसुक सम्हारि छूल वसन छरा की वन्द पौढ़ि रहे पानि धरि कमल मलेज पर ।
छूटे रति समर छपा को सुख लूटि दोऊ नींदे रति मदन उनींदे परे सेज पर ॥३०॥
खेद कढ़ि आयो वढ़िआयो कछू कंप मुखहू तें अति आखर कढ़त अरसै लगे ।
द्विजदेव तैसें तन तपत तँदूरन तें तपत तँदूर से सरीर झरसे लगे ॥
एते पै तिहारी सौं तिहारे विन श्याम वाम नैननि तें आँसूहू सरस वरसै लगे ।
एक रितुराज काल्ह आयो व्रजमाहिं आज पाँचौं रितु प्यारी के सरीर दरसै लगे ॥
वाँचत न कोऊ अव वैसिये रहति खास जुवती सकल जानगई गति वाकी है ।
झूठ लिखिवे की उन्हें उपजै न लाज केहूं जाय कुविजा के वसे निलज तियाकी है॥
दूसरी अवध द्विजदेव राधिका वै आगे वाँचै कौन नारि जौन पोढ़ छतिया की है ।
ऐसही सुखागर कहो सो कहों ऊधो इहाँ उठि गई व्रज तें प्रतीत पतिया की है ॥
अव मति दै री कान कान्ह की वसीठिनि पै झूठे झूठे प्रेम के पतीवन कों फेरि दै ।
उरभि रहीती जो अनेक पुरिपातें सोऊ नाते की गिरह मूंदि नैननि निवेरि दै ॥
मरन चहत काहू छैल पैं छवीली कोऊ हायन उँचाय व्रज वीथिनि में टेरि दै ।
नेह री कहां को जरि खेहरी भई तो मेरी देह री उठाय वाकी देहरी पै गेरि दै ॥"

इनके सभा पण्डित श्रीजगन्नाथ कवि ने कीर्ति मुक्तावली नामक संस्कृत में एक छोटा सा १५२ श्लोकों का ग्रन्थ बनाया है। उसमें महाराज का इतिहास और वर्णन लिखा है पर वह ग्रन्थ इतिहास ढङ्ग नहीं है काव्य ढङ्ग पर है। इस कारण संवत् आदि का कहीं पता नहीं लगता॥ संवत् १८२६ में गवर्मेण्ट ने इन्हें के. सी. एस. आई का पद दिया था॥

यों अत्यन्त प्रतिष्ठापूर्वक राज्यशासन कर सं० १८२७ में वे अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह इस असार संसार को छोड़ सुरधाम पधारे। जैसा कीर्ति मुक्तावली के अन्त में चिम श्लोक है।

"सप्तद्व्यङ्गशशाङ्कवत्सरवरे याम्यायने याम्यभेऽ
पौषे मासि सितेऽपराह्णसमये भौमे द्वितीयान्विते ।

कीर्त्तिं भूमितले निधाय महतीमर्द्धासनस्पर्द्धया,
सुत्रामण: स जगाम धाम विजयी श्रीमानसिंहो नृप: ॥"

श्रीयुत जी, ए, ग्रेयर्सन् साहब बहादुर ने लिखा है कि ये ही द्विज मन्नालाल थे परन्तु यह उने द्विज नाम पर भ्रम हुआ है। मन्नालालजी तो जयपुर प्रान्त के रहने वाले गौड़ थे काशी में रहते थे मेरे पूज्य पिता के शिष्य और मेरे मामा थे । तथा महाराज तो शाकद्वीपी ब्राह्मण और जगद्विदित अयोध्यानरेश थे।

विविध विरुदावली विराजमान वर्तमान महाराजाधिराज श्रीप्रतापनारायणसिंह * बीरवर इन्ही महाराज मानसिंह के नाती हैं। इनके बनवाये अनेक राजभवनों से श्रीअयोध्या भूषित है । और शृङ्गारबन चन्द्रभवन आदि अनेक दर्शनीय स्थान बने हैं। प्रति विजयादशमी पर श्रीमन्महाराज के यहां दूर दूर के गुणी पण्डित कविजन एकत्रित होते हैं और सबका यथोचित सम्मान होता है। श्री-महाराज कविता के ऐसे रसिक हैं कि उत्तम उत्तम कविताओं का संग्रह कर महाराज ने "रसकुसुमाकर" नामक ग्रन्थ छपवाया है और इसमें समस्त रस तथा हाव भाव के सम्बन्ध में उत्तमोत्तम चित्र दिये गये हैं यहां तक कि इस शृङ्खला का, लक्ष्य लक्षण तथा चित्र सहित अपूर्व ग्रन्थ आज तक देखने में नहीं आया ॥ गजदान अश्वदान भूमिदान आदि पौराणिक दानों में कोई बचा न होगा, महाराज सभी दान करते रहते हैं और तिसपर भी सादे स्वभाव से सब से मिलते हैं ॥ गवर्मेण्ट भी श्रीमहाराज का बार बार पदवीदान और विविध सम्मान से सदा आदर करती ही रहती है ॥ श्रीमान् अँगरेजी फारसी के पूर्ण अभिज्ञ हैं और संस्कृत के रसिक हैं तथा आस्तिकता के अवतार हैं ॥

इस समय श्री महाराज इम्पीरियल् लेजिस्लेटिव काउन्सिल् के मेम्बर हैं, रायल एशियाटिक सोसायटी के मेम्बर हैं, तअल्लुकेदारों की ब्रिटिश इण्डियन असोसियेशन् के सद के लिये सभापति हैं। और के, सी, आई, ई॰ आदि अनेकानेक पदों से भूषित हैं † ॥ श्रीमान् की सभा में किसी गुण का भी भाजन पहुंचे अवश्य ही उसका गुणग्रहण कर प्रतिष्ठा दी जाती है ॥

श्रीमान् के चरित के विषय में अलग ग्रन्थ हो सकता है इस कारण यहां संक्षेपकर क्षमाप्रार्थी होता हूं।

श्रीमहाराज का शुभचिन्तक—अम्बिकादत्त व्यास।

---

* सन् १८५५ को १३ जुलाई को इन महाराजा बहादुर ने अपने जन्म से अवध प्रान्त को भूषित किया और सन् १८८८ में राज्याभिषिक्त हुए ॥

† आनरेब्ल श्रीमन्महाराजाधिराज साहब हाजरी अदालत से भी बरी किये गये हैं ॥

बिहारीबिहार

का

उपोद्घात ।

"सीसमुकुट कटिकाछनी करमुरली उरमाल ।
इहिँ बानक मोमन बसहु सदा बिहारी लाल ॥,,

अतिशय आनन्द का विषय है कि आज मैं इस ग्रन्थ को समाप्त करके इसकी भूमिका लिखने बैठा हूं ॥ जिनकी प्रेरणा से यह ग्रन्थ बना है रचना के समय भी जिनके रङ्ग में डूब डूब मैं प्रफुल्लित होता था, एक मात्र जिनके ही भरोसे इस रस समुद्र में मैंने अपनी कविता की डोंगी छोड़ दी है, एक मात्र जिनका ही सम्बन्ध कविता का जीवन है और केवल जिनका चरण ही मेरे ऐसे अशरण का शरण है उन्ही नन्दनन्दन ने आज यह दिन दिखलाया कि मैं बिहारी कवि के सातसमुद्रस्वरूप सात सौ दोहों पर कुण्डलियाओं को पुलबांध इस पार से उस पार तक दो चार बेर दौड़ शीतल निश्वास ले उपोद्घात लिखने के लिये लेखनी को चञ्चल कर रहा हूं ॥

यह व्रजभाषा की कविता के रसज्ञ मात्र की सम्मति है कि बिहारी जी के दोहे अनूठे हैं । * इन दोहों के छोटे छोटे आकार में उतनी बातें भरी हैं जो प्राय: बड़े बड़े कवित्तों में नहीं देख पड़तीं ।

जैसे, —

"भौंहन त्रासति मुख नटति आँखिन सौं लपटाति ।
ऐंच छुड़ावति कर इँची आगैं आवति जाति ॥"
"मुँह धोवति एड़ी घसति हँसति अनँगवति तीर ।
घसति न इन्दीवरनयनि कालिन्दी के नीर ॥"
"कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन मैं करत हैं नैननि मैं सब बात ॥"

---

* जैसे मेरे वैकुण्ठवासी पिता जी ने निज रचित समस्यापूर्त्ति प्रकाश में लिखा है कि—"तुलसी गुसांई जू की शुभ चवपाई पाइ जग माँहिँ चाँदनी समान कियो है बिकास । दोहा त्यौं बिहारी हू के फैलि रहे चहूँ ओर तारागन जैसे फूलि फैले भरि कैं अकास ॥ सूरदास जू के भूरि भजनहु भाये तैसे मेह से उमड़ि पूरे भक्तन की सबै आस । पद्माकर को कवित्त रवि सो बिकास्यो दत्त नाभा कवि हू की रूपै चन्द्रमा करै प्रकास ॥"

"सेद सलिल रोमांच कुस गहि दुलही अरुनाथ।
दियो हियो सङ्कल्प करि हाथ धरैं ही हाथ॥"
"पलन प्रगटि बरुनीन बढ़ि छन कपोल ठहराय।
अँसुआ परि छतियाँ छनक छनछनाय छपि जाय॥"
"दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुरसँग प्रीति।
परत गाँठि दुरजनहिये दई नई यह रीति॥"

दूसरे विहारी जी की कविता में प्रायः असाधारण भगवत्प्रेम टपका पड़ता है जैसे—

"ज्यौं ह्वैहौं त्यौं होंहुगो हौं हरि अपनी चाल।
हठ न करो अति कठिन है मोतारिबो गोपाल॥"
"बन्धु भये को दीन के को तारयो जदुराय ।
तूठे तूठे फिरत हो झूठे बिरद कहाय॥"
"अपने अपने मत लगे वादि मचावत सोर।
ज्यौं त्यौं सबकौं सेइबो एकै नन्दकिसोर॥"
"जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम।
मन काँचे नाँचे वृथा साँचे राचे राम।"
"हरि कीजत तुम सौं यहै बिनती बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति अरयो रहौं परयो रहौं दरबार॥"

तीसरे विहारी जी ने स्वाभाविक बोल चाल, स्वाभाविक सौन्दर्य और स्वाभाविक प्रथा का अति लालित्यपूर्वक कथन किया है जैसे—

"अहै कहै न कहा कह्यौ तोसौं नन्दकिसोर।
बड़बोली कत होत है बड़े दृगन के जोर॥"
"अपनी गरजन बोलियत कहा निहोरो तोहि।
तू प्यारो मोजीय को मोजी प्यारो मोहि॥"
"गदराने तन गोरटी ऐपनआड़ लिलार।
हूठयो दै अठिलाय दृग करै गँवारि सुमार॥"

" छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोवन अङ्ग ।
दीपति देह दुहूँन मिलि दिपति ताफता रङ्ग ॥"
"सकुचि सरकि पिय निकट तैं मुलकि कछुक तन तोरि ।
कर आँचर की ओट करि जमुहाँनी मुख मोरि ॥,,
" चाले की वातैं चली सुनत सखिन की टोल ।
गोये हू लोचन हँसति विहँसति जात कपोल ॥"
" रमन कह्यो हँसि रमनि सौं रति विपरीत विलास ।
चितई करि लोचन सतर सगरव सलज सहास ॥"

इत्यादि सहस्रश: अपूर्व गुण होते भी विहारीजी नें न तो कहीं अपनी प्रशंसा की है और न अपने परितोपिकप्रद गुणग्राही महाराज जयसाह की ही गहरी प्रशंसा की है ॥ वहुत से कवियों की चाल है कि अपना जीवनचरित्र, कुल गोत्र, देश, काल, आदि सच्ची और उपयोगी वात लिखने की तो कथा नहीं परन्तु अपनी प्रशंसा भर देते हैं जैसे केशव कवि ने लिखा है "नि:सारीयति सारिका पिककुलं रङ्कीयति व्याकुलं, हंसाली परमाकुलीयति शुकीमालापि मूकीयति । यामाकर्ण्य किला-धरीयति धरां सौधाधरी माधुरी सेयं पण्डितकेशवस्य विमला वाग्देवता द्योतते ॥" ऐसे ही जयदेव, जगन्नाथ कविराज, भवभूति, श्रीहर्ष प्रभृति महामहाकविवर ने अपनी प्रशंसा की है परन्तु कालिदास की भांति विहारी जी ने अपनी प्रशंसा कुछ भी न की ॥ हाँ इस कलङ्क से तो विहारी जी भी रहित नहीं हैं कि उननें अपना इतिहास कुछ भी न लिखा जिस कारण यहां तक सन्देह उपस्थित हो गये कि विहारी जी चौवे थे कि नहीं और व्रजवासी थे कि नहीं ॥

कविता के प्रधान फल तो रसोदयप्रयुक्त अपरिमितानन्द और भक्ति ज्ञान शिक्षादि हैं परन्तु यश भी अप्रधान फल नहीं है जैसे प्रसिद्ध है कि "जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धा: कवीश्वरा: । नास्ति येषां यश:काये जरामरणजम्भी: ॥" इनदिनों परिश्रम करके बड़े ग्रन्थ बनाने वाले कवि लोग तथा अपनी प्रशंसा के झूठे पोथे लिखने वाले कवियों कों घोड़े, जोड़े, तोड़े, हाथी की सवारी और जमींदारी देने वाले राजामहाराजा लोग यश ही के लिये लाल फुवाते हैं और उनका यश ही नहीं होने पाता है । हो कैसे ! हमलोग अपनी ही आंखों से अपने समीपवर्त्ती राजा महाराजाओं की उदारता तो दिन दिन देख रहे हैं । कोई कवि पहुंचे महाराज के नखसिख का वर्णन ऐसा किया कि यूसफ के परदादे बना दिया किसी कवि ने एक चर्वितचर्वण का नायिकाभेद का कचड़ा समर्पित किया जिसमें सव नायिकाओं का नायक महाराज ही को बनाया सब रसों का उदाहरण महाराज ही पर मढ़ दिया और महाराज के नैन की भौंह की प्रशंसा से अपनी कविता सरिता खलभला दी, वस ऐसे ग्रन्थ को देख

महाराज बहादुर ने भी समझा कि ओः यह ग्रन्थ तो हमारे यशःसमुद्र की मर्य्यादा तोड़ सारे भूवलय को प्लावित कर देगा बस गद्गद हो षोड़शोपचार उपहार से कवि जी के सम्मुख उपस्थित हुए। कहिये तो क्या कभी सम्भव है कि ऐसे एकाव्यक्तिपरायण ग्रन्थ के पढ़ने पढ़ाने का उत्साह किसी काल में भी सर्वसाधारण को हो ? क्या ऐसे ग्रन्थ का एक अल्पभाग भी कभी किसीपाठशाला में पढ़ाया जा सक्ता है ? ऐसा ग्रन्थ किसी पुस्तकालय में बिना मूल्य ठूँस दिया जाय तो भी क्या किसी का एक पृष्ठ से अधिक पढ़ने में जी लग सकता है ? तिसपर भी प्रायः महाराज लोग कुछ बिदाई देके उस कवि से उस मुद्रित ग्रन्थ की सब पोथियां ले अपने पुस्तकालय में बन्ध कर थोड़ा सा बाँट बूँट नाटकलीला समाप्त करते हैं, कवि जी को तो मुट्ठी गरमाने से काम वे तो पोथी माथे मढ़ बिदाई ले लम्बे हुए और महाराज अपना यश अलमारों में फैला रहे हैं ॥ भला यह तो देखना चाहिये कि जिन विक्रम ऐसे महाराज का यश आज तक घर घर व्याप्त है और जिनकी सभा में कालिदास, वररुचि, वराहमिहिर, ऐसे विद्वच्चक्रवर्ती रहते थे उनकी प्रसिद्धि में क्या उनी की वर्णना के ग्रंथ कारण हैं ? आज काल के यशोऽर्थी लोग आंख फाड़ के देखें कि जिन महाराज जयसिंह ने जिस सतसई पर ७००।) सात सौ मुहर पारितोषिक दिया उन महाराज के वर्णन में उसी ग्रन्थ में के दोहे हैं और फिर भी उनका यश आज तक कैसा जाज्वल्यमान है ? हमको एक बात कहते बड़ी हँसी आती है।" एक बड़े नामी महाराज को एक प्रसिद्ध कवि ने ग्रंथ समर्पित किया महाराज ने स्वीकार किया, ग्रन्थ छप गया, बिदाई के समय एक मुसाहब बोल उठे कि "हजूर की तारीफ़ तो सिर्फ दो ही पेज में होगी फिर बड़ी बिदाई क्या ?" चलो महाराज ने भी समझा कि ठीक तो है दो पृष्ठ की कुछ दक्षिणा दे दी जाय और अन्त में यही हुआ ॥ परन्तु धन्य बिहारी कवि जिनने झूठी तारीफों से ग्रंथ न भरा और धन्य थे महाराज जयसिंह जिनने प्रशंसा पर ध्यान न दे कर पारितोषिक दिया ॥

हमको बिहारी जी के एक दोहे पर आश्चर्य होता है कि जयसिंह का सौन्दर्य्य वर्णन उनने क्यों किया। वह दोहा यह है—

> 'प्रतिबिम्बित जयसाहदुति दीपति दर्पनधाम ।
> सब जग जीतन कौं कियो कायव्यूह जनु काम ॥'

परन्तु अनुभव होता है कि जयसाह ने कहा होगा कि हमारे सीसमहल पर कोई दोहा बनाओ और उनके कहने अनुसार बिहारी जी ने यह दोहा लिखा हो । यह सीसमहल अभी तक आमेर में विद्यमान है। इसमें सहस्रों काच के टुकड़े जड़े हैं । उस घर में घुसते ही अपनी † सहस्रों मूर्तियाँ देख पड़ने लगती हैं ॥

† आमेर ही महाराज मानसिंह का पुराना राज्य है। जयपुर की तो पीछे दूसरे महाराज सवाई जयसिंह ने सं॰ १७२४ में श्रावण में नेव दी थी (इतिहास राजस्थान) और ये जयसिंह तो प्रथम थे

ऐसा जान पड़ता है कि ७०० सात सौ मुहर अर्थात् लग ढग (७५००) साढ़े सनह सहस्र मुद्रा के पारितोषिक पाने पर भी विहारी जी जयसाह से प्रसन्न नहीं हुए थे और यह अप्रसन्नता लोभ के कारण नहीं हुई थी किन्तु इस कारण कि विहारी जी की समझ में उनका गुण न समझा गया और विना गुण समझे ही जैसे और मूर्ख याचक को भी इस बड़े दर्बार से लाखों मिलते थे वैसे ही यह ७०० मुहरों का दान भी मिला । अत एव विहारी जी ने दो दोहे कहे हैं जिनमें जयसाह को दानी तो ठहराया परन्तु गुणानुसार देनेवाला न कहा ❀ जैसे —

"चलत पाइ निगुनी गुनी धन मनि मोतीमाल ।
भेट भये जयसाह सौं भाग चाहियत भाल ॥,,

"रहति न रन जयसाहमुख लखि लाखन की फौज ।
जाँचि निराखरऊ चलै लै लाखन की मौज ॥,,

यह व्यङ्ग भी विहारी ने ऐसा छिपा २ मारा है कि प्रायः हरिप्रसादादि व्याख्याकार पण्डितों ने प्रशंसा ही समझी और विहारी के तात्पर्य तक न पहुंच सके । सच पूछिये तो मिरजा जयसिंह ऐसे महाराज ने विहारी ऐसे महाकवि को विहारीसतसई ऐसे अपूर्व ग्रन्थ पर सात सौ अशर्फी दी तो क्या दिया कुछ न दिया । धन्य थे महाराष्ट्रराज शिवाजी जिनने भूषण को एक कवित्त पर ५२ हाथी दिये । किसी एक कवित्त पर पांच हाथी और बत्तीस हजार रुपये देना जी० ए० ग्रियर्सन साहिब ने भी लिखा है ।

और मिर्ज़ा जयसिंह कहलाते थे, इतिहास राजस्थान के अनुसार इनने सं० १६७८ से १७२४ तक राज्य किया । (कोई कोई इनके राज्यान्त का समय १७१६ कहते हैं) जयपुर से तीन कोस पहाड़ों के पक्ष में आमेर है । महल तक देखने का अवसर सुलभ है । पहाड़ पर किला है सो देखना दुर्घट है । इसी महल में सीसमहल भी है इन महलों की बनावट प्रायः आगरे के किले के महलों की बनावट के सदृश है ॥ एक समय महाराज जयपुर के प्रधान सेनापति ठाकुर हरिसिंह ने मुझे वेद के मन्त्रार्द्ध की समस्या दी थी । मैं उसी दिन आमेर का महल देख के आया था सो यह पूर्त्ति की ॥ "प्रविष्टो राजभवने प्रतिविम्बैर्नरो भवेत् । सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥"

❀ यह इतिहास भी प्रसिद्ध है कि विहारी कवि की चिरकाल से नवाब ख़ानख़ाना ने प्रशंसा सुनी और सुनवाया । विहारी ने केवल एक दोहा कहा उस पर नवाब ने विहारी के देह की उंचाई के बराबर अशर्फ़ियों का ढेर लगवा दिया और कहा कि आप की कविता की मधुरता के आगे यह कुछ नहीं है ॥ परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से नवाब ख़ानख़ानां के १०० वर्ष के अनन्तर विहारी का समय विदित होता है । सम्भव है कि साक्षात् ख़ानख़ाना न हों तो उनके लड़के या भाई भतीजों ने सम्मान किया हो ॥ क्योंकि यह कुल ही ख़ानख़ाना ही कहा था ॥

The Modern literary history of Hindustan—"on one occasion he got as much as five elephants and twenty-five thousands rupees for a single poem."

इन दिनों किसी का भी जीवनचरित्र लिखना बहुत कठिन हो रहा है यहां तक कि इतने प्रसिद्ध विहारी कवि हो चुके और उनको समय भी बहुत अधिक नहीं हुआ है तो भी उनके जीवन में थोड़ा सा वृत्तान्त विदित होता है। शिवसिंह सरोज, जि॰ए॰ ग्रियरसनसाहब का रचित भारतभाषासाहित्य "Modern Vernacular literature of Hindustan." और उन्हीं की लिखी विहारी सतसया की भूमिका के देखने से तथा निज परिश्रम से जो कुछ हो सका सो विहारी कवि का वृत्तान्त यह है।

†विहारी कवि माथुर चौबे थे, इनका गोत्र धौम्य था, ये सोती (श्रोत्रिय) कहलाते थे। ये ऋग्वेदी ब्राह्मण थे इनको आश्वलायन शाखा और कश्यप अत्रि सारख ये तीन प्रवर थीं कुलदेवी महाविद्या

---

† मैनपुरी में मुकुन्दराय चौबे के पुत्र मथुराप्रसाद चौबे का जन्म सं॰ १८६८ में हुआ, इन्होंने ज्योतिष वैद्यक और महाजनी विद्या का अध्ययन निज जन्मभूमि में ही किया। इनके घराने में चार सौ वरस से सराफा और सोना चांदी जवाहिर का काम होता आता था, ये भी उसी विद्या में निपुण भये। जब इनकी अवस्था २५ वर्ष की हुई तब सन् १८५३ में ये लखनऊ के प्रसिद्ध सेठ साहुविहारीलाल रघुवरदयाल के यहां सर्वाध्यक्ष मुनीम हुये। लखनऊ में इससे बड़ी कोई कोठी न थी। गदर होने से जब लखनऊ गारद हुआ तब इन्हें लखनऊ छोड़ फिर मैनपुरी जाना पड़ा। अनन्तर रानीगञ्ज में डांक के खजाञ्ची का काम कुछ समय करके भागलपुर चले आये और अन्न का गोला तथा कपड़े का व्यापार खोल। यहां इनको ज्योतिष में प्रसिद्धि हुई तब यहां के प्रसिद्ध रईस महाशय द्वारकानाथ घोष ने साक्षात् कार किया और अपने यहां आश्रित रक्खा। ये वृद्ध महाशय अभी तक हैं। इनके एक पुत्र और सात पौत्र हैं।

सुना कि ये जगत्प्रसिद्ध विहारी कवि के गोतिया हैं। इस कारण मैं इनसे मिला और विहारी के विषय में जो बातें इनसे सुनी सो ये हैं—

'विहारी कवि धौम्य गोत्र के माथुर चौबे थे। सोती कहलाते थे। ये ऋग्वेदी ब्राह्मण थे. इनको आश्वलायन शाखा और कश्यप अत्रि सारख ये तीन प्रवर थीं, कुल देवी महाविद्या थी। जयपुर महाराज के यहां से इनको वसुआ गोविन्दपुरा ग्राम मिला था। वहां ही ये चिरकाल तक रहे, यह ग्राम जयपुर राज्य में है। अभी तक विहारी के कुटुम्बी चौबे लोग वहां रहते हैं। विहारी कवि ने जो दोहे जयसिंह के दर्बार में दिये वे ही सतसई में हैं पर सिवाय उनके और भी सैकड़ों दोहे उनके बनाये हैं। उनके बनाये और ग्रन्थ भी हैं वे कदाचित् वसुआ गोविन्दपुरा में किसी चौबे के पास अथवा महाराज जयपुर के पुस्तकाय के में हों तो हों"

थीं। इनके पिता का नाम केशव (कविप्रिया वाले केशव * नहीं) और पितामह का नाम राय था। इनके घराने का पूर्वनिवास तो मैनपुरी था परन्तु ऐसा प्रसिद्ध है कि इनका जन्म ग्वालियर में हुआ था ‡।

इनके पिता बहुत दिनों तक बुन्देलखण्ड में रहे थे अत एव इन लोगों की बोल चाल में कुछ २ बुंदेलखण्डी भाषा घुस गई थी। इसी लिये बिहारी की कविता में भी बहुत से बुंदेलखण्डी शब्द आगये हैं, जैसे, स्यौ, ज्यौ, प्यौ, प्यौसार, ब्यौरति, लखिबी, देखिबी, इत्यादि (ये शब्द क्रमशः दोहा ४००, ४००, १४, ३५, ६०, ६१८, ६८८ में हैं)। सुना है कि इनका विवाह मथुरा में हुआ था। इनके श्वशुर मथुरा में रहते थे। बिहारी चौबे भी मथुरा में इसी महल्ले में आ रहे। इनने किसके समीप अध्ययन किया सो स्पष्ट विदित नहीं होता परन्तु इनने साहित्य में अच्छी योग्यता प्राप्त की और ऐसा जान पड़ता है कि उर्दू फार्सी में भी इनने परिश्रम किया था क्यों कि इनकी कविता में कहीं २ उर्दू फार्सी के गहरे शब्द आ जाते हैं जैसे;—"हमाम" दो० १८३ "ताफता" दो० १७ "काजाकी" दो० ४६३ 'जुराफा' दो०

मथुराप्रसाद चौबे के पिता का नाम मुचुकुन्दराय था इसी से स्पष्ट विदित होता है कि चौबे भी रायपदाङ्कित हो सकते हैं और 'मेरे' हरो कलेस सब केसव केसवराय' इस दोहे में राय पद ऐसा झगड़ालू नहीं है।

ऐतिहासिक लोग देखें इस लेख से कोई बात काम की निकल सक्ती है?

* कविप्रिया वाले केशवदास तो सनाढ्य थे मिश्र थे और टेहरी के रहनेवाले थे। और ये तो माथुर चौबे थे (ककोर) सोती थे और मैनपुरी के रहनेवाले थे।

‡ लोग कहते हैं केशव कुछ दिन बुन्देलखंड में रह कर ग्वालियर आए थे वहां बिहारी का जनम हुआ और फिर बिहारी अपने ससुरार मथुरा में रहते थे यह इस दोहे से विदित होता है "जन्म ग्वालियर जानिये खण्ड बुन्देले बाल। तरुनाई आई सुभग मथुराबसि ससुराल" ॥ इस दोहे को मेरी समझ में पहले राजा शिवप्रसाद ने लिखा, फिर भारतेन्दु पत्र में श्रीराधाचरणगोस्वामी ने लिखा, अनन्तर बाबू राधाकृष्णदास ग्रेयर्सन्‌साहब और पण्डित प्रभुदयाल तथा मैंने लिखा। परन्तु यह कहां का और किस प्रकरण का दोहा है कदाचित् किसी को भी विदित न हुआ॥ दोहे में बिहारी का नाम भी नहीं है। श्रीराधाचरणगोस्वामी जी ने निज लेख में भारतेन्दु में टिप्पणी में इस दोहे को यों लिखा है "बिहारी कवि, ब्रजभाषा की ससुराल ० मथुरापुरी के वासी थे।" इस पर टिप्पणी (० किसी कवि ने कहा है। जनम ग्वालियर जानिये खण्ड बुंदेले बाल। तरुनाई आई सुभग मथुरा बसि ससुराल) इस प्रकरण में हमें तो गोस्वामीजी का तात्पर्यगोचर अर्थ यह झलकता है कि—ब्रजभाषा का जन्म ग्वालियर का है, ब्रजभाषा बुन्देलखण्ड में बालिका है और ब्रजभाषा का ससुराल श्रीमथुरा है वहां इस का यौवन टटका। भारतेन्दु पुस्तक ३ अङ्क १० पृष्ठ १४८)

५८०, "पेज" दो० ३४२ "कालबूत" दो० ३२२, 'किबुलनुमा" दो० ५६. इत्यादि और यह भी अनुमान में आता है कि इनको उर्दू फार्सी की छोटी २ शेर अच्छी लगी हों और उसी ढंग पर इनने दोहे के छोटे छन्द चुने हों। स्वाभाविक बोलचाल (महावरे) का प्रचार भी उर्दू फार्सी में अति प्रधान गिना जाता है सो बिहारी ने भी स्वभावोक्ति का विशेष आग्रह रक्खा है जैसे 'कितो मिठास दयो दई इते सलोनै रूप" दो० ३३२ "आज मिले सु भली करी भले बने हो लाल" दो० १६५ इत्यादि और उर्दू फार्सी में जिला अर्थात् एक ही प्रकरण के बहुत से शब्द किसी ढंग से आ जाँय इसकी अधिक चाल है, सो इस पर भी बिहारी की दृष्टि पड़ी है जैसे;— दो० २७३ "दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरति चतुर सँग प्रीति। परति गांठि दुर्जन हिये दई नई यह रीति।" दो० १८२ "कत लपटैयत मो गरे सो न जु ही निस सैन। जिहिं चम्पकबरनी किये गुल्लालारंग नैन॥" इत्यादि।

भाषा के ग्रन्थ तो बिहारी कवि ने पढ़े ही थे परन्तु संस्कृत भी अच्छी जानते थे ऐसा बिदित होता है क्योंकि अपने ग्रंथ में गहिरे संस्कृत शब्द भी झाड़े हैं, जैसे;—"काकगोलक" दो० २८८, "परिवेष" दो० ४८१, "जातरूप" दो० ५३५, 'दाघ – निदाघ" दो० ५६८, 'विभावरी-ओक" दो० ५७८ "तपन तूल" दो० ५८२, "हषादित्य" दो० ६०२ इत्यादि॥ केवल इतना ही नहीं और भी कितनी ही ऐसी उक्ति हैं जिनसे इनका संस्कृतसाहित्य का पूरा पाण्डित्य प्रगट होता है।

इनने और भी एक दो ग्रन्थ बनाये हैं ऐसा भी कहीं २ सुना जाता है परन्तु लोकप्रसिद्ध यही ग्रन्थ है॥ इसका कथानक ऐसा है कि बिहारी कवि विचरण करते हुए आमेर के प्रसिद्ध राजा मिर्जा† जयसिंह के दरबार में पहुंचे॥ परन्तु इन दिनों महाराज एक नववयस्क सुंदरी के प्रेम में ऐसे बद्ध थे कि

† यद्यपि लल्लूलाल प्रभृति अनेक विद्वान लोग इन्हें सवाई जयसिंह की सभा वाले बतलाते हैं परन्तु सवाई जयसिंह ने तो संवत् १७५० से संवत् १८०० तक राज्य किया और बिहारी का सतसई बनाना संवत् १७१९ का प्रसिद्ध है (जैसे;—दो० संवत ग्रह ससि जलधि छिति छठ तिथि बासर चन्द। चैत्र मास पछ कृष्ण में पूरन आनदकंद ७०८) और मिर्जा जयसिंह ने संवत् १६७४ से संवत् १७२४ तक राज किया (जयपुर राजपूत स्कूल के हेडमाष्टर चारण रामरत्न लिखित इतिहास राजस्थान के अनुसार) इस कारण मिर्जा जयसिंह ही के समय में बिहारी कवि का होना सिद्ध होता है॥ सवाई जयसिंह के दीवान राजा आयामल्ल थे उन्हीं के यहां कृष्णदत्त कवि थे उनने बिहारीसतसई की कवि समय टीका बनाई है वे स्पष्ट लिखते हैं कि जयसाह के रामसिंह उनके कृष्णसिंह उनके विष्णुसिंह और उनके सवाई जयसिंह हुए (कृष्णसिंहजी सं० १७३८ में कुंवर पद ही पर परलोक सिधारे, राजगद्दी पर न बैठ सके)॥ प्रथम जयसिंह के समय में बिहारी थे और अन्तिम जयसिंह के समय में कृष्ण कवि थे। इनका कथन अप्रमाण करने की कोई युक्ति नहीं है इसलिये निस्सन्देह मिर्जा जयसिंह के ही समय में बिहारी थे॥

महीनों से रणवास के बाहिर ही नहीं निकले थे। सारा राज काज केवल दीवान के हाथ में था और सारी प्रजा तथा महाराज के वन्धु वान्धव और अधिकारी लोग महाराज के दर्शन के लिये तरस रहे थे। विहारी ने राजसभा के अधिकारियों से राजदर्शन के लिये वहुत कुछ प्रार्थना की परन्तु सब ने यही कहा कि महाराज सभा में आवें और राजसिंहासन पर वैठें तो हमलोग भेट करा सकते हैं और रनवास में हम लोगों की गति नहीं है। तब विहारी कवि ने भी देखा कि प्राणभय से कोई महाराज के समीप तक पहुंच नहीं सकता है और महाराजविना चारों ओर से हाहाकार हो रहा है, मंत्रीलोग भी घवरा रहे हैं पर कुछ कर नहीं सकते हैं। ऐसे समय में मेरे ऐसे विदेशी की कौन सुधि लेसकता है। एक दिन विहारी नें देखा कि एक मालिन एक दौरी भर के फूल लिये रणवास की ओर जा रही है। निश्चय करके जाना कि ये फूल प्रतिदिन महाराज की शय्या पर विछाने को पहुंचाये जाते हैं। यह देख उस मालिन से मिल विहारी ने एक कागज पर एक दोहा लिख पुड़िया बाँध उन्हीं फूलों में डाल दिया और वे फूल रणवास में महाराज की शय्या तक पहुंचे। वह पत्र महाराज की पीठ में गड़ा। महाराज ने निकाल के पढ़ा तो उसमे यह दोहा लिखा था "नहिं पराग नहिं मधुर रस नहिं विकास इहिं काल। अली कली ही सों रम्यो आगे कौन हवाल॥" वस यह पढ़ महाराज उस कविता को लिये ही हुए वाहर निकल आये और एक वरस के अनन्तर महाराज के दर्शन का राज्यभर में वड़ा ही उत्सव हुआ। महाराज ने आते ही कहा कि यह दोहा जिसका वनाया हो उसे शीघ्र वुलाओ। तब विहारी कवि से महाराज की भेंट कराई गई। महाराज ने आदरपूर्वक विहारी कवि से कहा कि आप की कविता वहुत ही मधुर होती है सो आप प्रतिदिन कुछ १ कविता सुनाया कीजिये। विहारी ने स्वीकार किया और दिन २ कुछ दोहे वनाकर ले जाने लगे और सुनाने लगे। महाराज के यहां इनके पुर्जे नत्थी किये जाने लगे। कई महीनों पीछे विहारी कवि ने विनय की कि अब मैं स्वदेश मथुरा जाना चाहता हूं। तब महाराज की आज्ञा से सब दोहे गिने गये वे लगढग सात सौ थे॥ तब महाराज ने सात सौ मोहर का पारितोषिक विहारी कवि को दिया।

इस पारितोषिक से विहारी कुछ भी प्रसन्न न हुए क्योंकि इसी समय पन्ना के राजा छत्रसाल ऐसे गुणग्राही थे कि उनने भूषण कवि को पालकी पर वैठा अपने कंधे से पालकी उठा कर दूर तक पहुंचाया था *। उनकी अपेक्षा जयसिंह वहुत ही वड़े महाराज और विद्वान् थे परन्तु कविता का मर्म समझ सम्मान कुछ भी न किया। तब विहारी कवि छत्रसाल के यहां गये और अपना ग्रंथ दिखा कहा कियह ग्रंथ कैसा है मैं इसी को जांच चाहता हूं।

---

* जी० ए० ग्रियर्सन साहिब अपने कविचरित्र में यों लिखते हैं—"Chhattr'sal, feeling himself quite unable to reward the poet as Sivaraj had done, instead of giving him money, helped with his own shoulder to carry him in his palankeen on his way."

इस समय छत्रसाल की सभा में निवाज, रतनेस पुरुषोत्तम, विजयाभिनन्दन, लाल, हरिकेस, पद्मम, इत्यादि बड़े नामी २ कवि उपस्थित थे। उन सबों के साथ महाराज ने स्वयं बिहारी के ग्रन्थ को देखा और सभा में अत्यन्त प्रशंसा कर बहुत सम्मान किया तथा पांच गांव पारितोषिक दिये। इससे बिहारी कवि ने अति प्रसन्न हो कहा कि मैं भाग्यानुसार थोड़ा बहुत पारितोषिक तो महाराज जयसिंह के यहां से पा चुका हूं परन्तु उस सभा में मेरी कविता की जँाच कुछ भी नहीं हुई थी, इस कारण मैं केवल इतने ही के लिये भारतवर्ष के भूषणस्वरूप कविकल्पवृक्ष इस राजद्वार में आया था सो मेरी कविता की इस सभा से प्रशंसा हुई इससे बढ़ के मैं कुछ नहीं चाहता। यह सुन राजा छत्रसाल बहुत ही प्रसन्न हुए और विविध वस्त्रालङ्कार और द्रव्य देकर बिदा किया †।

क्रमश: यह वृत्तान्त महाराज जयसिंह को विदित हुआ कि बिहारी ने जमींदारी लौटा दी, यह सुन जयसिंह और भी प्रसन्न हुए और बिहारी को बुलवाया और प्रशंसा कर बसुआ गोविन्दपुरा नामक दो बड़े ग्राम और दिये। (यहां अभी तक बिहारी के गोत्रज लोग रहते हैं) इतने समय के अनन्तर बिहारी ने अपने ग्रंथ में इति लगाई ❁॥ अनन्तर बिहारीकवि भ्रमण करते हुए श्रीमथुरा में आये दैवात्

---

† ऐसा भी लोग कहते हैं कि छत्रसाल के यहां एक प्राणनाथ कवि थे और देखा देखी उनने भी एक सतसई, बनाई, और हमारी सतसई उत्तम है इस बात का कोलाहल किया तब बिहारी ने अति दु:खित हो कहा कि श्रीयुगलकिशोर के मन्दिर में प्रभु के समीप दोनों ग्रन्थ धर दिये जांय प्रभु जिसे अंगीकार करें वही ग्रन्थ सब से उत्तम समझा जाय। तब वैसा ही किया गया। रात को दोनों ग्रंथ भगवान् के समीप रख शयन करा दिया गया प्रात:काल देखा गया कि बिहारी के ग्रंथ पर श्रीयुगलकिशोर के हस्ताक्षर बने हुए हैं। इसी समय बिहारी नें यह दोहा बनाया कि "नित प्रति एकत ही रहत बैस बरन मन एक। चहियत जुगलकिसोर लखि लोचन जुगल अनेक॥"

❁ इस अन्तराल में और भी कई एक दोहे बनाकर बिहारी जी ने इसी ग्रन्थ में डाले हैं प्राय: वे ही किसी टीकाकार को मिले हैं किसी को नहीं। छत्रसाल संवत् १७१५ में धोलपूर में दाराशिकोह और औरंगजेब के युद्ध में मारे गये। इसके कुछ दिन के अनन्तर जयसिंह ने बिहारी को गांव दिये और संवत् १७१६ में जयसिंह का परलोक हुआ (जयपुर राजपूत स्कूल के हेडमास्टर चारण रामनाथरत्नू अपने इतिहास राजस्थान में जयसिंह का परलोक १७२४ में कहते हैं) बिहारी ने अपने ग्रंथ की इति संवत् १७१९ चैत बदी छठ को लगाई क्यों कि उस दिन पीछे इस ग्रंथ में और दोहा बनाना अनावश्यक समझा ऐसा अनुमान में आता है॥ दो॰ ७०८ में इस छठ को सोमवार कहा है पर कितने ही गणक कहते हैं कि उस रोज सोमवार नहीं आता है॥ ग्रेयर्सन् साहब अपनी छपाई सतसई की भूमिका में तो सब से विलक्षण ही लिखते हैं॥ उनका लेख यह है॥—

Introduction P. 5. "A doha purporting to be by him states that he completed the

इस समय यहां जोधपुर के महाराज श्रीजसवन्तसिंह बहादुर भी आये थे । (जसवन्तसिंह जी ने सं॰ १६८५ से सं॰ १७३६ तक राज्य किया था) महाराज ने दिनों से इनकी प्रशंसा सुनी थी और बिहारी ने भाषाभूषणकार जसवन्तसिंह की चिरकाल से कीर्ति सुनी थी। दोनों को परस्पर मिलने की उत्कण्ठा थी। यहां भेट होने से दोनों को बड़ा आनन्द हुआ । महाराज ने कहा "थारी कबिता में सूलो लाग गयो।" (मारवाड़ी भाषा में इसका तात्पर्य्य है कि तुमारी कबिता में कीड़े पड़ गये, घुन लग गये, जीव पड़ गये इत्यादि)॥ बिहारी कुछ न समझे घर चले आये। बिहारी की बेटी बड़ी बुद्धिमती थी। उसने उदास पिता को देख बिचार पूर्वक कहा कि "इसका यह तात्पर्य विदित होता है कि आपकी कविता सजीव है। दूसरे दिन बिहारी ने यह अर्थ महाराज को सुनाया तो वे प्रसन्न हुए और कहा कि मैंने इसी तात्पर्य से कहा था॥

सुना है कि बिहारी के पुत्र कृष्ण कबि थे (जिनका चरित आगे व्याख्याकारों में मिलेगा)।

Satsai on Monday Chait badi samvat 1719, which (in Jeypur) corresponds to the 24 January 1662 A. D. Unfortunately, however, the verse must be a subsequent forgery, for that date fell on a Thursday, not on a Monday."

वे कहते हैं कि चैत कृष्ण छठ को (उनके लेख में छठ छुट गई है सो छपने की अशुद्धि जान पड़ती है) सन् १६६२ को २४ वीं जनवरी थी। सो यह समझ में नहीं आता कि चैत में जनवरी कैसे पड़ सकती है और २४ वीं जनवरी उस वर्ष में किसी महीने में भी पड़े परन्तु उस दिन तो गुरुवार कदापि पड़ ही नहीं सकता है।

बिहारी के समय के विषय में विवाद।

मुझे ठीक स्मरण है कि किसी समय किसी विद्वान् ने लिखा था कि सं० १७१९ चैत बदि ६ को सोमवार नहीं आता इसलिये संख्या ५०८ वाला दोहा अप्रामाणिक है अथवा यह समय ठीक नहीं है। कदाचित् पण्डित बिनायकशास्त्री बेताल ने लिखा * था कि इस दोहे का अर्थ सं० १४१९ है क्योंकि जलधिका अर्थ ४ भी है और इस संवत् में चैत्र बदि ६ को ठीक सोमवार मिल जाता है॥ भाषा कविता के परम स्नेही विद्वान् श्रीयुत ग्रेयर्सन् साहिब ने भी इस दोहे को जाल लिखा है और लिखा है कि उस दिन सन् १६६२ की २४ वीं जनवरी थी तथा च उस तारीख को गुरुवार था॥

मैंने इसको स्वयं गणित किया और ग्रेयरसन् साहिब को पत्र लिखा कि २४-१ १६६२ को तो कथमपि गुरुवार नहीं पड़ता है। वे इस समय बलायत जाने की त्वरा में थे उनने मुझे यही उत्तर दिया कि महामहोपाध्याय पण्डित सुधाकर जी काशीवासी की सम्मति से यह लिखा गया है।

मैंने यह विषय ग्वालियर के पण्डित श्रीउपेन्द्राचार्यजी को लिखा और उनने महाराज संधिया के पण्डितों से निर्णय कर मेरे पास व्यवस्था भेजी उसमें पण्डित बंशीधर पांडे, पण्डित द्वारकाप्रसाद और पण्डित स्यामलालजी की सम्मति में उस दिन शुक्रवार था। और पण्डित बाबू ज्योतिषी के भ्राता श्री-युत पण्डित विष्णुदत्त ज्योतिषी राजदैवज्ञ की सम्मति में उसदिन बुधवार था॥ मैं इन पण्डित विष्णुदत्त राजदैवज्ञ का अत्यन्तही कृतज्ञ हूं क्योंकि इनने अतिपरिश्रम करके उस वर्ष का पूरा पञ्चाङ्ग ही बना के मेरे पास भेज दिया है॥

मैं इन सम्मतियों के पाने से बड़ी घबड़ाहट में था और बार बार इस पंचाग को फैला देखने लगा। मैंने इसमें देखा कि बैशाख कृष्णपक्ष ६ रविवार को ६० घड़ी है और दूसरे दिन सोमवार को भी ३६ पल है। यों सोम षष्ठी तो मिली पर बैशाख हुआ इस पर मेरे चित्त में अकस्मात् प्रतिफलित हुआ कि वल्लभादि सम्प्रदायों में शुक्लादि मास माना जाता है। इस मास गणना के अनुयायी प्रञ्चाङ्ग अब भी पण्डित गट्टूलालजी सी० आई ई० तथा गोस्वामी नृसिंहलाल जी के प्रसिद्ध हैं सो शुक्लादि मास मानने में यही चैत्र कृष्णषष्ठी समझी जायगी। बस मेरी समझ में नि:सन्देह उस दोहे में इसी शुक्लादि के क्रम से चैत्रकृष्ण ६ चन्द्रवार लिखा है॥

यदि इस दोहे से सं० १४१८ समझें तो ऐतिहासिक दृष्टि से यह कल्पना केवल बाल लीला ही हो जाती है इसलिये यह पक्ष तो अग्राह्यही जँचता है।

यदि कोई विद्वान् लोग इससे भी उत्तम पथ निकालें तो वही ग्राह्य होगा।

---

* संवत् १९४२ की उदयपुर की दिनचर्या (Diary) में।

बिहारी के वंश का विवाद।

इन दिनों बिहारी के वंशसम्बन्धी तीन पक्ष उपस्थित हैं।

एक पक्ष बिहारी का ओड़छा वाले कविप्रियाकार केशव का पुत्र होना, दूसरा राय अर्थात् भाट होना और तीसरा चौबे होना॥ प्रथम पक्ष की पुष्टि में काशीवासी बाबू राधाकृष्णदास ने "कविवर बिहारीलाल" नामक अपूर्व पुस्तिका लिखी है और वह काशी नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुई है। ऐसे २ ग्रन्थ लिखे और प्रकाशित किये जाँय तो अवश्य ही कुछ काल में पुरावृत्त का ठीक परिचय होने लगे।

सतसई में कहीं कहीं बुन्देलखण्डी लपेट की उक्ति का आना तथा बिहारी का अपने पूज्य कोटि में किसी केशव को मानना ही इस ग्रन्थ के चिन्हों की भित्ति है।

मेरी समझ में यदि बिहारी, अरबी फ़ारसी दो एक शब्द आने से, अरब और फ़ारस के निवासी नहीं हो सकते, तो मारवाड़ी आदि शब्दों के साथ दो चार बुन्देलखण्डी शब्द आने से बुन्देलखण्डी भी नहीं हो सकते। तथा केशव का नाम आने ही से यह नहीं माना जा सकता कि वे पिता ही थे, और पिता भी थे तो ये ही केशव थे॥ और कई एक और भी क्लिष्ट कल्पना करनी पड़ती हैं जैसे केशव ने सं० १६२४ में कविप्रिया पूरी की है। यह ऐसी बहुज्ञता और प्रौढ़ि से भरा ग्रन्थ है कि सम्भव नहीं कि केशव ने अल्पवय में बनाया हो। क्योंकि संस्कृत के अनेक साहित्य ग्रन्थ पढ़ने के अनन्तर (उस समय भाषा साहित्य सुविस्तृत न था) बहुत सी कविता बना कृताभ्यास होने के अनन्तर ऐसे ग्रन्थ की सृष्टि का सामर्थ्य होता है। यदि बहुत ही कम मानें तो भी २५ के वय में आरम्भ कर कदाचित् ३० के वय में केशव ने यह ग्रन्थ समाप्त किया हो॥ इस हिसाब केशव का जन्म संवत् लग ढग १५९४ होता है। केशव ने रसिकप्रिया सं० १६४८ में पूरी की इस समय ये ५४ वर्ष के थे। रामचन्द्रिका सं० १६५८ में बनी इस समय इनका ६४ वर्ष वय हुआ और स० १६६० में ये ७३ वर्ष के हुए।

इनकी और ओड़छा के राजा इन्द्रजित प्रभृति की क्या जाने क्या मदोन्मत्तता माथे चढ़ी थी कि एक बेर सब इकट्ठे हुए और विचार किया कि हमलोगों का सहस्रों वर्ष साथ हो इसका उपाय सोचा जाय। अन्त में यह सिद्धान्त हुआ कि यदि हमलोग सब भूत हो जांय तो सहस्रों वर्ष साथ रह सकता है। यद्यपि देव होने से भी यही बात पाई जाती है। परन्तु देव होना कठिन है भूत होना ही सहज है। सुना है कि केशव दास ही ने इस भूतयज्ञ का भार उठाया और भ्रष्ट पदार्थों से बड़ा भारी यज्ञ किया। इसमें राजा इन्द्रजित, उनकी समस्त सभा और केशव तथा राजा की कृपापात्र प्रवीनराय वेश्या उपस्थित थी। समस्त मण्डली के चित्त में यही उत्साह आरूढ़ था कि हम लोग एक ऐसा काम कर रहे हैं जिस के सिद्ध होने से केशव के कथनानुसार दस सहस्र वर्ष तक साथ रहेंगे। यज्ञान्त में सब एक स्थान में चिताग्नि भूमि में बैठे, खोपड़ियों की माला पहनी, मद्यमांस से चर्चित हुए और श्मशान

विभूति से धूसरित हो भूत प्रेतों में तन्मय हो मत्तावस्था में मुग्ध हो गये, तब इनके पूर्व निदेशानुसार चारों ओर से भयानक आग लगादी गई सो सब चट पटा के समाप्त हो गये॥ यों सम्भवत: सं० १६७० में ७६ वर्ष के वय में केशव का इतिहास समाप्त हुआ॥

इसके और ५० वर्ष के अनन्तर विहारी ने सतसई बनाई॥ कदाचित् कथमपि यह मान भी लें कि विहारी ने ९० वर्ष के बूढ़े हो के यह ग्रन्थ बनाया तथापि विहारी के ग्रन्थ से कैसी गहरी वैष्णवता झलकती है और ग्रन्थ के आरम्भ ही में श्रीराधा (मेरी भव०) और श्रीकृष्ण (सीस मु०) के वर्णन से उनका कैसा अनन्य भाव झलकता है। तिस पर भी उनका शुक्लादि मास मान के तिथिवार लिखना उनकी वैष्णवता को साम्प्रदायिक रीति से भी पक्की किये देता है। ऐसे महापुरुष का केशव ऐसे वाममार्गी का पुत्र होना खटकता है। केशव ७६ के बूढ़े हुए तब उनका पुत्र ४० वर्ष का तो होगा और जिसे ४० वर्ष तक वाम संस्कार लगा वह कब साम्प्रदायिक वैष्णव हो सकता है॥

यदि विहारी को इनी केशव के पुत्र ठहराने को "हाँ केशव बूढ़े हो गये तब विहारी जनमे और विहारी भी वृद्ध हो गये तब उनने ग्रन्थ बनाया तथा विहारी के भी वृद्धावस्था ही में सन्तान हुआ" * यों कहा जाय तो क्लिष्ट कल्पना ही होगी। और विहारी के चौबे होने के विषय में जो उनके गोतिया से निर्णय करके गोत्रप्रवर पर्य्यन्त दिया गया यह बाधित नहीं हो सकता॥

वृन्दावननिवासी श्रीराधाचरण गोस्वामी जी † किसी समय भारतेन्दु नामक मासिकपत्र का सम्पादन करते थे। उसी के २०-१-८६ के पुस्तक ३ अङ्क १० में उनने विहारी को भाट कहा है। वह लेख यों है,—

---

* कृष्ण कवि का विहारी का पुत्र होना भी प्रसिद्ध है। वे सवाई जयसिंह के समय में थे और उनने (सं० १७५६ से १८०० तक) राज्य किया। यदि विहारी के ४० के वय में इनका जन्म मानें तो भी क्या कृष्ण ने १०० वर्ष के अथवा इससे भी अधिक वय में ग्रन्थ बनाया!!

† गोस्वामी जी हिन्दी गद्य के प्रसिद्ध लेखक हैं। सं० १५४२ में वङ्गदेश में श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभु का अवतार हुआ। जिनने इस कलियुग में हरिनाम की सुधातरङ्गिणी लहलहा दी। इनके शिष्य गोपालभट्ट गोस्वामी, तच्छिष्य गोपीनाथ राय गोस्वामी, तच्छिष्य दामोदरदास गोस्वामी, पुत्र परम्परा में इनसे दशम पुरुष में श्रीवृन्दावन के रत्न स्वरूप श्री गल्लू जी महाराज गोस्वामी हुए। उनके पुत्र श्री राधाचरण गोस्वामी विद्यमान हैं। इनने कृपाकर भारतेन्दु की पुस्तिका मेरे पास भेज दी है। और पूछने से लिखा है कि "आज तक विहारी के विषय में मेरा वही सिद्धान्त है। कुछ भी हेर फेर नहीं हुआ है।" इनने निज जीवनी स्वयं प्रकाशित की है जो ~/ में इनी के समीप मिल सकती है॥ इस सूचना के लिये मैं इनका अत्यन्त धन्यवादी हूं॥

"विहारी कवि, व्रजभाषा की ससुराल मथुरापुरी के वासी थे। इसी से इनकी भाषा मधुर से भी मधुरतर है। यह जाति के राय थे, और इनके पिता का नाम केशवराय था। जैसा उन्हीं के दोहे से स्पष्ट है।

"जनम लियो मथुरा नगर सुबस बसे व्रज आय।
मेरे हरो कलेस सब केसव केसवराय * ॥

इसमें केशवराय पद से यही बोध होता है कि उनके पिता राय थे। यदि केशवराय शब्द से मथुरा के प्रधान देवता केशव देव जी का अभिप्राय होता तो देव शब्द होता न कि राय। यदि कोई पाठान्तर • (लालचन्द्रिका का यही मत है) "जनम लियो द्विज कुल विषे" से विहारी को ब्राह्मण मानैं तो सन्देहास्पद है, क्योंकि ब्राह्मण कुल के लिये केवल 'द्विज' शब्द अनर्ह है † 'द्विजराज' 'भूसुर' 'भूमिसुर' 'विप्र' आदि लिखते ‡।" इत्यादि।

परन्तु यह कोई प्रबल युक्ति नहीं विदित होती कि विहारी के चौबे होने के प्रमाणों की बाधिका हो। जिस समय विहारी के विषय में बहुत कुछ विदित न था उस समय इतना लिखना भी प्रशंसनीय है।

विहारी स्थानान्तर में भगवान् को 'हरिराय' भी कहते हैं। तुलसीदासजी ने रामराय, रघुराय, मुनिराय आदिपदों के प्रयोग किये हैं। वङ्ग देश में अभी तक कई ब्राह्मणकुल भी रायवंश कहलाते हैं, (जैसे उमेशचन्द्रराय क्षीरोदचन्द्रराय) मैंनपुरी के चौबे भी अनेक अपने नाम के साथ रायपद रखते हैं। जैसे मैनपुरी के प्रसिद्ध चौबे मुकुन्दराय थे, उनके पुत्र मथुराप्रसाद चौबे अभी तक भागलपुर में महाशयजी के यहां विद्यमान हैं। इनका विशेष वृत्त विहारी के जीवनचरित की टिप्पणी में लिखा गया है। इन दिनों सभी जाति में कुछ पुरुष राय पद से अङ्कित मिलेंगे। ऐसे अदृढ़मूल रायपद पर

---

* अमरचन्द्रिका लालचन्द्रिका, हरिप्रकाश आदि किसी प्रामाणिक टीकाकार ने ऐसा पाठ नहीं माना है। प्रत्युत "प्रगट भये द्विजराज कुल" ऐसा पाठ है॥

• गोस्वामी जी निज पाठ को किस प्राचीन टीकाकार का सम्मत मानते हैं? मेरे पास इस समय बहुत पुरानी लिखी नाना टीकाओं की पोथियां धरी हैं पर गोस्वामी जी वाला पाठ कहीं नहीं मिलता॥

† केवल 'द्विज' केवल ब्राह्मण के लिये भी मिलता है जैसे—तुलसीकृतरामायण बालकाण्ड "मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घर ही के बाढ़े।" "निपट हि द्विज करि जानेसि मोही।" इत्यादि।

‡ इससे विदित होता है कि यदि द्विजराज पाठ सिद्ध कर दिया जाय तो गोस्वामी जी को इन्हे शुद्ध ब्राह्मण मानने में कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु मैं द्विजराज पाठ ही यथार्थ निश्चय किये बैठा हूं और जो इस विषय में मुझ से पूछे उसके आगे सिद्ध करने को प्रस्तुत हूं। अनेक प्राचीन लिपियों में यही पाठ है॥

आरूढ़ हो बिहारी को ब्राह्मण से चचिया में उत्पन्न वंश से सम्बन्ध लगाने का मेरा तो साहस नहीं होता॥ (मेरे ग्रन्थ में इस दोहे पर की टिप्पणी भी देखिये) तिस पर भी अन्य भाटों की भांति राजा की विशेष प्रशंसा करना अथवा अप्रसन्न हों तो विशेष निन्दा करना यह बिहारी का भाटों का सा स्वभाव न था। इनने तो प्रशंसा की परा काष्ठा इतनी ही की है कि—

"प्रतिबिम्बित जयसाह दुति दीपति दर्पन धाम।
सब जग जीतन को कियो कायव्यूह जनु काम॥"

और निन्दा की भी अवधि इतनी ही की है कि—

"भेट भये जयसाह सों भाग चाहियत भाल।"

इन कारणों से बिहारी का पूर्व निर्णयानुसार चौबे होना ही सिद्ध होता है।

सं० १६४१ में नैनसुख नामक किसी कवि ने एक वैद्यमनोत्सव नामक ग्रंथ बनाया। उसमें वे भी अपने को केशव के पुत्र बतलाते हैं। कदाचित् ये कविप्रियाकार केशव के पुत्र हों। परन्तु वे केशवदास थे और ये अपने पिता को केशवराज लिखते हैं। तथा इनकी कविता भी अप्रौढ़ है। कदाचित् दूसरे केशव के पुत्र हों यह भी सम्भव है।

इनने यों लिखा है।

⊛ "वैद मनोत्सव ग्रन्थमहिं कहूँ सकल निज आनि (स)।
दुख कन्दन फुनि सुख करन आनँद परम हुलास॥ २५॥
केसव राज सुत नयन सुख कियो ग्रन्थ अमृत कंद।
सुभग नगर सियहनंद में अकबर साह मरंद॥ २६॥
अंक वेद इस मेदिनी सुकल पछि रानि मेदिनी।
चैतमास तिथि दुतिया वार भृगु उनि पाछि चन्द्रसुप्रकास॥ २७॥
मात्रा अंक सुछन्द पुनि कह्यो अल्प मति सोइ।
गुनि जन सकल सवारियो हीन जहां कछु होइ॥ २८॥
कीयो मथन करि औषदी रोग निदान फुनि सकल सुधासम ग्रन्थ।
कह्यो समुझि आदिअंत याहि इति श्रीग्रन्थ मनोत्सव वैद्यमनोत्सवे ग्रंथ॥
संपूर्ण समाप्तं॥

जैसे इनने अपने पिता को केशव राज लिखा है वैसाही बिहारी ने केशवराय लिखा जान पड़ता है॥

⊛ यह लेख बाबू राधाकृष्णदास जी से मिला है जिसका उन्हें धन्यबाद है॥

दोहों का क्रम।

बिहारी ने क्रमशः तो ग्रन्थ बनाया ही नहीं है, प्रत्युत उनके दोहों का यह संग्रह है। इस कारण दोहों का क्रम भिन्न भिन्न टीकाकारों ने भिन्न भिन्न प्रकार का अपनी अपनी रुचि के अनुसार मान रखा है। अतएव यह एक बड़ी आपत्ति है कि किसी एक दोहे का अर्थ कई टीकाओं में देखना हो तो टीका की पोथी लेके पत्रे उलटते ही बैठे रहिये। इसी उपद्रव के हटाने को ग्रन्थान्त में भिन्न भिन्न प्रसिद्ध टीकाओं के अलग अलग क्रम की सूची बड़े परिश्रम से बना के प्रकाशित की है। (मैं जी॰ ए॰ ग्रेयर्सन् साहब बहादुर का अत्यन्त धन्यवादी हूं कि उनने अपने ग्रन्थ छपने के पहले ही मुझे निज सूची दिखलाई थी जिसमें से उनकी सम्मति के अनुसार मैंने अनवरचन्द्रिका और कृष्णदत्त कवि की टीका का क्रम ज्यों का त्यों उठा लिया है)

महाराज जयसिंह ही की सभा के विद्वान् ने तो यह ग्रन्थ बनाया और आश्चर्य है कि महाराज जयसिंह ही ने इस ग्रन्थ के विषय में कुछ न किया। न तो उनका बैठवाया कोई क्रम ही है और न उनने टीका ही रचवाई। पर आश्चर्य है कि भारतवर्षविनाशकारी औरङ्गजेब के तीसरे लड़के सुलतान आजमशाह का चित्त बिहारीसतसई ने खींचा और उनने अनेक कवियों को नियत कर नायिका-नायकभेद के अनुसार दोहों का क्रम रखा। यह आज़मशाही क्रम कहलाता है। लालचन्द्र ने यही क्रम अपनी टीका के लिये रखा और मैंने भी निज बिहारीबिहार इसी क्रम पर बाँधा है। आज़म-शाही क्रम के पहलेही किसी पुरुषोत्तमदास जी ने भी एक क्रम बाँधा था। इसके अनुसार हरिप्रकाश टीका है। अपर टीकाकारों के अपने अपने क्रम भिन्न भिन्न हैं। परन्तु उनमें सब से विलक्षण क्रम रसचन्द्रिका टीका के रचयिता नवाब ईसवी खां का है। इनने नायिका नायक का चरखा छोड़ केवल अकारादि क्रम से ही दोहे रख दिये हैं। (केवल प्रथम अक्षर का ध्यान रखा है द्वितीय तृतीय अक्षर का कोई क्रम नहीं है) ॥ काशीवासी द्विजकवि मन्नालाल जी (मेरे मामा) ने भी हनुमानकवि और बाबू हरिश्चन्द्र जी की सम्मति से एक क्रम बांधा था पर उस क्रम से केवल मूल ही छापा टीका नहीं। इसलिये उसका क्रम सूची में ग्राह्य नहीं किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज़मशाही क्रम और क्रमों से अच्छा है। (सूची देखने से इसका आनन्द मिलता है)

सात सौ।

मार्कण्डेय पुराण में दुर्गापाठ में ७०० मन्त्र हैं। और यह सप्तशती कहलाती है। प्राकृत में हाल कृत सप्तशतिका (वैक्रम पष्ठशतक में रचित) जगत् प्रसिद्ध है *। गोवर्द्धनाचार्य को भी सात सौ संख्या अच्छी लगी इनने वैक्रम तेरहें शतक में आर्यासप्तशती बनाई। इसमें अकारादि क्रम से आर्या हैं और

---

* इन्हीं सप्तशती और सप्तशतिका पदों के अपभ्रंश सतसई और सतसइया पद हैं॥

अपूर्व माधुर्य टपकता है। इनकी प्रशंसा प्रसिद्ध कविजयदेव ने भी निज ग्रन्थ में की है कि "शृङ्गारोत्त-रसत्प्रमेयरचनैराचार्यगोवर्द्धनस्पर्द्धी कोपि न विश्रुतः।" हाल के ग्रंथ का संस्कृतानुवाद गाथासप्तशती का भी प्रादुर्भाव हुआ। क्रमशः यह संख्या भक्तशिरोमणि तुलसीदासजी को भी अच्छी लगी और उनने दोहों में श्रीरामचन्द्र का भक्तिमय ग्रन्थ बनाया।

बिहारी जी की इच्छा हो अथवा न हो पर उनका ग्रन्थ भी सात सौ दोहों का हो पड़ा। इनके अनन्तर और भी कितने ही ग्रंथ सतसई की छाया पर बने परन्तु बिहारी के भाग्य को किसी ग्रन्थकार ने न पाया। इनके अनन्तर बने ग्रन्थों में प्रसिद्ध ये हैं। चन्दनरायकृत सतसई (चन्दनराय संवत् १८३० में थे) और चरखारी के राजा विक्रमसाहीकृत सतसई (ये संवत् १८४२ से १८८५ तक विद्यमान थे)। एक सुकवि सतसई नामक ग्रंथ मैंने भी संवत् १९४४ में बनाया था जो साहित्य-सुधानिधि पत्र के द्वारा बिना मूल्य बाँटा गया था—इत्यादि॥
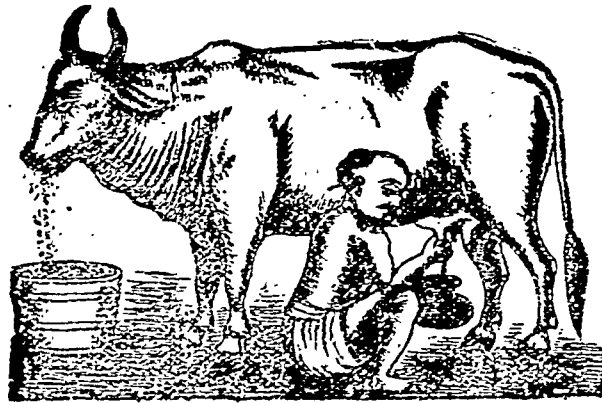
बिहारीसतसई की व्याख्याओं का संक्षिप्त निरूपण।

संस्कृत

(गद्य)

(१) संस्कृत टीका,—इस अपूर्व टीका के रचयिता का नाम आदि से अन्त तक ग्रन्थ में कहीं नहीं है। टीका बहुत प्राचीन है। मुझे छपरानिवासी बाबू शिवशङ्कर सहाय द्वारा एक पुस्तक मिली है। इसी ज़िले के सोमहुता नामक प्रसिद्ध ग्राम के रहने वाले कायस्थ बाबू गङ्गाविष्णु ने संवत् १८४४ वैशाख शुक्ल तृतीया को इस पुस्तक को लिखा था। इस ग्रन्थ के रचयिता ये बाबू गङ्गाविष्णु तो नहीं हो सकते क्योंकि अन्त में बारहो पंक्ति तो इनकी लिखी हैं और वे भी विविध अशुद्धियों से भरी हैं। जिसने ऐसी उत्तम संस्कृत टीका बनाई है वह इतना अशुद्ध लेख नहीं लिख सकता। इस कारण ग्रंथकार कोई दूसरे ही विद्वान् थे। लल्लूलाल ने अपने ग्रन्थ में लिखा है कि "मैंने एक संस्कृत टीका देखी" सो यही संस्कृत टीका जान पड़ती है।

यद्यपि लल्लूलाल के समय में एक हरिप्रसादकृत आर्यागुम्फ (संवत् १८३७, में रचित) तथा यह संस्कृत टीका (संवत् १८४४ की लिखित) ये दोनों ही ग्रन्थ विद्यमान थे, (क्योंकि संवत् १८७५ में लल्लूलाल ने निज लालचन्द्रिका बनाई थी) तथापि हरिप्रसाद टीका कुछ दुर्लभ थी और यदि कथमपि वह मिली भी हो तो लल्लूलाल संस्कृत के ऐसे पण्डित न थे कि उसे पढ़ कुछ भी समझ सकते और यह संस्कृत टीका अत्यन्त सरल है और इसमें प्रत्येक दोहे के अलङ्कार, नायिका, उक्ति आदि स्पष्ट रीति से कहे हैं। इसमें सरल दोहों पर केवल अलङ्कारादि ही कह दिये हैं टीका कुछ भी नहीं है। इस कारण यही विशेष सम्भव है कि लल्लूलाल ने इसी टीका से स्वरचना में सहायता ली हो।

(पद्य)

(२) आर्यागुम्फ,—यह आर्याओं में संस्कृत में बिहारीसतसई का अनुवाद है। यह ग्रंथ बड़े परिश्रम से मुझे मेरे काका पण्डित राधावल्लभ जी के द्वारा मिला है *। इस ग्रन्थ के रचयिता, काशिराज श्रीचेतसिंह महाराज के प्रधान कवि, पण्डित हरिप्रसाद थे। इनने इस ग्रन्थ को संवत् १८३७ में पूर्ण किया। इनने स्वयं ग्रन्थान्त में लिखा है कि;—

"श्रीचेतसिंहवचनादकारि भाषानुसारिसुखवचनैः।
आर्याभिरेष गुम्फो मुनिगुणवसुचन्द्रमितवर्षे ॥"

---

* पण्डित राधावल्लभ जी डुमरांव में विद्यमान हैं। महाराज के यहां से इनको भूमि जीविकादि है। इनका रचित नखसिख मैंने प्रकाशित किया है उसमें इनका जीवनचरित भी दिया है। इनके रचित रसिकरञ्जनरामायण, विजयोत्सव, आदि अनेक ग्रन्थ हैं॥

इनने अपने विषय में अपने नाम छोड़ और कुछ भी न लिखा, जैसे—

"अनुचितरचनातः खलु क्षन्तव्यो मेऽपराधस्तैः ॥"

ग्रन्थारम्भ में इनने चेतसिंह की वंशावली यों कही है ॥

"जयति गणानामधिपः प्रत्यूहव्यूहदारणस्मरणः ।
करिवदन एकदन्तो गौरीतनयः सदा जगति ॥ १ ॥
भज भगवन्तमनन्तं कमलाकान्तं नितान्तमेष गतिः ।
विषयरसेष्वपि सन्तं मित्र भवन्तं परं पाता ॥ २ ॥
भज लक्ष्मीनारायणमजशरणं मित्र तत्पदाम्बुरुहम् ।
गजगतिदं शुभमतिदं त्यज विषयासक्तिमतिविपदम् ॥ ३ ॥
नत्वा श्रीगुरुचरणं शरणं भवभीतितप्तहृदयानाम् ।
करणं सुखस्य काव्यं करोति मेधानुसारेण ॥ ४ ॥
गौतमकुलकमलाकरविकाशकारी बभूव रवितुल्यः ।
नाशितसकलतमिस्रस्तोषितविप्रः कुहूमिश्रः ॥ ५ ॥
तस्य हि वंश वतंशः कंसरिपुध्यानसाधितानन्दः ।
मिश्रः परमानन्दस्तपसां कन्दो बभूव सुधीः ॥ ६ ॥
तनयस्तस्य सविनयः सुनयः प्रबभूव जीवधनः ।
जीवधनप्रतिपाता जगतो ज्ञाता महादाता ॥ ७ ॥
आसीत्तस्य सुपुत्रः पुत्रो मनुरञ्जनो महासुजनः ।
तपसा धुतनिजवृजिनो न जनो यस्यागमत् साम्यम् ॥८॥
श्रीमान्मनसारामस्तस्य च तनयो बभूव जितकामः ।
लोकानामभिरामः सेवितरामो रमारामः ॥ ९ ॥
तस्य परिघभुजदण्डः पुत्रो नृपतिर्बभूव शुभदण्डः ।
खण्डितरिपुकुलमुण्डः श्रीबलिवण्डः प्रचण्डरुचिः ॥ १० ॥
उद्यन्निजदोर्दण्डप्रचण्डखण्डोज्झितारिमुण्डभरः ।
शत्रुभ्योऽखिलधरणीमजयद्बलिवण्डसिंहनृपः ॥ ११ ॥

आसीद् यमो रिपूणां साक्षात्कामः सुखाय रमणीनाम्।
कल्पद्रुर्विबुधानां श्रीबलिवण्डः पतिर्जगताम् ॥ १२ ॥
सम्पाल्याधिकधिषणः पृथिवीं पृथ्वीपतिः समाधाय।
सम्पूर्णां वसुपूर्णां तनये नाथोऽगमद् ब्रह्म ॥ १३ ॥
सोयं सकलधरेशस्तुष्टमहेशः प्रसन्नपद्मेशः।
जीवतु चिरं समा भुवि धीमान् श्रीचेतसिंहनृपः ॥ १४ ॥
लोचनविजितसरोजं जितभोजं जगति बहुवदान्यतया।
स्मितजितरजनीनाथं नाथं गणयामि चेतसिंहमहम् ॥१५॥
कामतरुं सुरधेनुं चिन्तामणिमपि न मनसि गणयामः।
न्यक्कृतवदान्यजातं पश्यामश्चेतसिंहनृपम् ॥ १६ ॥
शोभालज्जितमदनं प्रसन्नवदनं सदा सुकृतसदनम्।
चेतश्चिन्तितफलदं चिन्तय भोश्चेतसिंहनृपम् ॥ १७ ॥
देवद्विजनृपराजे व्यस्ताः सन्त्येव तत्र महति गुणाः।
अस्मिंस्तु चेतसिंहे सन्ति समस्ताः किमाश्चर्य्यम् ॥ १८ ॥
मामप्यल्पप्रज्ञं वक्तुं सततं नुदन्ति भूरिगुणाः।
ते चेतसिंहनृपतेः सुमतेः सुरभूसुरैकनतेः ॥ १९ ॥
श्रीचेतसिंहनृपतेः प्रसन्नलक्ष्मीपतेर्महासुमतेः।
संतोषहेतुरेषा कृतिर्मदीया मुदेऽस्तु सताम् ॥ २० ॥
श्रीचेतसिंहतुष्ट्यै रचयाम्यहमार्य्यया विहारिकृताम्।
भाषासप्तशतीं तां या रसिकानां हि सुखदात्री ॥ २१ ॥
संस्कृतभाषाप्राकृतकृतसंदर्भा जयन्ति ललिततराः।
यदपि तथापि करोम्यहमादरतश्चेतसिंहस्य ॥ २२ ॥

निदर्शन के लिये इनके अनुवाद वाले भी दो दोहे लिख दिये जाते हैं,—

मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोइ।
जा तनकी झाँई परैं स्याम हरित दुति होइ ॥ १ ॥

"सा राधा भवबाधां विविधामपहरतु नागरिकी।
यस्यास्तनुतनुकान्त्या कान्तः श्यामो हरिर्भवति"॥ १ ॥
नीकी दई अनाकनी फीकी परी गोहारि।
तजो मनो तारनविरद बारक बारनतारि ॥ २ ॥
"दत्तमनाकर्णनमिह सम्यगथाभूद्वृथा ममाऽह्वानम्।
मन्ये तारणविरुदस्त्यक्तो द्विरदं समुत्तार्य॥ २ ॥

शृङ्गारसप्तशतिका.—इस ग्रन्थ में प्रत्येक दोहे का अनुवाद संस्कृत दोहे में है और टीका भी संस्कृत में हैं॥ इस ग्रन्थ के रचयिता पण्डित * परमानन्द थे॥

पण्डित परमानन्द ने निज ग्रन्थ के आरम्भ में अपने गुणग्राहक बाबू हरिश्चन्द्र और पण्डित रघुनाथ जी का तो अनेक श्लोकों से वर्णन किया है परन्तु अपने जन्म, वंश, स्थान आदि के विषय में कुछ भी न लिखा केवल एक श्लोक में ग्रन्थसमाप्ति का संवत् दिया है उससे विदित हुआ कि इनके पितामह मुकुन्दभट्ट थे पिता ब्रजचन्द्र शर्मा थे और यह ग्रन्थ सं॰ १९२५ में बना॥

वे श्लोक ये हैं—

---

* मैंने दश ग्यारह वर्ष के वय में इनको देखा था। मुझे ठीक स्मरण है कि दशाश्वमेध की सङ्गत में महन्त बाबा सुमेरसिंह शाहजादा साहेब के यहां मेरे पिता जी के साथ मैं बैठा था साहित्य की कोई बात महन्तजी ने पूछी थी मेरे पिता जी कह रहे थे इसी समय अकस्मात् बाबू हरिश्चन्द्र जी और उनके साथ पण्डित परमानन्द आये पण्डित परमानन्द साँवले से थे लगढग तीस वर्ष का वय था मैली सी धोती पहरे मैली छींट की दोहर की मिर्जई पहने बनाती कन्टोप ओढ़े एक सड़ी सी दोहर शरीर पर डाले थे॥ बाबू साहब ने पिता जी से उनके गुण कहे। सुनके सब उनकी ओर देखने लगे उनने अपनी हाथ की लिखी पोथी बगल से निकाली और थोड़ी बाँच सुनाई और अपनी दशा कह सुनाई कि "मुझे—(कन्याविवाह अथवा और कोई कारण कहा ठीक स्मरण नहीं) इस समय कुछ द्रव्य की आवश्यकता है इसी लिये चिरपरिश्रम में यह ग्रन्थ बनाया कि किसी से व्यर्थ भिक्षा न मांगनी पड़े। अब मैं इस ग्रन्थ को लिये कितने ही राजा बाबुओं के यहाँ घूम चुका कोई तो कविता के विषय में महादेव के वाहन मिले, कहीं के सभा पण्डित घुसने नहीं देते, कहीं संस्कृत के नाम से चिढ़, कोई रीझे तो भी पचा गये कोई कोई वाह वाह की भरती कर रह गये और कोई "अतिप्रसन्नोदमड़ीं ददाति" अब बाबू साहब का आश्रय लिया है।" थोड़ेही दिनों के अनन्तर बाबू साहब ने ५००) मुद्रा और उनके मित्र रघुनाथ पण्डित प्रभृति ने २००) यों दोहे पीछे १) इनकी बिदाई की॥ जो अनेक चँवरछत्रधारी राजाबाबू न करसके, सो वैश्य बाबूहरिश्चन्द्र ने किया। हा! अब वह आसरा भी कविजन का टूट गया।

"पौत्रश्चैष मुकुन्दभट्टविदुषः श्रान्तश्चिरं संस्कृते,
पुत्रः श्रीव्रजचन्द्रशर्म्मसुधियः प्रीत्या महत्याऽतनोत् ॥
दोहासप्तशतीं समर्चितगुणो बुन्देलवंश्याधिपैः '
शय्यां प्राप्य विहार्य्यभिख्यकृतिनो भाषाभृतायाःकृतेः ॥"

"शरदृङ्नवचन्द्रैर्युते वैक्रमाङ्कगणनेन ।
चैत्रकृष्णविष्णोस्तिथौ पूर्णा कृतिः सुखेन ॥"

निदर्शन के लिये इनकी कतिपय कविता दिखलाई जाती हैं,—

मेरी भववाधा हरो राधा नागरि सोय ।
जातन की झाँई परै श्याम हरित दुति होय ॥ १ ॥
अपनय भववाधाभयं राधे त्वं कुशलासि ।
हरिरपि धराति हरिद्द्युतिं यदि माधवमुपयासि ॥ १ ॥
सीसमुकुट कटिकाछनी करमुरली उरमाल ।
यह वानिक मो मन वसौ सदा विहारीलाल ॥ १ ॥
मस्तकमण्डितमुकुटवर हृदयलसितवनमाल ।
मम हृदये वस कटिरसन मुरलीधर गोपाल ॥ २ ॥

कहीं २ इनकी कविता में छन्दोवैषम्य पड़जाता है जैसे,—

लाक्षारुणमपराचरणंवीक्ष्य मनसि कुपितैव ।
तथाभूतमपि हरिकरं सा जज्वाल रुषैव ॥ ४२ ॥
मुखगोपनकपटेन मामुदरं नाभिललाम ।
दिदर्शयिषुः सा रमणी सख्या समं जगाम ॥ ४३ ॥

भाषा

गद्य ।

(४) जुल्फकारकृत सतसई टीका—इस ग्रन्थ के रचयिता प्रायः वही थे जो जुल्फ़कार खां अमीरुल् उमरा नसरत जंग नाम से प्रसिद्ध हैं इनका जन्म सन् १६५७ और मरण सन् १७१३ में हुआ था। ये बहुत ही पुराने टीकाकार हैं । ये पांच वर्ष के थे तब विहारीसतसई बनी थी । पादशाह फर्रुखसियर से किसी जुल्फ़कार से लड़ाई हुई थी कदाचित् वे वही जुल्फकार थे । इसका इतिवृत्त यों है (भारतवर्षीय इतिहास ।"

जहाँदारशाह। १७१२–१७१३।

"बहादुरशाह के चार लड़के थे। चारों में दूसरा लड़का अज़ीमुश्शान औरों की अपेक्षा कुछ अच्छा था। पर इसे राज्य न मिला बड़ा लड़का मुईजुद्दीन वज़ीर ज़ुलफ़िक़ार खां की सहायता से अपने भाइयों को जीतकर जहांदार के नाम से तख़्त पर बैठा। और अज़ीमुश्शान ने अपने भाई भतीजों आदि को क़तल करदिया केवल अज़ीमुश्शान का लड़का फ़र्रुखसियर बङ्गाले में रहने के कारण बच गया। ज़ुलफ़िक़ार ने इसकी मदद इस इरादे से की थी कि यह तो मूर्ख है, नाम मात्र का बादशाह बनाकर राजकाज मैं चलाऊंगा। निदान ऐसा ही हुआ जहांदार तख़्त पर बैठने के बाद राज्य का साराभार ज़ुलफ़िक़ार को सौंपकर आप ऐश में डूबगया। इसने एक वेश्या रक्खी थी। उसपर निहायत मोहित रहने के कारण जब वेश्या के रिश्तेदारों को अच्छे २ उहदों पर बहाल किया तो दरबार के लोग इस से घृणा करने लगे। इधर बङ्गाले से फ़र्रुख़सियर इसी समय बिहार के सूबेदार सय्यिद हुसैन और उसके भाई इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्लाह की सहायता लेकर तख़्त दखल करने के लिये चढ़ आया। आगरे के पास जहांदार से मुक़ाबला हुआ। अन्त में जहांदार हारकर दिल्ली को भागा। पर फ़र्रुख़सियर ने यहां भी नहीं छोड़ा। निदान जहांदार लाचार होकर अपने दोस्त अआदतखां के यहां जा छिपा। पर यहां भी आराम न पाया। अपने वज़ीर ज़ुलफ़िक़ार खां के द्वारा फ़र्रुखसियर के हवाले हुआ और मारागया (१७१३ ई॰)। यद्यपि ज़ुलफ़िक़ार खां ने अपने स्वामी के साथ नमकहरामी करके फ़र्रुख़सियर की खैरख़ाही की थी पर फ़र्रुख़सियर ने इसे भी न छोड़ा मार ही डाला। सच है जिसने अपने स्वामी के साथ बुराई की उसको भलाई कब हुई है"।

कवि श्रीधर ने जङ्गनामाफ़र्रुखसियर लिखा है उसमें इस लड़ाई के विषय में यों लिखा है—

*"सरदारतितहि हुसेनलीखाँ लै अमीरानि संग है।
रन भिरथो ज़ुल्लफ़िक़ार ख़ां हमराह गाढ़े अंग है॥
फर मैं फकाफक होत तेग़ किटार करकतु फंगु है।
तहँ तीर तर तर तरक खाली भए लाख निषंगु है॥"
"उत ज़ुलफ़िकार हिँ खान के संग के अमीर किते गिरे।
ठहराइ सकत न पाइ लखि दल आइ आपु किये थिरे॥
हुस्सेनली खां भो उतारू पिले जंगी मुड़चिरे।
उत भो उतारू ज़ुलफ़िक़ार दुधार दोऊ भट भिरे॥

* हुसेन अली खां फ़र्रुख़सियर का सेनापति था यह इतिहासों में प्रसिद्ध है॥ ये तीनों कवितायें मुझे काशीवासी बाबू राधाकृष्णदास से मिली हैं। (इसका उने धन्यवाद है)

"दोऊ अमीरुल उम्मरा वली दोऊ तहां भरे ?।
हातिम दोऊ रुस्तम दोऊ कायम दोऊ रन करकरे॥
समसेर सरकि सिरोह की सावंत दोऊ ए लरे। (?)
घन घाइ खाइ अँगाइ अंगनि अटल है दोऊ अरे॥"

(५) प्रबन्धघटना—इस व्याख्या के रचयिता राजा गोपाल शरण सन् १७०० में विद्यमान थे।

(६) अनवरचन्द्रिका—यह ग्रन्थ नवाब अनवर खां की सभा के कँवलनयन आदि कवियों ने नवाब के लिये बनाया था। यह टीका आकार में बहुतही छोटी है परन्तु सरल रीति से अर्थ तथा नायिका अलङ्कारादि का निरूपण इसमें भली भांति किया गया है। इस ग्रन्थ में कितने हीं दोहे दो दो बेर लिखे गये हैं और टीका भी दोहरा के की गई है। इसके प्रत्येक प्रकरण में एकादि अंको के भी अलग २ क्रम हैं। यह ग्रन्थ संवत् १७७१ में बनाया गया था। इस ग्रन्थ के आरम्भ में अनवर खाँ के विषय में यह लेख है।

"भनि सय फुल्लहसाहि साहि सरफुद्दी जानो। सालह साहि सुजान साह असगर पहिचानो॥ अनवर साहि समथ्थ मुंनवर साहि पथ्थ सम। हासिम साहि प्रचंड साहि कासिम सु अनुप्पम॥ कहि किसवरसाहि बिलंद वलकैसर साह सुजानि चित। पुनि मालिक अजदर साहि हुव कुलमंडन जस किय अमित॥ १॥

अमित तपोवर वलित हुव जाहिर सब जगजानि। गरदेजी इहिँ ख्याति जुत यूसफ साहि बखानि॥ यूसफ साहि बखानि सकल गुनगान ज्यौं जानैं। विदित बिलाइति सील समुद त्यौं ही पहिचानैं॥ २॥

पहिचाने बहु दिननि कबरि तें करनि करेउनित। लसत थान मुलतान भानसम सोहइ जु अमित॥ अमित सीलमय अबूबकर सुवउमर साहि हुव। पुनि अबदुल्लहसाहि साहि काजीखाँ तिनि सुव॥ ३॥

पुनि लुतफुल्लहसाहि साहि अब्दुल्ब हाबगनि। साहि फरीद सुजानि सैद खाँ सुभट सिरोमनि॥ पुनि सैदमुबारकखाँ प्रबल तनय सैद साहल अवनि। पुनि सैद मुस्तफा जसजलधि सुत ससि अनवरखाँहि भनि॥ ४॥

भोगी सीखैं भोग जासों जोगी जोग सीखत हैं रागी सीखैं राग वागी वागनि के भेव जू। पण्डिताई पण्डित सुकबि कविताई सीखैं रसिकाई सीखत रसिक करि सेव जू ॥ सीखत सिपाही त्यों सिपाहगरी कौलनैंनि कामतरु दान सीखे तजि अहमेव जू। करै को जवाब अनवरखाँ नवाब जू सों और सब सिष्य एक आप गुरदेव जू ॥ ५ ॥

आनँद की उमड़ घुमड़ चहुँ ओर जग लोचन सिरात नैंकु डीठि जो परत हौ। सोहैं सुरचाप के समान नग भाँति भाँति मुकता विमलवारि बूँदनि धरत हौ ॥ सुरपाति के समान वीर अनवरखाँन हराषि हराषि दान वरषा करत हौ। मीतानि के पूरत मनोरथ सरोवर से गुनिन के दारिद दँवारि ज्यौं हरत हौ ॥

धौंसा की धमक धुनि गरज स्रवन सुनि सटासम धरत फराहा फहरात हैं। देखि चउदंत सूँडिसाहससमेटि सकि गरवी गरब तजि हिये हहरात हैं॥ सुभ साहि सैद अनवरखाँ समत्थ जब सिंह ज्यों समर में सह्मारि समुहात हैं। उतकट कदनि विहद वलवारे सद समद दुरद लों दुवन दुरि जात हैं॥ ७॥

दोहा—फूल फूल दे दान फल हरत रोर संतापु।
अनवरखाँ कलिकपलतरु पोषत द्विजगन आपु ॥ ८ ॥

थापे हैं जू दिल्लीपति पुहमि पुरन्दर के कामना के दानि परितापु सबको हरैं। द्विजनि को देत सुख सीलमय साखा करि दयादल अमल अवनि पैं विसतरैं ॥ सदा प्रफुलित ही सुमन जाकौ देखियतु सुमनस सुखद सुभकरनही धरैं। सुरतरु सैद अनवरखाँ कों चाह चाह सुरत रहै न सुरतरु को कहा करैं ॥ ९ ॥

दोहा—अनवरखाँ जुकवीनि सौं आयुस कियो सनेह।
कवितरीति सब सतसया मध्य प्रगट करि देह ॥ १० ॥
ससिरिषिरिषि ससि लिखि लखों संवत् सबस विलास। सं० १७७१
जामे अनवरचन्द्रिका कीनो विमल विकास ॥ ११ ॥
जुहे विहारी सतसया मैं कवि रीति विलास।
सो अब अनवरचन्द्रिका सबको करे प्रकास ॥ १२ ॥

देखै अनवरचन्द्रिका पोथी जो चितु लाइ।
ता नरकौं कवि रीति मैं मोहतिमिर मिटि जाइ॥ १३॥

(७)साहित्यचन्द्रिका—इस ग्रन्थ के रचयिता करणभट्ट भाट थे ये पन्ना के राजा हृदयशाहि के सभा में रहते थे और ये सन् १७३७ में विद्यमान थे॥

(८) रघुनाथकृत टीका—रघुनाथ वन्दीजन संवत् १८०२ में काशी में विद्यमान थे। मुकुन्दलालकवि इनके गुरु भाई थे। काशिराज महाराज वरिवण्डसिंह के ये सभा कवि थे। काशी के समीप पचकोसी के भीतर चोर गांव के रहने वाले थे। इनने इतने ग्रन्थ बनाये।

१रसिकमोहन, २ जगमोहन, ३ इश्कमहोत्सव, ४काव्यकलाधर (सं० १८०२ में रचित) ५ सतसईटीका।

इन्ही के पुत्र गोकुलनाथ कवि थे जिनने काशिराज श्रीउदितनारायणसिंह की आज्ञा से महाभारत अनुवाद महाभारतदर्पण के अनेक अंशो की रचना की थी (यह ग्रन्थ हरिवंशदर्पण सहित, कलकत्ते में सन् १८२८ में छापा गया था) इस ग्रन्थ की रचना में गोकुलनाथ के पुत्र गोपीनाथ और गोपीनाथ समवयस्क तथा नाम मात्र के शिष्य मणिदेव और मणिदेव के वाल्यकाल के मित्र पण्डित दुर्गादत्त (दत्तकवि मेरे पिता इनका जीवन चरित्र वावू चण्डीप्रसादसिंह खड्गविलास यन्त्रालय में बांकीपुर में छाप चुके हैं) भी थे।

गोकुलनाथ ने महाराज चेतसिंह के वर्णन में 'चेतचन्द्रिका" नामक अपूर्व ग्रन्थ बनाया था, जो भारतजीवन प्रेस बनारस में छप गया है। और उनका दूसरा ग्रन्थ 'गोविन्द सुखदविहार' नामक है॥

(९) रसचन्द्रिका—इस अपूर्व टीका के रचयिता नवाव ईसवी खां हैं। नरवरगढ़ के राजाछत्रसिंह ने चाहा कि संक्षिप्तार्थ तथा अलङ्कारादिनिर्णयविशिष्ट एक टीका बने तो उनके लिये नवाव ईसवी खां ने यह ग्रन्थ बनाया है। सब से विलक्षण वात इसमें यह है कि दोहे सब अकारादि क्रम से रखे हैं। पहला दोहा "अपने अपने मत लगे" और अन्त का "हा हा वदन उघारि दृग" है। यह ग्रन्थ सं० १८०८ में समाप्त हुआ। मेरे पास जो ग्रन्थ है सो नरवरगढ़ के निवासी नन्दलाल नागर के वेटे शङ्करलाल का सं० १८२१ अगहन वदी ६ का लिखा है। इस ग्रन्थ के अन्त में ये दोहे हैं,—

"किय प्रसङ्ग नरवर नृपति, छत्रसिंह भुवभान।
पढ़त विहारी सतसया, सव जग करत प्रमान॥
कविनि किये टीका प्रगट, अर्थ न काहू कीन।
अपनी कविता के लयें, और कठिन करि दीन॥
कछू रहै सन्देह नहिं, ऐसी टीका होय।
बाँचि वचन को पद अरथ समझि लेइ सब कोइ॥

तव सव के हित कों सुगम भाषा वचन विलास ।
उदित ईसवी खां कियो, रसचन्द्रिका प्रकास ॥
नन्द गगन वसु भूमि १८०९ गुनि कीजै वरष विचार ।
रसचन्द्रिका प्रकास किय—पूज्यो गुरुवार ॥"

(१०) हरिप्रकाश टीका—सं॰ १८३४ में हरिचरणदास नें यह टीका बनाई। बिहार में जिला सारन (छपरा) में परगना गोआ में चैनपुर ग्राम में ये रहते थे। इनके पिता का नाम रामधन और पितामह का नाम वासुदेव था। ये लोग नवापार वढ़या के पूर्व निवासी थे। इनके इष्टदेव श्रीयुगल किशोर थे। इनका गोत्र शाण्डिल्य था। यमुनातट शृङ्गारवट में तुलसी वन में रहने वाले वावा * प्राणनाथ से इनने सतसई पढ़ी थी।

श्रीपुरुषोत्तम दासजी ने जो क्रम वाँधा था उसी अनुसार दोहों का पौर्वापर्य रख इननें टीका की है। सचमुच इनकी टीका वहुतही उत्तम है। लल्लूलाल ने प्रायः भाषा और क्रमभर उलट पुलट किया है पर इनीं का अर्थ ज्यों का त्यों रख दिया है। और यदि कहीं अपनी ओर से नोनमिर्च लगाया है तो प्रायः गड़ वड़ा गये हैं॥ आजमशाही दोहे और हरिप्रसाद के उल्लिखित दोहों में पाठ भेद वहुत ही है॥ यह ग्रन्थ शाहपुराधीश श्रीमन्महाराज नाहरसिंह जू देव की आज्ञा से वावूरामकृष्ण वर्म्मा ने निज भारतजीवन यन्त्रालय में १८८२ में प्रकाशित किया है॥

(११) लालचन्द्रिका—लल्लूलाल (लालचन्द्र कृत) लल्लूजी लाल आगरे के रहने वाले गुजराती औदीच्य ब्राह्मण थे † गुजरातियों से औदीच्य ब्राह्मणों का कुल परमपवित्र है ये प्रायः वल्लभ कुल के पुष्टिमार्गीय मन्दिरों मे मुखिया होते हैं और स्वहस्त से भगवान् की सेवा करते हैं और भोग की सामग्री वनाते हैं॥ वैष्णव लोग तो प्रायः इनके हाथ की कची भी खाते हैं और गोस्वामी लोग पक्की

* ये वे प्राणनाथ नहीं हो सकते जिनका विहारी से साक्षात्कार होना छत्रसाल के यहां ठाकुर ने लिखा है। क्योंकि उनकी चर्चा और हरिप्रकाश के समय में १२० वर्ष का अन्तर है॥ यदि उनने उस समय के ६० वर्ष अनन्तर पढ़ाया हो और हरिचरणदास ने टीका रचना के ६० वर्ष पूर्व पढ़ा हो तो हो सकता है पर ऐतिहासिक दृष्टि से यह असम्भव है॥ वावूराधाकृष्णदास से विदित हुआ कि नागरीदास महाराज सावन्तसिंह की सभा में भी एक पूर्व निवासी सनाढ्य हरिचरणदास थे, जिनने सभाप्रकाश, कविवल्लभ, (काव्यप्रकाश का अनुवाद) रसिकप्रिया टीका, कविप्रिया टीका और सतसई टीका ये ग्रन्थ वनाये, नागरीदास का जन्म सं० १७५६ औ मृत्यु सं॰ १८२१ में हुआ। कदाचित् ये वहीं हों॥

† ये आगरे में महल्ले वलका की वस्ती (गोकुलपुरा) में रहते थे।

का प्रसाद लेते हैं॥ लल्लूजी लाल के पिता का नाम चैनसुख जी था। ये बड़े दरिद्र ब्राह्मण थे। कुछ पौरोहित्य करते थे। विद्वान् गुणी का जीविका से दुःखित होना भी एक नियत बात है सो ये भी जीविकार्थ भ्रमण करते सं० १८४३ में बङ्गदेश मुर्शिदाबाद में आये, यहां रूपासखी के शिष्य गोस्वामी गोपालदास रहते थे उनसे कवि लल्लूलाल का प्रायः सत्सङ्ग होता था उनी के द्वारा नवाब मुबारकुद्दौला से मुलाकात हुई। यहां गोस्वामी जी और नवाब साहब के यहां से इनका सत्कार होता था इस कारण ये सात वर्ष यहां रह गये॥ गोस्वामी गोपाल दास के वैकुण्ठवास होने पर और उन के भाई गोस्वामी रामरङ्गकौशल्यादास जी के वर्द्धमान जाने पर लल्लूलाल उदास हो गये नवाब से बिदा हो कलकत्ते आये और बावनलक्खी रानी भवानी (इनका चरित राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ने अपने गुटके में भली भांति लिखा है) के पुत्र राजा रामकृष्ण से परिचय कर उनके आश्रय से कुछ दिन कलकत्ते में रहे। जब उनके राज्य का नवीन प्रबन्ध हुआ उन ने अपना राज्य पाया तब लल्लूलाल भी उनके साथ ही नाटोर गये॥ कई एक वर्षों के अनन्तर उनके राज्य में ऐसा उपद्रव हुआ कि वे कैद कर मुर्शिदाबाद भेज दिये गये। तब लल्लूलाल पुनः निर्जीविक हो कलकत्ते आये *। कलकत्ते के बाबू लोगों ने ऊपर ऊपर तो बहुत आदर दिखलाया पर कुछ सहायता न दी। जैसा कि लल्लूलाल ने स्वयं लिखा है कि "उन्हीं के योग्य शिष्टाचार में जो कुछ वहां से लाया था बैठ कर खाया"। इस समय लल्लूलाल को कई वर्ष तक जीविका का कष्ट बना रहा, फिर जीविकार्थ दक्षिण देश जगन्नाथपुरी तक गये। जगदीश्वर के दर्शन किये। दैवात् यहां इस समय नागपुर के राजा मनियां बाबू आये थे उनसे लल्लूलाल से भेट हुई वे इनके गुण से प्रसन्न हो नागपुर ले जाते थे पर किसी कारण से ये न गये फिर कलकत्ते लौट आये †। यहां पादरी बुरन साहब से परिचय हुआ। फिर दीवान काशी नाथ (इनके पोते बाबू दामोदरदास बड़ेबाज़ार कलकत्ते में अभी तक हैं) के छोटे पुत्र के द्वारा श्री डाक्टर रसल साहब के द्वारा डाक्टर गिलक्रिस्त साहब से भेट हुई। उनने इनको हिन्दी गद्य में ग्रन्थ बनाने का साहाय्य दिया और मज़हर अली खां विला, श्री मिरज़ा काज़मअली जवां दो सहायक लेखक दिये॥ तब लल्लूलाल ने एक वर्ष में (सं० १८५७ सन् १८०४ में) ये चार ग्रन्थ लिखे॥ १ सिंहासन बत्तीसी (सुन्दरदासकृत व्रजभाषाग्रन्थ का अनुवाद) २ बेतालपचीसी (यह ग्रन्थ शिवदासकृत संस्कृत पुस्तक से सूरत मिश्र ने व्रजभाषा में किया था और इनने व्रजभाषा से हिन्दी में किया। इस ग्रन्थ का अनुवाद भोलानाथ और शम्भुनाथ का किया भी था) ३ शकुन्तला नाटक। (संस्कृत से भाषानुवाद) ४ माधोनल (माधवानल संस्कृत पुस्तक सं० १५८७ की लिखी बङ्गाल एशियाटिक सोसाइटी में अभी

* चितपुर की सड़क में टिके थे। (सुरति मिश्र के प्रकरण में इसकी सूचनिका है)

† संवत् १८५६ में लाला गुलाबराय और पृथ्वीधरमिश्र ने इनसे सुरतिमिश्र का अमरचन्द्रिका ग्रन्थ बाबू डोमनसिंह के हाथ लिखवाया॥

तक है। मोतीराम का भी एक ग्रन्थ इस विषय पर है इसी का अनुवाद लल्लूलाल ने किया था)

इसकी कहानी यों है कि मध्यप्रदेश के * पुफावती नगर में संवत् ९१९ में एक गोविन्दराव नामक राजा थे। इनके आश्रित माधवानल नामक एक बड़े नृत्यसंगीत तथा सर्वशास्त्र के अभिज्ञ गुणी ब्राह्मण थे। माधवानल के रूप यौवन तथा सङ्गीत के चित्ताकर्षक अपूर्व गुण के कारण उस नगर की सैकड़ों स्त्रियां उन पर मोहित हो उनके लिये घरबार छोड़ने पर उतारू हुई। तब अनेक सद्गृहस्थों ने माधवानल को लम्पट कह राजा के आगे निन्दा की और निर्दोष माधवानल उस नगर से निकाल दिये गये। तब माधवानल कामवती नगरी के सङ्गीतप्रिय महाराज कामसेन से मिले और उनने आदर पूर्वक इने आश्रय दिया॥ महाराज कामसेन के यहां एक परम रूपवती कामकन्दला नामक वेश्या थी वह माधवानल पर मोहित हो गई और दोनों का परस्पर अपूर्व स्नेह हुआ॥ तब विचारे माधवानल उस राज्य से भी निकाल दिये गये। तब उज्जैन के महाराज उस समय के विक्रम के यहां माधवानल गये और उने प्रसन्न किया। विक्रम ने कहा कुछ मांगिये तब उनने यही मांगा कि "कामवती के राजा से छीन के कामकन्दला हमें दी जाय"। तब विक्रम ने स्वीकार किया और कामवती नगरी को सेना से घोर युद्धपूर्वक कामकन्दला को छीना और माधवानल के अर्पण किया। अनन्तर विक्रम की आज्ञा ले माधवानल अपनी नगरी पुफावती में आये और बड़े स्थान बनवाये और आनन्द से दिन काटने लगे। (इन ढहे स्थानों के चिन्ह अभों तक मिलते हैं)

आगरे के पौरने वाले प्रसिद्ध हैं। लल्लूलाल भी बड़े पैराक थे। दैवात् एक दिन गङ्गा में कोई अंगरेज डूब रहा था सो ये निडर हो कर कूद पड़े और उसे निकाल लाये, उसने भी इनकी जीविका के लिये पूरी सहायता दी॥ और इनको द्रव्यसाहाय्य देकर छापाखाना करवा दिया॥ (आगरा कालिज के हेडपण्डित श्रीरामेश्वर भट्ट जी से यह वृत्तान्त मिला)

इसी संवत् १८५७ सन् १८०४ में कलकत्ते में कम्पनी के फोर्ट विलियम कालिज में इनकी नौकरी हुई। दिन दिन इनका सन्मान और नाम बढ़ने लगा। इनके बनाये ग्रन्थ छपे और बिकने लगे तथा स्थान स्थान में पढ़े पढ़ाये जाने लगे॥ तब इनका अधिक उत्साह बढ़ा॥ जिस समय इनने सतसई की टीका बनाई उस समय इनको फोर्ट विलियम कालिज में हिन्दी की अध्यापकी करते १९ उन्नीस वर्ष हो चुके थे॥ इस अवसर में इनने अपनी रचित पोथियों पर सर्वसाधारण की रुचि देख औ कम्पनी के साहाय्य से कुछ धनसामर्थ्य भी पा संस्कृतप्रेस नामक एक उत्तम छापाखाना खोला॥ महल्ले पटलडांगे में तो इनका छापाखाना था और बड़े बाज़ार में बाबू मोतीचन्द गोपालदास की कोठी में हरि देवदास सेठ के यहां भी इनकी पोथियां बिकती थीं॥ इनने अपने ग्रन्थ अपने ही छापेखाने में छपवाये उस समय के छपे ग्रन्थों को लगढग नब्बे बरस हुए पर ऐसे उत्तम मोटे बांसी कागज पर छपे हैं कि अभी तक नये जान पड़ते हैं॥

---

* ग्रेयर्सन् साहब के लेखानुसार बिल्हरी नगर का पुराना नाम पुफावती है॥

इस समय तक ये अपने छापेखाने में इन ग्रन्थों छपवा चुके थे,—

(१) सिंहासनबत्तीसी—(इस की चर्चा ऊपर हो चुकी है इसमें विक्रम के सिंहासन की पुत्तलियों की ३२ कहानियां हैं)

(२) माधवविलास—(रघुराज गुजराती ने भी इसी नाम का एक नाटक बनाया था)।

(३) सभाविलास—(यह पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है। इसमें नानाप्रकार की कविताओं का संग्रह है। इसी की छाया पर राजा शिवप्रसाद के गुटका आदि अनेक संग्रह बने हैं)।

(४) प्रेमसागर—(ऐसा कौन सा संग्रह होगा जिसमें प्रेमसागर का थोड़ा अंश न हो॥ सन् १५६७, संवत् १६२४ में चतुर्भुज दास ने व्रजभाषा में दोहा चौपाई में भागवत दशमस्कन्ध का अनुवाद किया था उसी पर से लल्लूलाल ने यह ग्रन्थ किया। अतएव यह यथार्थ में श्रीमद्भागवत का अनुवाद नहीं है॥ यह ग्रंथ सन् १८०८ तक तो नहीं छपा था परन्तु अब तक तो नाना प्रेसों में नानावार छप चुका है॥

(५) राजनीति—(यह हितोपदेश का व्रजभाषा में अनुवाद है। यह ग्रन्थ इनने सं० १८६८ सन् १८१२ में बनाया था॥

(६) भाषा कायदा—हिन्दी भाषा का व्याकरण। लोग कहते हैं कि इसकी १ कापी बङ्गालएशियाटिकसोसायटी के पुस्तकालय में अब तक है। यह ग्रन्थ छप तो चुका था पर प्रचलित न हुआ॥

(७) लतायफ़ हिन्दी—(उर्दू, हिन्दी औ व्रजभाषा में १०० कहानियां। यह किसी समय कलकत्ते में New Cyclopedia Hindustani नाम से छपी थी॥

(८) माधोनल (माधवानल)—यह ग्रन्थ मोतीराम कवि ने लगभग सं० १७५५ में व्रजभाषा में उपन्यासाकार लिखा था। उसी से लल्लू लाल ने हिन्दी में उलथा किया॥

(९) बेतालपचीसी—प्रसिद्ध कवि सूरतिमिश्र ने शिवदासरचित संस्कृत से अनुवाद कर व्रजभाषा में बेतालपचीसी बनाई थी। उसी ग्रंथ को लल्लू लाल ने हिन्दी में किया॥ अवध के दौरिया खेड़ा के राजा अचलसिंह के सभा कवि पण्डित शम्भुनाथ त्रिपाठी (सं० १८१०) ने और पं० भोलानाथ ने भी एक एक बेतालपचीसी बनाई है॥

(१०) लालचन्द्रिका—यह ग्रन्थ इन दिनों घर घर है। इस ग्रंथ की रचना में भी सूरतिमिश्र और हरिचरणदास ही के लेख इनके अवलम्ब हैं *।

वस्तुत: लल्लूलाल बड़े विद्वान् न थे यदि इनदिनों वे होते तो कदाचित् वे इतने यश के भागी न होते। परन्तु जिस समय वे थे उस समय हिन्दी दुर्दशाग्रस्त थी इसलिये जो लिख गये वही बहुत हुआ॥ न तो उनका कोई ग्रन्थ निज मस्तिष्क का है और न कोई सीधा संस्कृत का लिया है॥ औरों के रचित व्रजभाषा के ग्रंथ ही पर उनका नर्तन है॥ लालचन्द्रिका के अन्त में "हूं विनवौं" आदि कुछ दोहे हैं सो लल्लूलाल ने ऐसे लिखे हैं मानो अपने बनाये हों पर वे सब कृष्णकवि के हैं॥

* मेरे पास लल्लूलाल की स्वयं छपवाई कापी है।

व्यास रामशङ्कर जी के द्वारा आगरा कालिज के हेड पण्डित श्री रामेश्वरभट्टजी से जो लेख मिला सो ज्यों का त्यों यह है,—

"लल्लू जी लाल गुजराती सहस्र अवदीच थे, पिता का नाम चैनसुख जो था, ये चारभाई थे बड़े लल्लू जी फिर दयालजी मोतीराम जी चुन्नीलाल जो लल्लू जी के संतति नहीं थी दयाशंकरजी के हरीरामजी थे सो नारमिल स्कूल में भाषा के पं थे तनखा ३०/ पाते थे, दयाशंकरजी आगरा कालेज में ६०/ के नौकर थे भाषा पढ़ाते थे, हरीराम के २ पुत्र भये रामचन्द्र श्यामलाल रामचन्द्र कुछ न पढ़े रेल में १०) के थे श्यामलाल जयपुर में किसी को गोद बैठा, रामचन्द्र का लड़का रामसेवक है १०) का रेल में नौकर है एक छोटा दो वर्ष का है।

३ मोतीलालजी के पुत्र नहीं भया, ३०) के आगरा कालेज में भाषा पढ़ाते रहे॥

४ चुन्नीलालजी २०) के आगरा कालेज में भाषा पं० थे २ पुत्र भये मन्नूलाल छगनलाल, मन्नूलाल ५०) के भाषा पाठक थे छगनलाल प्रिन्सिपेल के क्लार्क ३०) के थे॥

मन्नूलाल के ४ पुत्र हुए केशवराम विशेशरदयाल अमृतलाल बसन्तराम। केशवराम ३०। क्लार्क आगरा कालेज में थे. विशेषरदयाल डिप्टी इंस्पेक्टर ८०) के थे, अमृतलाल २५) के Writing Master फरुखाबाद के स्कूल में थे, बसन्तराम विद्या कुछ हिन्दी पढ़े हैं कहीं नौकर नहीं आप जानते ही हैं केशवराम एक बुरी बीमारी से ग्रसित होकर २।३ वर्ष हुए मर गये विशेषरदयाल अमृतलाल इसी वर्ष में अर्थात् १९५३ में मरे बसन्तराम मौजूद हैं॥

केशवराम के २ लड़के विशंभर रंगेश्वर। वि० हिन्दी कुछ पढ़ा है ४) का कहीं है रंगेश्वर ५ वें दरजे में पढ़ता है।

विशेषरदयाल के पुत्र नहीं अ० ला० पुत्र नहीं बसन्तराम के संतति नहीं पूर्व दोनों के पुत्री एक एक है।

छगनलाल के २ पुत्र थे सालगराम लक्ष्मीराम। सालगराम कुछ हिन्दी अंग्रेजी पढ़े हैं नौकर कहीं नहीं लक्ष्मीराम रेल में १५) का था ८।७ वर्ष भये मरगया—विवाह इसका नहीं भया था।

सालगराम के २ पुत्र १ गोपीनाथ २ बालमुकुन्द। गोपीनाथ राज उदयपुर में किसीगांव का थानेदार है छोटा मथुरा में किसी मन्दिर का रसोई आदि वा ठाकुर सेवा में हैं, इनमें से अभी किसी के सन्तति नहीं।

चैनसुखजी बड़े गरीब ब्राह्मणवृत्ति कुछ करते थे। लल्लू जी भाषा अच्छी पढ़े थे, घर से निकल कर रोज़गार की तलाश में कलकत्ते चलदिये, प्रारब्ध खुलने को थी तैरना भी अच्छा जानते थे, किसी साहब को गंगाजी में से डूबते हुए बचाया वह प्रसन्न भया उसने छापेखाना करा दिया हिन्दी की कदर थी जब सहस्रों रुपये का माल छापेखाने में हो गया उसने इनही को दे दिया। ये सब माल

नावों पर लादकर आगरे लाये गरीवी गई घर वनवाया रामायण ३०,४०/५०, को विकती थी ऐसेही प्रेमसागर २०, को ३०, को इत्यादि यहाँ ठाठकर फिर वे कलकत्ते हो चल दिये और वहीं मरे इनके पास चिट्ठियां अंग्रेजों की अच्छी २ थी उन्हें दिखाकर दयालजी ने एक स्कूल जारी किया। होते २ वह आगरा कालेज हो गया कुनवे के सव उसमें नौकर हो गये, ये लोग लल्लू जी के समय से कुछ बढ़े, भाषा में लल्लू जी मन्नूलाल, हरीरामजी ये अच्छे थे, हाल अव बुरा है। कर्जा देना है। मकानपर नौवत आगई। कोई भाषा में अच्छा नहीं भया। भंगपीना मस्त रहना।"

लल्लूलाल के ग्रन्थों में सवसे उत्तम लालचन्द्रिका है और इसी ग्रन्थ से इनकी विद्या की सारगर्भता प्रगट होती है। यह विहारी सतसई के आज़मशाही क्रम के अनुसार उसी ग्रन्थ पर टीका है॥ यह ग्रन्थ पहले पहल लल्लूलाल ने स्वयं अपने ही छापेखाने में सन् १८१८ में छपवाया फिर सन् १८६४ में लाइटप्रेस में (पण्डित दुर्गादत्त) दत्त कवि (मेरे पिता जी) ने छपवाया और अन्यत्र भी अनेक जगह छपा है। लोग कहते हैं कि काशीराज महाराज चेतसिंह के दरवार के कविवर लाल कवि ने भी एक सतसई की टीका लालचन्द्रिका नाम से बनाई यदि यह सच भी हो तो वह ग्रन्थ अलभ्य है॥ ये लाल कवि और वे लाल कवि एक तो कभी नहीं हो सक्ते हैं क्योंकि दोनों में समय का भी ५० वर्ष का आगा पीछा होता है तथा काशीवाले तो भाट थे उनके वंश मे अभी तक उसी दरवार में हैं और ये तो औदीच्य गुजराती थे॥ हाँ यह है कि ये भी लाल कवि कहलाते थे जैसा इनने स्वयं लिखा है कि "टीका की कविलाल ने"॥ यह ग्रन्थ संवत् १८७५ माघ सुदी ५ शनि को समाप्त हुआ था॥

लल्लूलाल राधावल्लभ संप्रदाय के वैष्णव हों तो कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि इनने कृष्ण चरित ही पर विशेष लिखा है और प्रायः अपने ग्रन्थारम्भ में वैसाही मङ्गल किया है जैसे लालचन्द्रिका "श्रीराधा वल्लभो जयति" और इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि "राधाकृष्णप्रसादात् सम्पूरणम्"॥

यह तो स्पष्टही है कि ये संस्कृत के विद्वान् न थे, क्योंकि एक तो इनने जो जो संस्कृत के अनुवाद किये उन उनके ब्रजभाषानुवाद ही उनके सहायक थे जैसे उनने स्वयं लिखा है कि "एक वरष में चार पोथो का तरजमा ब्रजभाषा से रेखते की वोली में किया, सिंहासन वत्तीसी, वेतालपचीसी, सकुन्तला नाटक औ माधोनल॥" (इनने हिन्दी के लिये रेखते की वोली पद दिया है। क्या अभी तक इस भाषा का कोई नाम नहीं स्थिर हुआ था ?) दूसरे इनके लेख में संस्कृत विद्या की दुर्वलता पद पद में प्रगट होती है॥ जैसे इनने अपने छपवाये लालचन्द्रिका ग्रन्थ में आरम्भही में लिखा है 'यह मङ्गलाचर्ण ग्रन्थकरता विहारीलाल कवि कहता है॥ नायिका के ठिकाने 'नायका' तो इनने प्रतिदोहे पर कहा है। यौवन के लिये योवन लिखा है जैसे दो० ४५६ की टीका "नायका नवयोवना"। दोहा ४५५ की टीका में वृत्त्यनुप्रास के ठिकाने 'वृत्यानुप्रास' लिखा है॥ इनने तात्पर्य के ठिकाने 'तातपर्य' औ परीक्षा के ठिकाने 'परिक्षा' ही वरावर लिखा है जैसे दो० २८६ की टीका में॥ ग्रन्थ के अन्त में

इनने दो पंक्ति संस्कृत लिखी हैं वह भी ऐसो ऊटपटांग हैं कि देखते हँसी आती है॥ जैसे, इति श्री कविलालविरचितलालचन्द्रिका विहारी सतसई टीका प्रस्ताविक अन्योक्ति नवरस नृपस्तुति वर्णन नाम चतुर्थप्रकर्ण श्रीराधाकृष्णप्रसादात् सम्पूरण ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्तं शुभमस्तु॥"

ये संस्कृत के अनभिज्ञ तो थे ही परन्तु ये व्रजभाषा भी उत्तम रीति से नहीं जानते थे अथवा आगरावासी होने के कारण जानते भी हों तो उसका ठीक मर्म नहीं समझते थे अतएव जो कुछ इनने सोधना चाहा वही व्रजभाषा से च्युत हो गया औ विगड़ गया व्रजभाषा में तालव्य श और टवर्गीय ण दैवात्ही कहीं होतो हो नहीं तो नहीं ही पाया जाता है। परन्तु लल्लू लाल ने यह अपनी पण्डिताई दिखलाई है कि अनेक सकारों को पुनः शकार वना के शोन के शड़के झाड़े हैं। जैसे, दोहा ७१५ "शशिवदनी मोसो कहत" इत्यादि और दोहा ६२० "शीतलतारु सुगंध की घटै न महिमा मूर। पीनसवारे जो तज्यौ शोरा जानि कपूर", इत्यादि॥ व्रजभाषा में तालव्य श और मूर्धन्य ष को दन्त्य स का आकार ग्रहण किये तो कई सहस्र वर्ष हुए॥ व्रज की अति प्राचीन भाषा शौरसेनी प्राकृतही इसकी साची है। जैसे रत्नावली "दुल्लह जणाणुराओ लज्जा गुरुई परव्व सो अप्पा। पिअ सहि विसमं पेम्मं मरणं सरणं ण वारकम्"॥

हां उस समय शौरसेनी भाषा में समस्त न कार ट वर्गीय ण कार हो गए थे जैसे जेण विण णहि जिज्जिय अणुणिज्जिय सो किदा वराहोवि। पत्तेविण अरडाहे भणकस्सण वल्लहो मअग्गी इत्यादि"॥ परन्तु काल का ऐसा माहात्म्य है कि धीरे २ पुनः सब के सब टवर्गीय णकार तवर्गीय नकार हो गए॥ केवल कण्ठ आदि शब्दों में मिले हुए ण रह गये हैं॥ यह अनुभव उने न था अतएव श औ ण ठीक करने का कुछ यत्न किया उसके अनन्तर मर्म बिना समझे मुनशी नवलकिशोर और पण्डित रामजसन प्रभृति दो तीन महाशय ने व्रजभाषा के उसी सोधन को चलाया। फिर शिक्षा विभाग के व्रजभाषानभिज्ञ लोगों ने बालकों के पढ़ने के लिये कितनेही ग्रन्थ इसी ढङ्ग पर चलाये और डिप्टी साहबों की आज्ञा से गुरूजी लोग मार मार कर बच्चों को इसी कुरस्ते चलाने लगे सो यह बड़ाही अनर्थ चारो ओर फैलता जाता है॥ विहार में भी यह अनर्थ होता देख यहां के प्रसिद्ध खड्गविलास छापेखाने के अध्यक्ष से भी मैंने यह विषय कई वेर कहा और अपने मासिकपत्र पीयूषप्रवाह में भी छापा अनन्तर खड्गविलास के अध्यक्ष महाराज कुमार बाबू रामदीनसिंह ने कहा कि हमको ग्रेयर्सन् साहब के द्वारा श्रीतुलसीदास जी लिखित रामायण मिली है उसके देखने से आपकी बात और दृढ़ हुई क्योंकि उसमें बहुत श औ ण नहीं है ठीक जैसा आप कहते हैं वैसाही है पर क्या किया जाय कोई सड़ा सा डिप्टी इंसपेक्टर भी इन बातों को समझता तो कुछ भाषा का शोधन होता॥

लल्लूलाल ने केवल इतनाही नहीं किया परन्तु व्रजभाषा में जिन यकारों को जकार हो गया है उने फिर इनने य वनाया जैसे दो॰ २० 'योवन नृपति (दो॰ २१) "योवन आमिल" (दो॰ २२) 'योवन जेठ दिन" ऐसेही "यदपि, यद्यपि, यश अपयश, यमकरि, युवति, योग युक्ति आदि॥

किसी ठिकाने इनने अपनी हिन्दी भी व्रजभाषा से मिली विलक्षण ही नरसिंहाकार लिखी है जैसे (दोहा २८२) "उत्कण्ठित होतु हैं देखे है कि कब योकृष्ण आवैं और मैं अपना सच दिखाऊँ।"

ये कई एक बातें "इसलिये दिखाई गई हैं' कि सग्रह त्याग न बिनु पहिचाने" । अर्थात् इनके अनुसार औरों को उचित नहीं है कि ऐसे शब्दों का प्रयोग करैं॥

इनके नामोल्लेख चार प्रकार से मिलते हैं १ लल्लूलाल. २ लल्लूजी लाल, ३ कविलाल, लालचन्द्र॥

लल्लूलाल ने और सब टीका कारों से विलक्षण काम यही किया है कि दोहे के शब्द क्रम के अनुसार, अर्थ रखा है॥ इनके ग्रन्थ में शङ्का समाधान भी अच्छे हैं परन्तु सुरतिमिश्र आदि के ग्रन्थ देखने के अनन्तर ये शङ्का समाधान इतने विलक्षण नहीं प्रतीत होते तथापि कितनेही अद्भुत अर्थ और शङ्का समाधान इनके स्वयं कल्पित हैं और वे अत्युत्तम हैं॥ इसमें सन्देह नहीं कि लल्लू जी लाल ने हिन्दी गद्य लिखने का अपने भविष्यद् विद्वानों को पथ दिखला दिया और पूर्ण परिश्रम औ केवल विद्याभ्यास में जीवन व्यतीत किया और हिन्दी गद्य को उस समय सिंहासन पर बैठाया जिस समय गुर्जर भाषा औ बङ्गभाषा बालिका थीं। यदि उस समय से आज तक सुलेखक लोग हिन्दी की सेवा करते तो यह सारे भारत में चक्रवर्तिनी होती और ऐसा कदापि न होता कि उर्दू की पताका उड़े और इसे कहीं स्थान न मिले। इसलिये हिन्दी भाषा के परमोन्नायक विद्वान् लल्लूलाल कवि को कोटिशः धन्यवाद देना यावत् हिन्दी के रसज्ञों का धर्म है॥

यह नहीं विदित कि कितने वर्ष के वय में किस स्थान पर लल्लूलाल कवि ने संसार का त्याग किया॥

---

(१२) सरदारकवि कृत टीका—काशिराज महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह के सभाकवि प्रसिद्ध कवि सरदार थे। इनके पिता का नाम हरिजन था। इनके शिष्य नारायण कवि थे। इनके बनाये अनुवादित तथा संग्रहीत इतने ग्रन्थ हैं—

१ साहित्यसरसी २ हनुमतभूषण. ३ तुलसीभूषण, ४ मानसभूषण, ५ कविप्रिया की टीका काशिराजप्रकाशिका, यह ग्रंथ सरदार कवि और उनके शिष्य नारायण ने मिल के बनाया सो भूमिका में पण्डित गोपीनाथ पाठक ने छापा है ६ रसिकप्रिया की टीका, ७ बिहारीसतसई की टीका। ८ शृङ्गारसंग्रह. (संवत् १९०५ में रचित) ९ मुक्तावली का अनुवाद (यह ग्रन्थ अमुद्रित स्वयं सरदार कवि ने मुझे दिखाया था। दोहे कवित्त चौपाई में न्यायशास्त्र का अनुवाद यह आश्चर्य है। जिस समय मैंने देखा उस समय तक यह ग्रन्थ पूरा नहीं हुआ था। आज तक भी छपा नहीं) १० सूरदास के ३८० कूट पदों की टीका॥

ये संवत् १९३८ तक ७० वर्ष के बूढ़े काशी में मड़ई भदैनी में विद्यमान थे।

(१३) यूसुफखांकृत टीका—डेढ़ सौ वर्ष से अधिक बीते किसी यूसुफखाँ ने टीका की अथवा उनके नाम से किसी ने बनाई॥

(१४) रामबख्श कृत टीका—सिरमौर के राणा के सभाकवि रामबख्श कवि थे, (रामकवि) इनने एक साहित्यग्रन्थ हिन्दी में बनाया और विहारी पर टीका रची। (इनका समय ठीक विदित नहीं)॥

(१५) वैद्यक टीका—सुना है कि किसी छोटूराम नामक विद्वान ने यह टीका की है। इस टीका में सब दोहों का अर्थ वैद्यक में किया है॥

(१६) देवकीनन्दन टीका—काशीनिवासी प्रसिद्ध जिमींदार बाबू देवकीनन्दन के द्वारकवि ठाकुर कवि की बनाई हुई यह टीका है इस टीका की रचना सम्वत् १८६१ में हुई है ठाकुर कवि के पिता ऋषिनाथ थे। अपने ग्रन्थ के आरम्भ में इनने अपने प्रभु बाबू देवकीनन्दन के पूर्वजों का विशेष वर्णन किया है। इनका पूर्व्व निवास असनी नामक ग्राम में था। इनने अपने विषय में इतना लिखा है:—

पुत्र सुकवि रिषिनाथ को हौं है ठाकुर नाम।
असनीबासी मै कह्यो या लषि नृप गुनधाम॥

प्राय: भाट जाति कवीश्वरों का ही असनी ग्राम है इसलिये ठाकुर भी उसी जाति के कवि थे ऐसा निश्चय होता है। प्रसिद्ध सेवक कवि इन्हीं के कोई थे।

इनने विहारी के जीवन के विषय में विचित्र ही राम कहानी लिखी है सो कविजनों के अवलोकनार्थ ज्यों की त्यों प्रकाशित की जाती है—

दोहा।

"विप्र विहारी सुद्ध भो ब्रजवासी सुकुलीन। ता तिय ती कविता निपुन सतसैया तेहिँ कीन ॥ १ ॥
जाहिर जग जैसाहि नृप धीरबीर कछवाह। दच्च दच्छिना देत तो नित प्रति पर्व अथाह ॥ २ ॥
कविहु बिहारी विप्र तहँ जाइ दच्छिना पाइ। नित निबहत सन्तोष सों निज घर सुख सों आइ ॥३॥
तेहि नृप अति सुन्दर सुनी अपर महीपकुमारि। व्याहि ताहि ल्यायो महल बस भो रूप निहारि ॥४॥
राजकुमारि न सों रही मुगधा लायकभोग। तज महीपति वस भयो भूलि सकल संजोग ॥ ५ ॥
गये विहारी विप्र तहँ लह्यो दच्छिना नाँहि। दुखित लौटि आये घरे कथा कही तिय पाँहि ॥ ६ ॥
बोध कियो तिय पिय सुनो दुख न करो मन माहिँ। दिय दोहा लिखि यों कह्यो जाहु जहाँ नरनाह ॥
दोहा नृप जैसाहि कों दीजो तहाँ पठाइ जहँ तियबस हैं महल में ऐहैं आनँद पाइ ॥ ८ ॥
लहि तिय को उपदेश इमि चले विहारी विप्र। तिय बस नृप जेहिँ महल तेहिँ घोढ़ी आए छिप्र ॥६॥
दिय दोहा दासिहिँ कह्यो दीजे नृप कों जाइ। सो तेहिँ दिय नृप को कही द्विज की दसा बनाइ॥१०॥

विहारीतियकृत दोहा।

'नहिँ पराग नहिँ मधुर मधु नहिँ विकास एहिँ काल। अली कली ही सोँ बँध्यो आगे कवन हवाल'॥११॥

बाँचत नृप दोहा विहँसि रानी रूप निहारि। उठि आये कढ़ि द्वार द्विज दई असीस विचारि ॥ १२ ॥

किय प्रनाम नृप कहँ कुशल सुकवि कही भइ आज। रीझि कह्यो दोहा कियो तुम कहँ यह महराज ॥

दै मोहर भरि अञ्जुली नृप यह आयसु दीन। प्रति दोहा देहौं मोहर करु इमि और प्रवीन ॥ १४ ॥

लै आयसु नृप की चल्यो आशिष दै द्विजराज। आयो निज घर मोद सोँ तिय सौं कह्यो सुकाज ॥१५॥

दोहा चौदह सौ किये तेहिँ तिय परम प्रवीन। लै आये द्विजराज पैं दै आसिष तेहिं दीन ॥ १६ ॥

बाँचि मुदित नृप मोहरैं चौदह सौ तेहिँ दीन। तिनु मैं राखे सात सौ चुनि सतसैया कीन ॥ १७ ॥

बहुत लिखाईं पुस्तकैं दईं प्रवीनन काज। एक विहारी कौं दई गाँव सहित महराज ॥ १८ ॥

अमलि गाँव आए सुघर मुदित विहारीलाल। दै मोहरैं सुकथा कही आनन्दित भइ वाल ॥ १९ ॥

पुस्तक लै तिय कहिय पिय छत्रसाल पहँ जाउ। है बुँदेल नृपसुकवि सँग रहत बहुत कविराउ ॥२०॥

तहँ प्रसन्नता होइ तौ बोध होइ पिय मोर। तौ ठहरै सब जगत मैं यह सतसई सु ठौर ॥ २१ ॥

लई विहारी सतसई छत्रसाल पहँ जाइ। करि जाहिर कह सुद्ध यह कीजै कृपा बढ़ाइ ॥ २२ ॥

छत्रसाल नृप ताहि लै सँग सब सुकवि विसाल। प्राननाथ पहँ जाइ कैं दई सतसई हाल ॥ २३ ॥

प्राननाथ निरगुन भगत वाह प्रसन्नता हीन। जगनापित रति फागु सी ब्रीड़ाव्यञ्जक कीन ॥ २४ ॥

लई विहारीसतसई सो सुनि भये उदास। बिदा न माँगी भूप सों आये अपने वास ॥ २५ ॥

सकल कथा तिय सौं कही सुनि प्रवोध तेहिं कीन। जाहु कान्त यह फेरि लै उनहीं कह्यो प्रवीन ॥२६॥

कहियो नृप छतसाल सौं ये हैं जग पितु मात। जुगलकिसोर यहां लसैं पन्ना मैं अवदात ॥ २७ ॥

प्राननाथसुत काव्य अरु यह सतसैया लेहु। आगे युगलकिशोर के विनती करि धरि देहु ॥ २८ ॥

निसि न रहै कोउ लखौ प्रात खोलि पट दोइ। जा पै दसखत होइहैं तिन की नीकी सोइ ॥ २९ ॥

लै तिय को उपदेस सोइ फिरे विहारीलाल। नृप सोँ कहि सोई कियो दरनीसीख दिलास ॥ ३० ॥

सतसैया ही पै भये दसखत प्रिया विहार। प्राननाथ प्रिय किय लखत भूप सहित कवियार ॥ ३१ ॥

सुकवि विहारिहिं कहि सबनि नै अति कियो बखान। आये सब निज २ घरै पाइ उचित सनमान॥३२॥

विप्र विहारी मुदित अति नृप सौं भये बिदा न। आये घर कहि सब कथा तिय को कियो बखान ॥३३॥

बहुत खोजायो ना मिल्यो घर गै कवि यह जानि। अति प्रसन्न छत्रसाल भो अति सन्तोषो मानि ॥३४॥

सम्पति अति भूषन सुपट हय पालकी करीन्द्र। पांच गांउ को लिखि दियो दानपत्र नृप इन्द्र ॥ ३५ ॥

छत्रसाल पत्री लिखो सुकवि विहारीलाल। यह लै आवो कै कृपा मो पै परम दयाल ॥ ३६ ॥

गये लोग लै जहँ वसै विप्र विहारी वेस। दिय पत्री कर या कह्यो पठयो हमैं नरेस ॥ ३७ ॥

बाँचि विहारी पत्रिका दिय निज तिय कोँ जाइ। बाँचि न किय कछु नृपति कोँ दोहा लिख्यो बनाइ॥३८॥

बिहारीतियकृत उत्तर।

"तौ अनेक औगुनभरी चाहै याहि बलाइ। जो पति सम्पति हू बिना यदुपति राखे जाइ" ॥ ३९ ॥

प्राननाथ पत्री लिखो हुतौ बोलिबे काज। बाँचि तिन्हें दोहा लिख्यो साजि गरबहर साज ॥ ४० ॥

बिहारीतियकृत जवाब।

"दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन विस्तारन काल। प्रगटत निरगुन निकट ही चङ्ग रङ्ग गोपाल" ॥ ४१ ॥

दोउ दोहा सब वस्तु जुत छत्रसाल के लोग। आइ दिये दोहा दुवो वस्तु कह्यो कवि जोग ॥ ४२ ॥

दोऊ दोहा बाँचि कै प्राननाथ छतसाल। वस्तु फिरी कोँ लै भये कवि गुन कहे बिसाल ॥ ४३ ॥

कथा सुनी जैसाहि सब सुंकवि बिहारी काज। ग्राम बहुत दै सब दई राज सिरी को साज ॥ ४४ ॥

करो बिहारी कीर्ति योँ पतिव्रता सु प्रवीन। करी बिहारी सतसई जग जाहिर यह कौन ॥ ४५ ॥

राधा हरि जु कृपा करैं तौ मानैं सब कोइ। सु तिय बिहारीसतसई सबै बखानै लोइ ॥ ४६ ॥

(१७) प्रभुदयाल पाँड़े कृत टीका—यह टीका सं० १९५२ में कलकत्ता बङ्गवासी आफिस से प्रकाशित की गई है। इसके रचयिता पण्डित प्रभुदयाल पाँड़े माथुर चतुर्वेदी हैं। ये जिला आगरे के निवासी और कानपुर के पण्डित प्रतापनारायण मिश्र के शिष्य हैं। इस समय इनका वय २९ वर्ष का है और प्रसिद्ध संवादपत्र हिन्दी बङ्गवासी के सहकारी सम्पादक हैं। यह टीका कदाचित् अति शीघ्रता से लिखी गई है। क्योंकि अनेक दोहों के पाठ भी गड़बड़ हैं और अनेक दोहों के अर्थ भी गड़बड़ हैं। विशेषता यही है कि टीका की भाषा बहुत उत्तम है और अन्वय तथा शब्द व्युत्पत्ति का क्रम अच्छा है॥

(१८) बिहारीरत्नाकर—यह टीका थोड़े ही दिन हुए कि बन के प्रस्तुत हुई है और शीघ्र ही छपनेवाली है टीका बहुत ही छोटी है परन्तु लगढग पचीस दोहों के अर्थ बहुत ही अपूर्व हैं। और दोहों के पाठ जहाँ तक हो सका बहुत ही शुद्ध किये गये हैं॥ इसके ग्रन्थकार इस समय के काशी के प्रसिद्ध मधुर कवि हैं। इनका वास्तविक नाम बाबूजगन्नाथप्रसाद है। ये इस समय लगढग पचीस वर्ष के होंगे। अंग्रेज़ी में इनने बी० ए० पास किया है और उर्दू, फ़ारसी में बहुत अच्छा अभ्यास है। सन् १८९३ में साहित्यसुधानिधि नामक मासिकपत्र निकाला था उसे ये और बाबू देवकीनन्दन (उपन्यासलहरी के वर्त्तमान सम्पादक) खत्री मिल के सम्पादित करते थे॥ इनका कविता का नाम रत्नाकर है॥

इनने और भी कई ग्रन्थ रचे हैं उनमें समालोचनादर्श, हिंडोला, घनाक्षरीनियमरत्नाकर आदि कई एक छप चुके हैं॥ ये अग्रवाले बनिये हैं और काशी में शिवालेघाट पर रहते हैं॥

(पद्य)

(१९) अमरचन्द्रिका—इस अपूर्व पद्यटीका ग्रन्थ के रचयिता सुरतिमिश्र थे। इनका निवास स्थान आगरा था। ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, इनका जन्मादि का संवत् तो नहीं मिलता परन्तु इनने अपना ग्रन्थ

'सरसरस' संवत् १७९४ वैशाख शुक्ल ६ सोमवार पुष्यनक्षत्र में समाप्त किया था। जैसा उनने स्वयं सरसरस के अन्त में लिखा है।

"कारन कहत जु ग्रन्थ को सो सुनिये चित लाइ।
जिहँ विधि भेद नवीन ये कहे सुमति उपजाइ॥
फुटकर सुने कवित्त वहु धुरपद कविन प्रवीन।
तिहँ माधि नाइक नाइका भेद लहे सु नवीन॥
जे नाइक अरु नाइका कहे सु ग्रन्थनि माँहिं।
हेरि रहे तहँ भेद नव परे दृष्टि कहुँ नाहिं॥
एक समै मधि आगरे कविसमाज को जोग।
मिल्यो आइ सुखदाइ हिय जिनकी कविता जोग॥
तव सव ही मिलि मन्त्र यह कियो कविन वहु जानि।
रचौ सु ग्रन्थ नवीन इक नये भेद रस ठानि॥
जिहँ विधि कवि मिलि कै कही जथा जोग लहि रीति।
उनहीं मैं सव सम्भवै कहे भेदजुत प्रीति॥
अपनी मति परमान सौं कहे भेद विस्तारि।
लखो सु यामैं न्यूनता सो कवि लेहु सुधारि॥
कवि अनेक मति मै हुते पै मुख कवि परवीन।
जाकी सम्मति सौं भयो पूरन ग्रन्थ नवीन॥
सूरतिराम सु कवि सरस कान्यकुब्ज वहु जान।
वासी ताही नगर को कविता जाहि प्रमान॥
केतक धरे सु ग्रन्थ मैं वर कवित्त कविराइ।
ताही सौं गम्भीरता अरथ वरन दरसाइ॥
आठौं रस रसभेद मैं जे वरने मति ठानि।
राजनीति मैं सम्भवैं ते मति लीजो मानि॥
सतरह सौ चौरानवे संवत सुभ वैसाख।
भयो ग्रन्थ पूरन सु यह छठ सासि पुष सित पाख॥

इस लेख के देखने ही से विदित होता है कि १६० वर्ष पहले भी कविसमाज की चाल थी और उस समय आगरे में कविसमाज हुआ था। पर वह समाज आजकाल के कविसमाजों ऐसा सड़ियल न था कि कोरी समस्याओं पर दाँत खटाखट हो और भले बुरे कवित्तों के कथड़े छपवाना ही बड़ी बहादुरी समझी जाय। प्रत्युत उस समाज के कार्य्यों के निदर्शन में यह अपूर्व साहित्यग्रन्थ उपस्थित है। यह अभी तक कहीं छपा नहीं है और लिखित भी दुर्लभ है। (मुझे यह ग्रन्थ पटनानिवासी पण्डित गोवर्द्धमनाथ पाठकजी से मिला है जिसका उन्हें धन्य बाद है)

यह अमरचन्द्रिका, दोहे सोरठों में टीका है। मैंने इसकी तीन लिखित पुस्तकें देखी हैं।

यह ग्रन्थ प्रसिद्ध लल्लू लाल कवि के पास था। जब वे कलकत्ते गये तो लाला गुलाबराय श्री श्री पृथ्वीधर मिश्र कलकत्ते गये तो चीतपुर में टिके और उनसे यह ग्रन्थ लिया। मैंने जो ग्रन्थ देखा है सो उनी के द्वारा बाबू डोमनसिंह का सं० १८५४ का लिखा है॥ इस ग्रन्थ के अन्त में यह लेख है।

स०। वेद नराच भुजंग मयङ्क सुअङ्क में संवत चारु बिचारी। भादव को दसमी गुरुबार भयो सिधि जोग सुपच्छ अधारी॥ सूरतिराम कवीस को पन्थ नवीन महाउर आनंदकारी। सो लिखि डोमनसिंह लयो है हिये पदबन्दि उभौ पियप्यारी॥

दो०। नाम सरस रसग्रन्थ यह सुरसमहा अभिराम। जामें रस अति भरिरह्यो कविजन मन बिस्राम॥
श्रीपृथ्वीधर मिश्रवर महाराज वर पाइ। श्रीयुत राय गुलाब पुनि लाला मिले सहाइ॥
श्रीलल्लूजी की कृपा लग्यो हाथ बिनु प्रास। लिख्यो आदिरस देखि सो चीतपूर करि बास॥

जोधपुर के महाराज अभयसिंहजी ने संवत् १७८० से सं० १८०६ तक राज्य किया था। (इतिहास राजस्थान) वे बड़े कवि प्रिय थे। प्रसिद्ध कविचारण करणीदानजी (कर्ण कवि कर्नल् जेम्स् टाड राजस्थान) ने इनके समय में "सूर्य्यप्रकाश" नामक राठौरवंश का इतिहास छन्दोबद्ध बनाया। इने महाराज अभयसिंहजी ने कविराजा की पदवी दी और आलास नामक ग्राम दिया जो अभी तक उनके वंशजों के उपभोग में है॥ इनी महाराज के दीवान नाडूला भण्डारी अमरेश (अमरचन्द) जी थे। उनी की आज्ञा से उनी के तोषार्थ उनी के नाम से यह छन्दोबद्ध अमरचन्द्रिका नामक बिहारी टीका सुरतिमिश्र ने बनाई॥ यह ग्रन्थ भी उसी संवत् १७९४ आश्विन सुदि विजयदशमी गुरुवार को पूरा हुआ था॥ दीवान साहब ने इनको कुलकवि की पदवी दी थी॥ दीवान अमरेश की पूर्वजों की नामावली भी इस ग्रन्थ के आरम्भ में यों दी है।

"भण्डारी परसिद्ध जग नाडूला गुनधाम। प्रगटे तिहिँ कुलदीप ज्यों दीपचन्द इहिँ नाम॥
तिनके सुत सब गुन सरस रायसिंह विख्यात। प्रगटे तिनके पौवसी महा सुजस अवदात॥
जिनको अतुल प्रताप गुन गावत देस बिदेस। तिनके परम प्रबीन अति प्रगटे श्रीअमरेस॥
तिन कवि सूरतमिश्र सों कीनों परम सनेह। सबै भाँति सनमान करि कह्यो ग्रन्थकरि देह॥

अरुकुलकवि पदवी दई कह्यो वचन परसंस। सदा तुमारे वंस कौं मानिहैं हमरो वंस ॥"

लल्लूलाल ने बड़ीही चतुराई की है। उनने दोहों का क्रम तो आज़मशाही ले लिया। दोहों का गद्यार्थ हरिचरणदास के हरिप्रकाश का ले लिया और प्रश्नोत्तर के दोहे तथा अलङ्कार के दोहे प्रायः सुरतिमिश्र के उठा लिये। और यह भी न लिखा कि ये दोहे सुरतिमिश्र के बनाये हैं मेरे नहीं। ग्रन्थान्त में थोड़े से दोहे काव्यभेद के विषय में लिखे हैं सो भी कृष्णकवि के हैं उनके अपने निज नहीं हैं॥ लल्लूलाल के मस्तिष्क की कहीं परीक्षा उत्तम नहीं उतरती और सुरतिमिश्र सचमुच बड़े कवि थे॥ मैंने जो ग्रन्थ देखा सो सं॰ १८५६ चैत्र कृष्ण ११ रवि का लिखा है॥

सूरतिमिश्र के बनाये इतने ग्रन्थों का अनुसन्धान मिलता है॥

(१) सरसरस। (२) नखसिख। (३) अलङ्कारमाला। (४) बैतालपचीसी। (५) अमरचन्द्रिका। (६) कविप्रिया की टीका।

विक्रमनगर के महाराज गणेशसिंह (गनसिंह = गजसिंह) के कृपापात्र नाज़िर सहजराम ने कविप्रिया पर चन्द्रिका नामक टीका की है उनके लेख से विदित होता है कि इस ग्रन्थ पर प्रसिद्ध कवि सुरतिमिश्र ने टीका की थी सो सन्तकवि के पास थी वे किसी को नहीं देते थे तब नाज़िर सहजराम ने सब के उपयोग के लिये यह टीका सं॰ १८३४ विजयदशमी शनि को बनाई॥

उनका लेख यह है:—

"कवि सूरत टीका करी रही सन्तकवि पास। सहजराम नाजर सुवर कीनी जगत प्रकास॥
संवत अठदस से बरस चौंतीसें चितधार। रची ग्रन्थ रचना रुचिर विजयदसमि सनिवार॥
सहजरामकृत चन्द्रिका धर्यो ग्रन्थ को नास। पढ़ें गुनें पण्डित नरनि उर उपजत आराम॥"

यह ग्रन्थ मेरे पास कुछ लेखक का लिखा और कुछ मेरे पिताजी के स्वहस्त का लिखा है॥

ये संस्कृत के भी विद्वान् थे। इनने शिवदास रचित संस्कृत बेताल पञ्चविंशतिका का ब्रजभाषा में अनुवाद किया है। (लल्लूलाल ने मज़हरअलीखां विला की सहायता से इसी का हिन्दी अनुवाद किया है जो घर घर प्रसिद्ध है) *।

(२०) कृष्णकविकृत टीका—यह ग्रन्थ कवित्त सवैयों में है। इसके रचयिता, कृष्ण कवि मथुरा के रहनेवाले माथुर ब्राह्मण थे जैसे उन ने स्वयं अपने ग्रन्थ के अन्त मे लिखा है कि—"माथुर विप्र ककोर कुल, कह्यो कृष्ण कविनाव। सेवक हौं सब कविन को बसत मधुपुरी गांव।"

---

* सुरतिमिश्र के जीवन के विषय में जो कुछ ग्रियर्सन साहब बहादुर ने लिखा है वह निःसन्देह भूल है। वे इन्हें जयसिंह जयपुरवाले के कवि कहते हैं और इनके प्रथम ग्रन्थ का नाम सरसराम कहते हैं तथा इसे सङ्गीतमय कहते हैं। कदाचित् यह कोई दूसरा ग्रन्थ हो तो मैं नहीं जानता परन्तु साहित्य का सरसरस ग्रन्थ तो मैंने देखा है॥

शिवसिंह और इन्हीं के अनुसार ग्रियर्सन साहिब इनको जैपुरवाले कहते हैं। परन्तु यह कुछ दिन जयपुर में रहे केवल इसीलिये जयपुरवाले नहीं कहला सक्ते।

यद्यपि बिहारी कवि का महाराज जयसिंह की सभा का कवि होनाही प्रसिद्ध है तथापि कृष्ण कवि ने जैसाह और उनके मन्त्री राजा आयामल्ल के विषय में यों लिखा है कि महाराज जयसिंह के रामसिंह उन के कृष्णसिंह • उन के बिष्णुसिंह और उनके जयसाहि हुये। योंही क्षत्रियकुल लाल दास रामचन्द्र उनके "महाराज" उनके "राय पंजाब" और उनके 'राजा आयामल्ल' हुये। राजा आयामल्ल पूर्व्वोक्त सवाई जयसाह महाराज के मन्त्री थे। सवाई जयसाह महाराज के परम कृपापात्र बिहारी कवि ने सतसई बनाई और राजा आयामल मन्त्री की आज्ञा से कृष्ण कवि ने उन्हीं दोहों पर कवित्त तथा सवैये बनाये। उनके दोहे ये हैं।

रघुबंसी राजा प्रगट उहि मैं धर्म अवतार। विक्रम बिधि जयसायरिपु दंडविहंडन हार ॥ १ ॥
सुकबि बिहारीदास सों तिन कीनो अति प्यार। बहु भाँतिन सनमान सरि दौलत दई अपार ॥ २ ॥
राजा श्री जयसिंह के प्रगट्यो तेजसमाज। रामसिंह गुनराम सम नृपति गरीबनिवाज ॥ ३ ॥
कृष्णसिंह तिनके भये केहरि राजकुमार। विष्णुसिंह तिनके भये सूरज के अवतार ॥ ४ ॥
महाराज बिसनेस के धर्म धुरन्धर धीर। प्रगट भये जयसाहि नृप सुमति सवाई बीर ॥ ५ ॥
प्रगट सवाई भूप के मन्त्री मुनि सुखसार। सागर गुन सतशील को नागर परम उदार ॥ ६ ॥
आयामल्ल अखण्ड तप जग सोहत यश ताहि। राजा कीनो करि कृपा महाराज जैसाहि ॥ ७ ॥
मन क्रम वच सांचो भगत हरिभक्तन को दास। वेदवचन निज धरम को जाकै दृढ़ विश्वास ॥ ८ ॥
क्षत्री फल छिति पै भये बैरी जग बिख्यात। पर दुख बैरी खण्डनो खण्डन गुन अवदात ॥ ९ ॥
लालदास अति ललित गुन प्रगट भये तिह वंस। रामचन्द्र तिनके भये निजकुल के अवतंस ॥ १० ॥
महाराज तिनके भये जिनको यश अवदात। राय पँजाब सपूत मति उपजे तिनके तात ॥ ११ ॥
तिनके प्रगटे तीन सुत विक्रम बुद्धिनिधान। रक्षक ब्राह्मण गाय के निपुण दान कर वान ॥ १२ ॥
राजा आयामल्ल जग विदित राय शिवदास। लसत नरायन दास यस पूरन पुहुमि प्रकास ॥ १३ ॥
लीला युगलकिशोर की रस को होय निकेतु। राजा आयामल्ल को ता कविता सों हेतु ॥ १४ ॥
माथुर विप्र ककोरकुल कह्यो कृष्ण कबिनांउ। सेवक हौं सब कबिन को बसत मधुपुरी गांउ ॥ १५ ॥
राजा मल कवि कृष्ण परि ढर्‌यो कृपा कै ढार। भांति भांति बिपता हरी दीनो लच्छि अपार ॥ १६ ॥
एक दिना कवि सो नृपति कही कही को जात दोहा दोहा प्रति कहो कबित बुद्धि अवदात ॥ १७ ॥
पहिले हूं मेरे यहै हिय में हुतो बिचार करौं नायिका भेद को ग्रन्थ सुबुधि अनुसार ॥ १८ ॥
जे नीके पूरब कबिनु सरस ग्रन्थ सुखदाय। तिनहि छाँड़ि मेरे कबित को पढ़ि है मनलाय ॥ १९ ॥

• ये गद्दी पर न बैठने पाये कुमारही गत हुए।

जानि यहै अपने हिये कियो ग्रन्थ परकास। नृप की आयसु पाइ कै हिय में भयो हुलास ॥ २० ॥
करे सात सै दोहरा सुकवि विहारीदास। सब कोउ तिनको पढ़ै गुनै सुनै सविलास ॥ २१ ॥
वड़ो भरोसो जानि मैं गह्यो आसरो आय। यातैं इन दोहान संग दीनों कवित लगाय ॥ २२ ॥
उक्ति युक्ति दोहान की अच्छर जोरि नवीन। करे सात से कवित मैं पढ़ै सुकवि परवीन ॥ २३ ॥
मैं अतिही ढीठ्यो करी कविकुल सरल सुभाय। भूल चूक कछु होय सो लीज्यो समुझि वनाय ॥ २४ ॥

कृष्ण कवि इन्हीं जयसाह को जयसिंह कहते हैं। जैसा उनने जयसाह के वर्णन वाले दोहे पर के कवितों में कहा है, यथा—

दो०। प्रतिविंवित जयसाह द्युति दीपति दर्पन धाम। सव जग जीतन कौं कियो कायव्यूहमनु काम ॥

स०। † राजयदर्पण मन्दिर में महिमंडनु श्री जयसिंह सवाई। त्यौं प्रतिविंवनि की अवली चहुँ ओर लसैं अतिही छवि छाई ॥ कैधों अनेक स्वरूप धरे रवि राजत मंडली मंड सुहाई। मानहुं जीतिवे को जग में रचना वपु व्यूह की काम वनाई ॥ १ ॥

दो०। चलत पाय निगुनो गुनो धनमन मुतियनमाल। भेंट भये जयसाह सौं भाग चाहियतु भाल ॥

क०। दीजत मँगाय कै तुरंग रंग रंगन कै तुरत भंडार गिर पानन सौं भरिये। किम्मत विसाल साल सुवरन माल लाल हीरा मुक्ताहल वकसीसढार ढरिये ॥ गुनी अनगुनी सवे कीजत निहाल हाल जांचक की विपति अनेक भांति हरिये। भेंट भये नृपति सवाई जय साहजू सी होत वड़े फल भाग लैकै कहा करिये ॥ २ ॥

दो०। रहत नर न जयसाहि मुख लखि लाखन की फौज। जाचि निराखरहू चलै लै लाखन की मौज ॥

क०। कूरम सवाई जयसिंह के अभंग जगमगत दिनेश को सो तेज अंग अंग में। लाग्योई रहत नित सूरमति जैको चाव दान करिवें को चित रहत उमंग में। परदल लाखन को नृप को वदन लखि सनमुख रहि न सकत रणरंग में। आखर न जाने सोउ लाखन लहत सव जांचे सो अजांची होत मौज के प्रसंग में ॥ ३ ॥

दो०। सामासैन सयान सुख सवै साहि के साथ। वाहुवली जयसाह जू फते तिहारे हाथ ॥

क०। जगमग्यो वेलछत्रपति को प्रताप नवखण्ड में अखण्ड दावे अरिनु के माथ है। तेरेई उदण्ड भुजदण्ड के भरोसे मौज रहत निसंक अवदात यह गाथ है ॥ सुभट समाज सामा सयन सदान सुख मंत्री सव भांतिनु की महिज के साथ है। † रहय सवाई जयसिंह महाराज सदा समर विजय सिद्धि रावरेई हाथ है ॥ ४ ॥

दो०। घनो वड़ी उमड़ी लखैं अभिवाहक भटभूप। मङ्गल करि मान्यो हिये भो महि मङ्गलरूप ॥

सांभर के खेत आये उमड़ि अमित दल सैयद सुभट महाविक्रम निधान है। गरज गरूर गहै निपट

---

† राजय, रहय आदि इनो की बोल चाल है। इस समय की रीति के विरुद्ध है।

आप विकट कुवाड़े सांधि बरषत बान है (?)॥ साहसो सवाई जयसाहि भूप ऐसे समै वीर रस राच्यो थिर भयो तिहिँ थान है। उमगि उछाह महा मङ्गल कै मान्यो हिये बदन को रङ्ग भयो मङ्गल समान है ॥५॥

दो०। योँ दल काढ़े बलखतें तैं जयसिंह भुवाल। बदन अघासुर के परे ज्यों हरि गाय गुवाल ॥

क०। एक रसना सोँ मोपैं कैसें कहै परै जैते विक्रम अमित कीने नृपति सवाई तें। केशव अघासुर तेँ राख्यो व्रज जैसे ऐसे हसन अली की दिली राखी बगिलाई तैँ॥ जेजिया निवाखो दावानल सों प्रवल दुख बल कै विपति हिन्दुवान की बहाई तैँ। काली ज्यों कुचाली काटि दूर कीनीं मुहकमा कीरति प्रकास जग थाप्यो उजराई तैं॥ ६॥

दो०। घर घर तुरकनि हिन्दुनी देत असीस सराहि। पतिनु राख चादर चुरी तैं राखी जयसाहि ॥

क०। आयो दूत उमड़ि अजीतसिंह ऐँडायल संग लै विकट सुभटन के समाज कोँ। कहै कविकृष्ण दूत दिल्ली के प्रबलदल निकसे सकल साजैं सरम के साज कोँ॥ ऐसे समै वीर विशुनेश के अजित बाहु राखी तैं दुहुन लाज करि के इलाज कोँ। घर घर तुरकनि हिन्दुनी दुनी में सब देत हैं आसीस जयसाह महाराज कोँ॥ ७॥

इन कवित्तोँ में हसनअली और अजीतसिंह की चर्चा इतिहास को और भी पुष्ट करती है। शिवसिंह इनको बिहारीलाल का शिष्य बतलाते हैं यदि सचमुच ऐसाही हो तब तो कदाचित् बिहारी जी के विषय में इनका लिखना यथार्थ हो।

कृष्ण कवि वस्तुतः बहुत अच्छे कवि थे और इनके कवित्त सचमुच कुछ उत्तम बने हैं तथा इनने प्रत्येक दोहों का दोहाप्रस्तार के अनुसार भेद कहा है और उनका मदकल आदि नाम भी कहा है। ग्रियर्सन साहिब बिहारीलाल का समय १६५० ईस्वी और कृष्ण कवि का समय १७२० ई० बताते हैं। तथा इन्हें क्रमशः गुरु शिष्य भी कहते हैं। और शिवसिंह बिहारीलाल को संवत् १६०२ और कृष्ण कवि को सं० १६७५ में बतलाते हैं। तथा दोनों को क्रमशः गुरु शिष्य कहते हैं। और बिहारी जी अपने ग्रन्थ की समाप्ति सं० १७१९ में बतलाते हैं सो जहां तक सम्भव है यह ऐतिहासिक लोग समझ लें। वस्तुतस्तु बिहारी का ग्रन्थ सं० १७१९ में समाप्त हुआ और सवाई जयसिंह ने सं० १७५६ से सं० १८०० तक राज्य किया जिनके दीवान के यहां कृष्ण कवि थे। यदि कृष्ण कवि का १७१९ में जन्म हुआ हो तो भी ३७ वर्ष के वय में इस दर्बार में रह सकते हैं और बिहारी भी ग्रन्थरचना के अनन्तर ३७ वर्ष और जिये हों तो सवाई जयसिंह को भी राजसिंहासनस्थ देख सकते हैं॥ बहुत लोग कृष्ण कवि को बिहारी का पुत्र भी कहते हैं और यह सम्भव भी है क्योंकि बिहारी भी ककोर चौबे थे और ये भी ककोर चौबे। तथा समय भी दोनों का कथंकथमपि पितापुत्र होने योग्य है। बिहारी का शिष्य होना तो उनने भी स्वीकृत किया है॥

किया क्या जाय, कृष्णकवि ने सब चरखा गाया और प्रति दोहे के गुरु लघु के गिनने का श्रम उठाया परन्तु अपने जन्म कर्म्म का संवत् तक न लिखा (निदर्शन के लिये इनकी दो कविता लिख दी हैं)

दो०। मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोय। जातन की झांई परे श्याम हरित द्युति होय ॥ १ ॥

स०। जाकी प्रभा अवलोकत ही तिहूं लोक की सुन्दरता गहि वारी। कृष्ण कहैं सरसीरुह-नैन को नाम महा मुद मंगलकारी ॥ जा तन की झलकैं झलकैं हरित द्युति श्याम की होत निहारो। श्रीवृष-भानुकुमारि कृपा कै सु राधा हरौ भव बाधा हमारी ॥ १ ॥

दो०। राति द्योस हौंसे रहै मान न ठिक ठहराय। जेतो औगुन ढूंढ़िये गुनै हाथ पर जाय ॥ २ ॥

स०। जोहौं झकौं तौ खरो ही लटू ह्वै करै मनुहार अनूठी अनूठी। औगुन ढूंढ़े हूं हाथ न आवत सौगुन को रहै सिद्ध सी टूठी ॥ सील सुभाव सदा निवहै हँसि बोलै अमी बरषा मनु बूठी। हौंस हिये निसि द्योस रहै मनमोहन सों कबहूं नहिं रूठी ॥ २ ॥

(२१) पठान सुलतानकृत—भूपाल जिले के राजगढ़ के नवाब सुलतान पठान संवत् १७६० में विद्यमान थे। ये व्रजभाषा के कविता के बड़े ही प्रेमी थे इनकी सभा में चन्द्र कवि थे उनीने इनके नाम पर बिहारी के प्रत्येक दोहों पर कुण्डलिया बनाई। यद्यपि यह कुण्डलिया वाला ग्रन्थ इनदिनों कहीं नहीं मिलता है यहां तक कि बड़े यत्न से भी श्रीयुत ग्रियर्सन साहिब को एकही कुण्डलिया मिली और मुझे पांच तक मिली है। लल्लूलाल अपनी टीका के अन्त मे लिखते हैं कि मैंने पठान सुलतान की कुण्डलियायों वाली टीका देखी। इससे विदित होता है कि यह ग्रन्थ पूरा बनाया गया था परन्तु नवाब साहिब के पुस्तकालय से बाहर निकलना कठिन हो गया था ॥

कुण्डलिया पठान की।

मेरी भवबाधा हरो राधा नागरि सोइ। जातन की झाँईं परे स्याम हरित दुति होइ ॥ स्याम हरितदुति होय कटै सब कलुष कलेसा। मिटै चित्त को भरम रहै नहिं कछुक अँदेसा ॥ कह पठान सुलतान काटु जम दुख की बेरी। राधा बाधा हरो हहा बिनती सुनु मेरी ॥ १ ॥

नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह। काँटे सी कसकति हिये गड़ी कँटीली भौंह ॥ गड़ी कँटीली भौंह केस निरवारति प्यारी। चितवति तिरछे दृगनि मनो उर हनति कटारी ॥ कह पठान सुलतान छक्यो यह देखि तमासा। वाको सहज सुभाव और को बुधि-बल नासा ॥ २ ॥

हाहा बदन उघार दृग सफल करैं सब कोइ। रोज सरोजन के परै हँसी ससी की होइ ॥ हँसी ससी की होय देखि मुख तेरो प्यारी। विधिना ऐसी रची आपने करन सँवारी ॥ कह पठान सुलतान मेटि उर अंतर दाहा। करि कटाक्ष मो ओर मोर बिनती सुनि हाहा ॥ ३ ॥

सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार। गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार॥ बिथुरे सुथरे बार निरखि नागरि नवला के। भ्रमत भँवर वहु बिपिन बनक बरनत कबि थाके॥ कह पठान सुलतान आन तजि हिय भयो हिक्कन। बार बार मन बँधत बार लखि सहज सचिक्कन॥ ४॥

भूषन भार सँभारिहै क्यों यह तन सुकुमार। सीधे पाय न परि सकैं सोभा ही के भार॥ सोभा ही के भार चलति लचकति कटि खीनी। देतो अनिल उड़ाय जौ न होती कुच-पीनी॥ कह पठान सुलतान तासु अँग अंग अदूषन। नरी किन्नरी सुरी आदि तिय की तिय भूषन॥ ५॥

(१२) उपसतसैया—सुना है कि गङ्गाधरनामक कवि हो गये हैं इनने सतसई का भावार्थ फैला कर कुण्डलिया बनाई है और उनो उन भावों पर अपने बनाये दोहे भी लिखे हैं। इनके समय, स्थान, वंश इत्यादि के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है इनके ग्रन्थ का नाम उपसतसैया है॥ (इस ग्रन्थ का कहीं पता नहीं है)

(१३) रसकौमुदी—अयोध्या के महन्त बाबा जानकी प्रसाद ने बिहारी जी के चुने चुने २१६ दोहों पर कवित्त सवैयों का यह ग्रन्थ बनाया है॥ हमें इनके बनाये इतने ग्रन्थों का पता लगा है॥ १ रसकौमुदी, २ सुजसकदम्ब, ३ सुमतिपचीसी, ४ कवित्त वर्णावली, ५ बिरहदिवाकर, ६ इश्कअजायब, ७ ऋतुरङ्ग, ८ रामरसायन, ९ बजरङ्गबतोसी॥

इनो का काव्य-नाम रसिकबिहारी है॥ इनके सब ग्रन्थ बाबू जगन्नाथप्रसाद खन्ना—गढ़वासी टोला बनारस, इस पते से मिलते हैं। इनने "अमी हलाहल" दोहे को भी बिहारी कृत माना है पर यह भूल है॥ यह रसकौमुदी ग्रन्थ छपा है निदर्शन के लिये दो कविता दिखलाई जाती हैं,—

कहत सबै कवि कमल से मो मति नैन पषान। न तरकु कत यहि बिय लगत उपजत बिरह कृसान॥

क०। ऐरी मेरी बीर अति कठिन सनेह पीर करत बिहाल ज्वाल अंगन बढ़त है। रसिकबिहारी मति अलख अनूप न्यारी होवै दिलदार याको भेद सो लहत है॥ मो मति निसंक नैन जुगल पषान हैं ये कमल समान वृथा कोविद कहत है। नातर न पाहन लौं कत बिय लागत ही तीखी अति बिरह कृसानु उपजत है॥ १॥

पाय महावर देन को नायन बैठी आय। फिर फिर जानि महावरी एड़ी मीड़त जाय।

स०। नायन पायन जावक देन कों प्रानप्रियाढिग आई उतावरी। लाड़िली के ढिग बैठि हरे रस ते पद कंज गहे सुचि भावरी॥ लै अपने कर पै नवला पग सो रसिकेस न भेद लखावरी। लाली बिलोकि वही फिरि फेरि कै एड़िये मीड़ति जानि महावरी॥ २॥

(४) भारतेन्दुबाबूहरिश्चन्द्रकृत (सतसईसिङ्गार खण्डित)—बाबू हरिश्चन्द्र इस वर्त्तमान शताब्दी में भाषा के परम प्रसिद्ध कवि हो गये हैं। ये अग्रवाल वैश्य थे बाबूहरिश्चन्द्र का पूर्वनिवास दिल्ली था इनका जीवन चरित्रव्यास रामशंकरशर्म्मा चन्द्रास्त नामक पुस्तक में छाप चुके हैं और बांकीपूरनिवासी महाराजकुमार बाबू रामदीनसिंह और भी विशेष रूप से संग्रह कर रहे हैं। तथापि संक्षेप यह है कि काशी के प्रसिद्ध रईस गोपालचन्द्र (गिरधर) के ये पुत्र थे इनका जन्म संवत् १९०७ में हुआ था जिस समय यह केवल नौ वर्ष के थे उसी समय पिता का परलोक हुआ। ये राजाशिवप्रसाद के स्कूल में तथा बनारस कौलेज में क्रमशः पढ़े। काशी के प्रसिद्ध कर्मठ विद्वान् पण्डित घनश्यामजी गौड़ ने इनको जनेऊ कराई और पण्डित दुर्गादत्तव्यास (दत्तकवि मेरे पिता, इनका जीवनचरित्र खड्गविलास यन्त्रालय में बाबू चण्डीप्रसादसिंह ने छापा है) ने इनको सन्ध्योपासन अमरकोष पंचतन्त्र रघुवंशादि कई ग्रन्थ पढ़ाये थे। ये ऐसे उत्कृष्ट बुद्धिमान थे कि थोड़े ही दिनों में भाषाकाव्य आप ही लगाने लगे और यदि कहीं कहीं सन्देह हो तो पण्डित दुर्गादत्त कवि से पूछ लेते थे॥

थोड़े ही दिनों में कालिज का पढ़ना छोड़ दिया और बहुव्यय पूर्वक आनंद भोग करने लगे। बुढ़वामंगल में इनका भी छोटा सा कच्छा पटता था और बड़े नाच राग रंग होते थे इनको स्वयं गान अथवा वाद्य में उतना अभ्यास न था और इस विषय में गहिरी समझ भी नहीं थी परन्तु नाच मुजरे में इनका बहुत समय जाता था। रुपये को तो कांकर पत्थर से भी तुच्छ समझते थे यहां तक कि दिवाली पर अतर के दीवे बालते इनको हमने स्वयं देखा था और अतर को कुल शीशी उझिल के अभ्यंग करना तो इनका स्वाभाविक था। जब ये कहीं नाटक देखने जांय तो इनके साथ पचीस, तीस अथवा चालीस जितने पुरुष रहैं सबकी टिकटैं इनी के ओर से ली जाती थीं यों अपव्यय तो था ही परन्तु कवि और पण्डितों को भी इनके हाथ से सब दिन कुछ न कुछ मिलता ही था। काशी में कवितावर्द्धिनी सभा प्रथम २ इन्हीं ने स्थापन की थी उस समय उस सभा के सभ्य, निजजू, सेवक, जानकी, कामता, सरदार, दुर्गादत्त, लोकनाथ, मन्नालाल, हनुमान, जोखूराम, नरायण, रसीले, बेनी द्विज आदि उत्तमोत्तम कवि थे इस सभा में एक अल्पवयस्क सभ्य मैं भी था मुझे सुकवि पद इसी सभा से मिला था॥

बाबू साहब ने कविवचनसुधा नामक साप्ताहिक पत्र निकाला और अपनी कविता से सहृदयों के हृदयों को पल्लवित करना आरम्भ किया। दूर से लोग इनकी मधुर कविता सुन आकृष्ट होते थे और समीप था मधुर श्याममुंदर घुंघराले बालवाली मधुर मूर्त्ति देख बलिहारी होते और वार्त्तालाप में इनके मधुर भाषण नम्रता और अति शिष्ट व्यवहार से वशम्वद हो जाते थे। यहां तक कि संवत् १९३७ में इनको लोगों ने भारतेन्दु कहना आरम्भ किया और उस समय के यावत् हिन्दी पत्र सम्पादकों ने इसको स्वीकार किया॥

बिहारी की कविता ने इनके चित्त का भी आकर्षण किया और इनने बिहारी के किसी २ दोहों

पर कुण्डलिया करना आरम्भ किया कई वर्ष के श्रम से केवल कई सौ दोहों पर इनने कुण्डलिया बनाई परन्तु ग्रन्थ पूरा न हुआ। इनकी कुण्डलिया सत्सईशृङ्गार नाम से भाषासार नामक पुस्तक में बांकीपूर में खड्गविलास नामक यन्त्रालय में छपी हैं उनमें से दो तीन कुण्डलिया उदाहरण स्वरूप नीचे प्रकाशित की जाती हैं॥ संवत् १९४२ में ३४ वर्ष के छोटे वय में ही इनका परलोक हुआ इनके पूर्वज भी कई पुरुष से लगढग इसी वय में अपना २ जीवन व्यतीत करते आये थे और इनने भी ८० वर्ष में जितना काम हो सकता है उतना इस छोटे समय में करके अपना इतिहास समाप्त किया॥ ● ॥

कुण्डलिया।

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोय। जातन की झाँई परें स्यामहरित दुति होय॥ स्याम हरित दुति होय परै जा तन की झाई। पांय पलोटत लाल लखत सांवरे कन्हाई॥ श्रीहरिचन्द्रवियोग पीत पट मिलि दुति हेरी। नित हरि जा रँग रँगी हरौ बाधा सोइ मेरी॥ १॥

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल। एहि बानिक मोमन बसौ सदा बिहारीलाल॥ सदाविहारीलाल बसौ वांके उर मेरे। कानन कुण्डल लटकि निकट अलकावलि घेरे॥ श्रीहरिचन्द्र त्रिभङ्ग ललित मूरति नटवर सी। टरौ न उरतें नेकु आज कुंजनि जो दरसी॥ २॥

मोहन मूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ। बसत सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिम्बित जग होइ॥ प्रतिबिम्बित जग होइ कृष्णमय ही सब सूझै। इक संयोग वियोग भेद कछु प्रगट न बूझै॥ श्रीहरिचन्द्र न रहत फेर वाकी कछु जोहन। होत नैन मन एक जगत दरसत तव मोहन॥ ३॥

तजि तीरथ हरिराधिका तन दुति करि अनुराग। जिहि ब्रजकेलिनिकुंजमग पग पग होत प्रयाग॥ पग पग होत प्रयाग सरस्वति पद की छाया। नख की आभा गङ्ग छाँह समदिन कर जाया॥ छन छवि लखि हरिचन्द कलप कोटिन नव सम लजि। भजु मकरध्वज मन मोहन मोहन तीरथ तजि॥ ४॥

सघन कुञ्ज छाया सुखद सीतल मन्द समीर। मन ह्वै जात अजौं वहै वा जमुना के तीर। वा जमुना के तीर सोई धुनि अँखियनि आवै। कान वेनु धुनि आनि कोउ औचक जिमि नावै॥ सुधि भूलति हरिचन्द लखत अजहू वृन्दावन। आवन चाहत अबहिं निकसि मनु स्याम सरस घन॥ ५॥

(२५) जोखूरामकृत कुण्डलिया – सुना है कि इनने भी थोड़ी सी कुण्डलियायें बनाई थीं॥ ये काशी वासी थे। बड़े हनुमान जी के पण्डे थे। कुछ फारसी जानते थे। यूनानी दवा भी करते थे। इनका कवित्त पढ़ना बड़ा हल्ला धूम का था। बाबू हरिश्चन्द्र की कविसभा के सभ्यों में एक ये भी थे। विद्या बहुत गहरी न थी, पर डील डाल बड़ा था॥ सं० १९३८ में ये लगढग ४५ वर्ष के थे॥ इनका नाम मेरी समझ में पहले पहल श्रीराधाचरण गोस्वामी ने निज भारतेन्दु में कुण्डलियाकारों में लिखा और कदाचित् यही देख के ग्रीयेर्सन् साहब और पण्डित प्रभुदयाल ने निज ग्रंथों में लिखा इसका तत्त्व यों है। एक बेर काशी में भारतेन्दु बाबूहरिश्चन्द्रजी के यहां में, बाबूरामकृष्णवर्म्मा द्विज कविमन्नालाल और द्विज बेनीकवि प्रभृति बैठे थे और पठान की कुण्डलिया की प्रशंसा की बात चली, एक कोने से जोखूराम जी बोल उठे क्या बड़ी बात है हुक्म हो तो मैं इससे भी उत्तम कुण्डलिया बना लाऊं" बाबू हरिश्चन्द्र ने कहा "अच्छा लाइये, अच्छी होंगी तो फी कुण्डलिया १) मैं दूंगा।" अनन्तर उनने पांच सात कुण्डलियायें बनाईं और लाये परन्तु न तो वे कुण्डलियायें बाबू साहब ही को अच्छी लगी और न जिनै जिनै उनने दिखलाई उन सरदार, द्विज मन्नालाल, प्रभृति, को ही अच्छी लगीं। 'बस किस्सा तमाम'। ये बनारस कालिज के अध्यापक क्या सुयोग्य छात्र भी न थे यहां पण्डित प्रभुदयाल जी की भूल है कि वे बङ्गवासी संस्करण में उने वैसा लिखते हैं॥

(२६) बिहारीसुमेर—शाहज़ादा बाबा सुमेरसिंह कृत कुण्डलिया (खण्डित)। ये कविवर नानक सम्प्रदाय के प्रधान स्थान पटना के सङ्गत के अध्यक्ष हैं। अभी तक विद्यमान हैं। कविता के बड़े मर्मज्ञ और बोधा हैं। इनकी कुण्डलियायें लग ढग तीस दोहों पर हमने देखी हैं और कदाचित् इतनी ही बनी हैं एक बेर खड्गविलास में इस ग्रन्थ के एक दो फार्म छपे थे पर फिर आगे पूरी बनी ही नहीं तो छपे क्या॥ उनकी कई कुंडलियायें आगे प्रकाशित की जाती हैं,—

मेरी भवबाधा हरहु राधानागरि सोय। जातन की झांई परें श्याम हरितदुति होय॥ श्याम हरित द्युति होय होय सभ कारज पूरो। पुरुषारथ सहि स्वारथ चार पदारथ रूरो॥ सतगुरु शरण अनन्य छूटि भय भ्रम की फेरी। मनमोहन हित सुमेरेस गति मति में मेरी॥ १॥

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उरमाल। एहि बानिक मो मन बसहु सदा बिहारी लाल॥ सदा बिहारीलाल करहु चरनन को चेरो। तुहि तज अनत न जाइ कतहु प्रियतम मन मेरो॥ मेरो तेरो मिटै मिलै तस संगत ईस। बिहरहुं ह्वै उनमत्त धार ब्रजरज निज सीस॥ २॥

मोर मुकुट की चन्द्रकनि यों राजत नँदनंद। मनु शशिसेखर की अकसि किय

सेखर शतचंद ॥ किय सेखर शतचंद छंद रुचि काम बढ़ावति। नव नारिनहिय नेह नवल नागर उपजावति ॥ धावति धामहि धाम बामबर विरह सु खटकी । पूंछति सुधि बौराय आय अरि मोर मुकुट की ॥ ३ ॥

मकराकृत गोपाल के कुँडल सोहत कान। धस्यौ मनो हियघर समर ड्योढ़ी लसत निशान ॥ ड्योढ़ी लसत निशान शान ताकी अति चोखी। अबला को पिख तांहि होत जु न रतिरण रोखी ॥ चकित जकित चित थकित बकति नहि करमन हकरा। तकत इतै उत आइ तान रति जाल सुमकरा ॥ ४ ॥

सोहत ओढ़ें पीत पट स्याम सलोने गात। मनहु नील मनि सैल पर आतप पस्यौ प्रभात ॥ आतप पस्यौ प्रभात किधों संपुट हाटक महि। सोभत सालिगराम भक्त गोपिन के चख चहि ॥ हरि सुमेर के रविजा के तट मन्दिर जोहत। पुरट प्रगट तिहि छाय आय सुचि सलिलहिँ सोहत ॥ ५ ॥

अधर धरत हरि के परत ओठ डीठ पट जोत। हरित बांस की बांसुरी इन्द्र धनुषद्युति होत ॥ इन्द्रधनुषद्युति होत जोति पु[illegible] खिन खिन दूनी। मिल घनश्यामहि साथ भई छवि छटलि न जनी ॥ हरि सुमेर कर गान अमृत रस बरषत सुमधर। गात सौत सम रही बैठ बालम के सु अधर ॥ ६ ॥

कितौ न गोकुल कुलवधू काहि न किहिं सिख दीन। कौने तजी न कुलगली ह्वै मुरली सुरलीन ॥ ह्वै मुरली सुरलीन दीन किहि नहि तन मन धन। मन मोहन मिलि मोह गई को बनहि न बन ठन ॥ काहि न धर्म अचार काहि नहि श्रुति मति उकती। हरि सुमेर हरि हेर उठत हिय किह नहि जुकती ॥ ७ ॥

गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रसरास। लहाछेह अति गतिन सों सभन लखे सभ पास ॥ सभन लखे सभ पास आस नहि रही मान की। प्रीति पिआरिन साथ एक जिमि राम जानकी ॥ हरिसुमेर सुरदेव विवानन चढ़िचढ़ि लोप। धन राधा धन कृष्ण धन्य यहि गोपी गोप ॥ ८ ॥

ग्रेयर्सन् साहब का सतसई संस्करण।

यद्यपि जार्ज अब्राहम् ग्रेयर्सन् साहब ने स्वयं कोई टीका नहीं रची है तथापि साधारण टीकाकारों की अपेक्षा बीस गुना परिश्रम करके इन्होंने यह ग्रन्थ प्रकाशित किया है ॥ इस ग्रन्थ में मूल सतसई पर

लालचन्द्रिका टीका को अति शुद्ध कर के प्रकाशित की है। स्थल स्थल में और टीकाकारों का मत ले के टिप्पणी की है। अन्त में विविध कठिन दोहों की टीका भी लिखी है। अनन्तर सूचीपत्र में विविध टीकाओं के अनुसार दोहों का क्रम दिखलाया है और आदि में नाना विषयों से पूरित प्रलम्ब भूमिका है तथा प्रसङ्गतः समस्त भाषाभूषण का अंग्रेज़ी अनुवाद है।

इस में कोई सन्देह नहीं कि इस ग्रन्थ के मुद्रण में प्रकाशक महाशय ने अत्यन्त परिश्रम किया है, यहां तक कि यद्यपि चिरकाल से नाना ग्रन्थों के मुद्रण और रचना तथा पठन पाठन के कारण साहब के नेत्र कुछ २ बलहीन हो गए थे तथापि इसी ग्रन्थ के प्रकाश तथा संस्करण के समय इन को प्रबल नेत्र रोग उत्पन्न हुआ, परन्तु चश्मा आदि का उपयोग कर तथा सहायक से लिखने पढ़ने का काम लेकर उनने अपने काम को यथास्थिति ही रक्खा।

निःसन्देह ऐसे पुरुष विद्या और देश की उन्नति के लिये अपने प्राणों को भी कुछ नहीं गिनते हैं केवल नेत्र तो क्या हैं।

इन वर्त्तमान महापुरुष का जीवनचरित जहां तक मुझे मिल सका सो यह है॥

आयर्लैण्ड के डब्लिन्नगर में सन् १८५१ की जनवरी ७ को जार्ज अब्राहम् ग्रेयर्सन् का जन्म हुआ। इन के पिता जार्ज अब्राहम् ग्रेयर्सन् एल. एल. डी. इस नगर के प्रसिद्ध वारिस्टर थे।

ग्रेयर्सन् साहब ने सेलिसबरीनगर के ग्रामर स्कूल में पढ़ना आरम्भ किया। वहां के अध्यक्ष डाक्टर वेञ्जमिन् हाल् केनेडी थे। और जब इन को पद वृद्धि हुई और ये ग्रीक् की कैम्ब्रिज़ यूनीवर्सिटी में प्रोफ़ेसर हो के चले गये तब उस स्कूल में रेवरेण्ड एच्. डब्ल्यू. मास साहब अध्यक्ष हुए और उन के समीप ग्रेयर्सन् साहब पढ़ते रहे।

सत्रह वर्ष के वय में ग्रेयर्सन् साहब इसी नगर के ट्रीनीटी कालेज में प्रविष्ट हुए। और वहां गणित में आदर पाया (आनर पास किया) और संस्कृत में राबर्ट एट्किन्सन् के पास शिक्षालाभ करने लगे। और मीर औलादअली के पास हिन्दुस्तानी भाषा पढ़ने लगे। अब तक इस कालेज में संस्कृत का पारितोषिक किसी को न मिला था परन्तु यह बात इस कालेज के लिये पहली हुई कि इनमें संस्कृत के लिये यूनीवर्सिटी से दो बेर बड़े पारितोषिक पाये। और हिन्दी के लिये भी इन्हें पारितोषिक मिला।

प्रोफ़ेसर एट्किन्सन् के द्वारा इन को प्रधान प्रधान भाषा और हिन्दुस्तानी भाषा के लिये प्रबल व्यसन उत्तेजित हुआ जिस से ग्रेयर्सन् साहब का नाम विद्वानों में कीर्तनीय हुआ।

सन् १८७१ में इनने भारतवर्ष की सिविल् सर्विस् पास किया और जिस देश की भाषा ने इन को पहले ही से मुग्ध कर रखा था और जिस देश में आने की चिरकाल से इन का उत्साह था उस भारतवर्ष में सन् १८७३ में आये। दैवात् इस समय यहां बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा था और कृपालु गवर्नमेण्ट पीड़ित प्रजा की रक्षा के उद्योग में थी और दुर्भिक्ष सम्बन्धी बड़ा महकमा खुल रहा था। दुर्भिक्ष की घोरता विहार में अधिक चमक रही थी सो इसी प्रजा रक्षा के काम में ग्रेयर्सन् साहब भी नियुक्त किये

गये। बस भारतवर्षीय पुरुषों के चाल व्यवहार जानने को तथा एतद्देशीय सब पुरुषों से मिलने को साहब को यह बहुत अच्छा अवसर मिला।

जब इननें तिरहुत के निवासियों को स्वतन्त्र भाषा बोलते देखा और देखा कि वहाँ के छोटे लोग तिरहुता भाषा छोड़ हिन्दी बँगला आदि कुछ भी नहीं बोल सकते हैं तब उन की चित्त वृत्ति इधर झुकी कि जो यूरोपदेशनिवासी केवल बँगला तथा हिन्दी जान कर बड़े अधिकारी हो कर इस देश में आते हैं उनें इन दुखिया प्रजाओं की पुकार सुनने में कितना कष्ट होता होगा॥

बस चटपट इननें स्थिर किया कि इस देश की भाषा का कोष तथा व्याकरण बनाना।

इस का नाम साहस है और इस का नाम वीरता है कि स्वयं भी जिस भाषा को आज तक न जानते थे, जिस भाषा के मुद्रित ग्रन्थ नाम मात्र को भी अप्राप्य थे उस भाषा को केवल जानने की नहीं किन्तु उस के व्याकरण बनाने की प्रतिज्ञा की जिसमें नवीन पुरुष सहज में समझ सकें।

ओ:! एक हमारे देश के पण्डित हैं जो कुछ न्याय व्याकरण के खर्रे घोष अहं च त्वं च कर पग्‌घड़ बाँध पण्डित बन बैठते हैं, और अपनी विद्या का यही फल समझते हैं कि अपर विद्वानों से कलह करना तथा किसी के श्राद्धादि में कुछ बाँटा जाय तो निमन्त्रण की प्रत्याशा रखना और कुछ दही पेड़ा अठन्नी धोती आदि मिल जाय तो विद्या का फल समझना। और कहाँ ये विद्वान् कि स्वदेश में कितनी भाषा तथा विद्या को सीख चुके हैं अब छात्रता छोड़ शासन कार्य्य करते हैं तोभी नवीन नवीन विद्याओं के सीखने के लिये वही पिपासा है और गुप्त विद्याओं को प्रगट करने के लिये महर्षियों का सा उत्साह है॥

इस भाषा को जानने तथा इस के व्याकरण बनाने में इनने किस क्रम से क्या किया यह भी सुनने की बात है *।

इस समय तो ग्रेयर्सन् साहब केवल थोड़े से शब्दों का सञ्चय कर सके। और फिर इनें बङ्गाल में जाना पड़ा। वहाँ इननें संस्कृत और बङ्गाली भाषा में विद्वत्ता की पदवी पाई। और फिर बङ्गाल एशियाटिक सोसायटी के एक कार्य्यवाही सभ्य हुए और आज पर्य्यन्त उस समाज के उद्देश्यों का साधन कर रहे हैं। उस समय इनने रङ्गपुर की विलक्षण बङ्गभाषा का व्याकरण बनाया और प्रकाशित किया॥

सन् १८७७ में विहार में ज़िले दर्भंगे के मधुबनी स्थान में (Sub-divisional Officer) अध्यक्ष हो कर आये और कुछ अधिक तीन वर्ष तक यहां रहे। बस मिथिला भाषा के व्याकरण बनाने का यही इन को पूर्ण अवसर मिला॥ इस समय इन के पास कईएक लेखक वेतन पाते थे और इस तिरहुत भाषा का जो कुछ गान पद्य आदि मिले उस का संग्रह करते जाते थे पण्डित बबुजन झा, पण्डित आना झा, पण्डित हली झा, पण्डित चन्दा झा प्रभृति के साहाय्य से, साहब ने तिरहुत भाषा के वि-

* आगे सन् १८७७ के प्रकरण में पूर्ण रीति से कथित है॥

शेष गानों का संग्रह किया और पण्डित छली झा ने तिरहुत भाषा का एक व्याकरण बनाया था सो लिखा हुआ उन ने साहब को दिखाया उस से भी इन ने बहुत साहाय्य लिया। और मुकद्दमों में जितने गवाह आदि आवें उन का इज़हार, साहब, तिरहुता ही में लेने लगे और उन के शब्दों को ध्यान दे कर सुनने लगे और जो नया शब्द हो उसे उसी क्षण लेखकों को लिखवाने लगे। सुना है कि जो पण्डित लोग साहब के यहां आते थे उन्हें साहब कुछ भेंट भी देते थे। तिरहुत में २) और एक जोड़ा धोती प्राय: पण्डितों को दिया जाता है सो इस विदाई के लिये साहब भी बहुत पण्डितों के यजमान हो गये थे॥

तिरहुत के प्रसिद्ध महाकवि विद्यापति के गान और मनबोध के हरिवंश ने साहब को बहुत से प्रयोगों का परिचयी बनाया॥

इसी समय इन ने कचहरी और मधुबनी बस्ती के बीच में एक उत्तम बाज़ार बसाया जो आज तक 'ग्रेयर्सन्‌गञ्ज" नाम से प्रसिद्ध है।

साहब ने इस श्रम के फलस्वरूप तिरहुत भाषा का व्याकरण प्रकाशित किया और अति दुर्लभ मनबोध के हरिवंश की भी ग्यारह अध्याय प्रकाशित की (इतनी ही मिली)

साहब को रङ्गपुर ही से कुछ २ ज्वर सा हो गया था और मधुबनी में उस से पूर्ण मुक्त नहीं हो सके इस कारण उन्हें सन् १८८० में इङ्गलैण्ड जाना पड़ा। इसी वर्ष यूरप ही में इन ने विवाह किया और प्रसन्न हो इसी वर्ष पुन: भारतवर्ष में आये।

इस समय बिहार में शिक्षाविभाग में कैथी अक्षरों का प्रचार हुआ था और कैथी ही में विविध पुस्तक पढ़ाने की शिक्षाविभाग की आज्ञा हुई थी परन्तु महाजनी की भाँति कैथी में न तो ह्रस्व दीर्घ ही का विभेद था और न युक्ताक्षर ही थे, सो गवर्नमेण्ट ने इन को स्वातन्त्र्येण इस काम पर नियुक्त किया कि ये कैथी के अभाव को पूरा करें और तदनुसार टाइप् ढलवावें। इस काम को पूरा कर साहब पुन: ज्वाइण्ट म्याजिस्ट्रेट हो पटने आये और यहां कई वर्ष पर्यन्त रहे *।

यहाँ इनों ने बिहारी भाषा का व्याकरण बनाया और बिहार के साधारण निवासियों का चरित (Behar Peasant life) लिखा। इन ग्रन्थों के कारण यूरोप में ये प्रधान विद्याप्रचारक विद्वानों में गिने गये। अब इन ने बङ्गाल् एशियाटिक् सोसायटी, रायल् एशियाटिक् और जर्म्मन ओरियण्टल् सोसायटी के सामयिक पत्रों में गहन लेख लिखना आरम्भ किया।

सन् १८८५ में इन ने फ़र्लो छुट्टी ली और इस छुट्टी का विशेष अंश जर्म्मनी में बिताया।

सन् १८८६ में आष्ट्रिया के वीएनानगर में तत्त्वोद्भावक विद्वानों की महासभा हुई थी उस में भारतीय गवर्नमेण्ट की ओर से साहब भेजे गये थे।

---

* इसी अवसर में इन से मुझ से भी परिचय हुआ और आज तक इन की समान कृपा चली जाती है॥

इस (कांग्रेस) महासभा में इन ने एक प्रबन्ध भारतवर्ष के मध्य समय की भाषा साहित्य के विषय में पढ़ा । उस की वहाँ अत्यन्त ही प्रशंसा हुई । फिर काल पा के इन ने उसी भावार्थ को फैला के पुस्तकाकार से परिणत किया जिसका नाम ("The Madieval and Modern Vernacular Literature of Hindustan") प्रत्येक भाषारसिक के आगे अतिरोहित हैं।

थोड़े ही दिनों के अनन्तर साहब गया के कलेक्टर औ मेजिष्ट्रेट नियत हुये और सन् १८८२ तक अव्याहत वहाँ हीं रहे ॥

इस समय में बिहारीभाषा के तारतम्य कोष (Comparative Dictionary of Behari Language) के प्रबन्ध में इन का विशेष समय जाता था ॥ (इस ग्रन्थ के रचयिता डाक्टर ए. एफ़. रूडल्फ हार्नली Dr. A. F. Rudolf Harnali औ ग्रेयर्सन् साहब दोनों मिल के हैं ।)

गया में जब तक ग्रेयर्सन् साहब रहे तब तक यहाँ की प्रजा अत्यन्त ही प्रसन्न रही यहाँ तक कि किसी समय हिन्दू मुसल्मान के झगड़े की अत्यन्त ही सम्भावना हो गई थी परन्तु इन के प्रबन्ध से दोनों दल प्रसन्न रहे और एक ग्राम में एक स्त्री सती हो कर भी दग्ध हो गई थी उस विषय में कोई उपद्रव न हुआ ॥

थोड़े दिन हुए कि बरसों के परिश्रम में इन ने बिहारीसतसई का एक संस्करण प्रकाशित किया है । इस की भूमिका में प्रसङ्गवश समस्त भाषाभूषण का अंग्रेज़ी अनुवाद है । और उपसंहार में अनेक दोहों के विचित्र अर्थ तथा कुछ शङ्का समाधान हैं । तथा लालचन्द्रिका, हरिप्रकाश, अनवरचन्द्रिका, कृष्णदत्त की टीका, शृङ्गारसप्तशती की टीका तथा रसकौमुदी के अनुसार दोहाङ्क की सूचनिका भी दी है और स्थल स्थल में बड़े श्रम से टिप्पणी भी की है ॥

इन दिनों पद्मावत तथा Encyclopœdia of Indo-Aryan Research की रचना के अधिक परिश्रम से इन के नेत्रों में ऐसा आघात आ गया है कि इन को सूक्ष्माक्षर पढ़ना लिखना कठिन हो गया है ॥ परन्तु इन की स्वकार्य्य में ऐसी दृढ़तर प्रतिज्ञा है कि "कार्य्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" की कहावत हो रही है ॥ पहले इन ने डाक्टरों की सम्मति से चश्में लगाये फिर लिखने के लिये एक यन्त्र मँगा लिया जिस पर हार्मोनियम के बाजे की भाँति अँगुली फिरने से लेख होता जाता है ॥ इस अवस्था में भी एक काश्मीरी बालमुकुन्द पण्डितजी के साहाय्य से इन ने काश्मीरभाषा व्याकरण (प्राचीन) मुद्रित कराना आरम्भ किया । और इसी नेत्र रोग की चिकित्सार्थ यूरोप गये हैं ॥

सन् १८९६ में ग्रेयर्सन् साहब हवड़े से बदल कर बाँकीपुर आये और सम्प्रति यहाँ अफ़ीम के एजेण्ट हैं ॥

यद्यपि ग्रेयर्सन् साहब का प्रधान उद्योग उन लोगों के साहाय्य के लिये हुआ है जो अंग्रेज़ हैं और जो भारतवर्षीय भाषादि सम्बन्ध में बहुज्ञता चाहते हैं । तथापि अंग्रेज़ीभाषा के अभिज्ञ भारतवासियों के भी अनेक उपकार के अनेक ग्रन्थ इन के द्वारा प्रकाशित हुये हैं ॥

ग्रेयरसन् साहब डब्लिन् के बी॰ ए॰ हैं, कलकत्ता यूनिवर्सिटी के फ़ेलो हैं, भारत नियमनप्रणाली के सहयोगी हैं (Companion of the Most Eminent Order of the Indian Empire) बङ्गाल् एशियाटिक् सोसायटी के मेम्बर हैं, अमेरिका की ओरियण्टल् रायल् एशियाटिक और जर्मन ओरियण्टल् सोसाइटी के मेम्बर हैं।

ग्रेयर्सन साहब में एक अपूर्व गुण यह है कि इनसे जो ही भारतीय पुरुष मिलता है वही प्रसन्न हो जाता है। प्रायः उच्च पद वालों में अपने उच्चपद की ठसक ऐसी हो जाती है कि कोई कैसाही प्रतिष्ठित विद्वान् उनसे मिलना चाहै तो उससे भरसक मिलते नहीं और मिलें तो अपने पद की ठसक भी लगाये रहते हैं॥ यह बात इनमें नहीं है। इनसे मिलने पर यही विदित होता है कि जैसे किसी परम मित्र से भेट भई हो॥ हम लोगों से इनसे चिरपरिचय है और इनका स्नेह देख के आश्चर्य होता है॥ इनका भविष्यत् जीवन परमात्मा और भी उन्नत करें॥

(२८) बिहारी बिहार—यह ग्रन्थ सब रसिकों के संमुख उपस्थित है और मेरा चरित हो क्या है परन्तु अनेक विद्वान् सत्पुरुषों के अनुरोध से मैंने कुछ अपना चरखा इस ग्रन्थ के अन्त में लिख दिया है।

(इति बिहारीव्याख्याकारचरितावली समाप्ता।)

विहारी के समय में ये कवि हुए हैं।

कविनाम।	सन्।	कविनाम।	सन्।
अमरसिंह।	१६३४	बेदाङ्गराय।	१६५०
अवदुलजलील।	१६८२	भूषन।	१६६०
इन्द्रजीत त्रिपाठी।	१६८२	मतिराम।	१६५०
ईश्वर कवि।	१६७३	मण्डन।	१६५८
काशीराम।	१६५८	मानकवि।	१६६०
किसनकवि।	१६८३	मुरलीधर।	१६८८
खुमान।	१६८३	मोतीराम।	१६८३
गम्भीर राय।	१६५०	रघुनाथ।	१६३४
गोपालकवि।	१६५८	रतन।	१६८१
गोविन्दसिंह।	१६६६	रणछोड़।	१६८०
चिन्तामनि त्रिपाठी।	१६५०	रावरतन।	१६५०
छत्रसाल।	१६५०	राजसिंह।	१६५४
जयसिंह।	१६८१	लाल।	१६६८
जैनदीन अहमद।	१६७८	सदाशिव।	१६६०
ठाकुर।	१६४३	सबलसिंह चौहान।	१६७०
तुलसी।	१६५५	सम्भुनाथ।	१६५०
निवाज।	१६५०	सरस्वति कवीन्द्र।	१६५०
नीलकण्ठ।	१६५०	सामन्त।	१६७३
देवीदास।	१६५०	सिवनाथ।	१६६०
पञ्चम।	१६६०	सुन्दर।	१६३१
परताप।	१६३३	सूजा।	१६८१
पुरुषोत्तम।	१६६०	श्रीगोविन्द।	१६७३
प्राणनाथ।	१६५०	श्रीधर।	१६८३
वनवारीलाल।	१६३४	श्रीपति।	१६४३
वारन।	१६८३	हरिकेस।	१६५०
विजयाभिनन्दन।	१६५०	हरिचन्द।	१६५०
विहारीलाल चौवे।	१६५०	हरिवंश।	१६६२
वीरभान।	१६५८	इत्यादि।	

॥ बिहारीसतसई के विषय की अनुक्रमणिका व्याख्याकार लल्लूलाल के अनुसार ॥

बिहारी बिहार की रचना ।

भगवान् की इच्छा से सम्वत् १९४२ में मैं बिहार में मुज़फ़रपुर में गवर्नमेंट स्कूल में प्रधान संस्कृताध्यापक था । वहां मुझे एक वर्ष बिताना पड़ा था । वहां के प्रसिद्ध रईस रायनन्दीपति महथा के पोते राय परमेश्वरनारायण महथा से मुझ से अत्यन्त ही प्रेम था और उनी की कोठी में मैं रहता था । उनी के नारायण प्रेस से मेरा मासिकपत्र पीयूष-प्रवाह निकलता था । इन दिनों बाबू परमेश्वरनारायण के चचा बाबू रामेश्वरनारायण महथा मुझ से बिहारीसतसई पढ़ते थे ! एक दिन सायङ्काल में सब बाबू लोग तथा पण्डित अयोध्याप्रसाद सुकुल और बिहार के प्रसिद्ध पण्डित निधिनाथ झा बैठे थे कि पठान सुल्तान की कुण्डलिया की चर्चा निकली । मैंने दो एक पठान की कुण्डलिया पढ़ी तब बाबू परमेश्वर नारायण ने मुझ से कहा कि 'देखें आप भी तो किसी २ दोहे पर कुण्डलिया बना के सुनाइये ।' मैंने "मेरी भवबाधा" और "सोहत ओढ़ें" इन दो दोहों पर कुण्डलिया बना दूसरे दिन सुनाई । तब बाबू लोगों ने तथा विशेष कर मेरे मित्र * बाबू देवीप्रसाद खज़ाञ्ची ने अधिक प्रशंसा कर कहा कि पीयूष प्रवाह में प्रति बार आप की कुण्डलिया रहा करें ॥

मैंने ऐसा ही करना आरम्भ किया और मुझे अपनी कविता से स्वयं अपने ही को अधिकाधिक आनन्द मिलने लगा । (निज कवित्त केहि लाग न नीका)

इसी वर्ष ऐसी उमङ्ग आ गई कि मैं श्री बाबू देवीप्रसाद दोनों साथ ही पुष्कर यात्रा को राजपुताने की ओर चल पड़े ॥ प्रयाग, मथुरा होते श्रीवृन्दावन पहुंचे । वहां प्रसिद्ध महाशय श्रीराधाचरण गोस्वामी से मिले । उन ने कहा कि "आप की कुण्डलिया हमने देखी हैं बहुत ही उत्तम बनती हैं परन्तु ऐसा न कीजियेगा कि थोड़ी सी बना के छोड़ दें क्योंकि ऐसा ही बाबू हरिश्चन्द्र ने किया और पठान का भी ग्रन्थ पूरा मिलता ही नहीं है सो खण्डित ग्रन्थ के श्रम से फल नहीं । करना है तो पूरा ग्रन्थ बनाइये ॥" मुझे इस क्षण के पहले पूरा ग्रन्थ बनाने का स्वप्न भी नहीं हुआ था परन्तु गोस्वामी जी का कथन मुझे बहुत प्रिय लगा और मैंने प्रणाम कर के कहा कि "आप आशीर्वाद दीजिये कि ऐसा ही हो ॥"

जो स्वयं लिखने पढ़नेवाले हैं वे ही जानते हैं कि किसी ग्रन्थ बनाने और कविता करने में कैसा शान्त एकान्त का समय आवश्यक होता है । मेरे ऐसा पुरुष, जो घर में भी एक ही पुरुष व्यक्ति और जिसे राजकार्य्य से भी अवसर नहीं । कुछ अवसर हो तो भी घर में भी छात्रों को पढ़ाना यह कुलधर्म्म उसे छेंकता है । उस से बचे समय में कुछ धर्म्मप्रचार कुछ नित्य नियमाचार, कुछ शास्त्रविचार, कुछ मित्रों का उद्धार इत्यादि उत्पात की ऐसी ठसाठसी रहती आई है कि कितने ही मित्रों के पत्रों के प्रत्युत्तर भी पड़े ही रहते आये हैं । इतने पर थोड़ा समय निकाला भी जाय तो जो मनोमय घोड़ा सारे दिन कार्य्यान्तर में पूरी दौड़ दौड़ चुका है वह अब क्या दौड़ सकता है ! ! इस कठिनता को न

---

* इनके ममेरे भाई बाबू परमेश्वरनारायण हैं ।

तो वे लोग समझ सकते हैं जिन को भगवान् ने लेख शक्ति के साथ ही निश्चिन्तता तथा अवसर दिया है, न वे लोग समझ सकते हैं जो द्रव्यबल से दूसरे दरिद्र लेखकों से ग्रन्थ बनवा ग्रन्थकार बन बैठते हैं, और न वे लोग समझ सकते हैं, जो धूर्तता के बल से थोड़े नायिका नायक के नाम याद कर पराई कविता चुरा २ अपने नाम ठोंक अपने को कवि की पोंछ प्रगट करते हैं ॥ मुझे तो ऐसे कामों में बिचारी रेल बहुत ही काम आई है । मैं प्रायः, नवीन पथिकों से व्यर्थ बात करते और झाड़ झङ्खाड़ लोमड़ी स्याल देखने के ठिकाने पेन्सिल् और कागद का ही शरण लेता आया हूँ । उसी प्रकार इस यात्रा में भी बराबर कुण्डलिया बनने लगो । जयपुर में रोवाँवाले कामदार श्यामलालजी और पुरन्दर जी प्रभृति सुज्ञगण ने इस ग्रन्थ पर घोर तोष प्रगट किया । मैं यात्रा से लौट के आ फिर सरकारी काम के चरखे में फंसा परन्तु यथावसर इस काम में भी हाथ लगाये रहा ॥ फिर मेरी मुज़फ़रपुर से भागलपुर बदली हो गई और वहां उस समय के स्कूलों के इन्स्पेक्टर जानवेन सोमरन पोप् एम०ए०की आज्ञानुसार कई एक स्कूल में पोढ़ाने योग्य पोथियां † लिखनी पड़ीं । तथा महाराज मिथिलेश की आज्ञा से रचित सामवत नाटक (संस्कृत) छपवाना पड़ा तथा और भी कितनेही कार्य्य ऐसे आ पड़े कि बरसों तक यह कार्य्य एकाएकी रुक गया ॥ (इन कार्य्यों में प्रधान कार्य्य बिहार संस्कृत सञ्जीवन का था जिसने अनवरत ७ वर्ष तक मेरा अहोरात्र छेंक रक्खा था)

अनन्तर इस समय के प्रसिद्ध हिन्दीबङ्गवासी पत्र के अध्यक्ष ने साग्रह मुझ से कुण्डलिया माँगी तो कुछ दिन तक मैंने उस पत्र में भी बराबर लगढग ४० कुण्डलिया भेजीं और वे उस में छपीं ॥

भागलपुर के भाग्य की मैं क्या प्रशंसा करूँ कि जिने यह ग्रन्थ समर्पित है उन महाराज कोशलेश का यहां विवाह हुआ । इस समय श्रीमहाराज के साक्षात्कार और आलाप का मुझे भी आनन्द मिला था ॥ कविता पर महाराज की पूर्ण रुचि और गुणज्ञता देख मैंने दो वर्ष यथावसर और परिश्रम कर यह ग्रन्थ पूर्ण किया तथा संवत् १८४८ में विजयदशमी की छुट्टी पर मैं इस ग्रन्थ को साथ लिये श्री अयोध्याजी गया । साथ ले जाने का एक तो यह अभिप्राय था कि लगढग ५० कुण्डलिया शेष थीं उने रेल पर अथवा जब अवसर मिले बनाऊँ और दूसरा यह अभिप्राय था कि श्रीमन्महाराज कोशलेश को सुनाऊँ तथा उने गृहीत हो तो उन के नाम सहित छपवाऊँ ॥

हनुमानगढ़ी के समीप पण्डित ※ लक्ष्मीनारायणजी के डेरे में मैं ठहरा । वहाँ पण्डित गङ्गासहाय प्रभृति मेरे मित्रगण उपस्थित हुए और सब के सामने उनलोगों के आग्रह से मैंने उस ग्रन्थ को निकाल कुछ कुछ कुण्डलिया सुनाना आरम्भ किया । घण्टों तक कविता का आनन्द रहा उसी दिन रात को श्रीमहाराज के यहाँ इस ग्रन्थ की बातचीत हुई और महाराज ने दूसरे दिन सुनने का अभिलाष

† (१) कथा कुसुम । (२) रत्नाष्टक । (3) Children's Sanskrit Grammar. (4) Practical Sanskrit (Part I.) (5) Practical Sanskrit (Part II.)

※ उपनाम कमलापति कवि (मेरे भाई के साले)

प्रगट किया ॥ मैं दूसरे दिन अति उत्साह से नियत समय पर वस्त्रादि धारण कर पुस्तक ढूँढ़ने लगा तो उसका पता ही नहीं मेरी तो यह दशा भई कि "ज्यों गथहारे थकित जुवारी" अथवा इस से भी अधिक। पर मेरे साथियों में मैं नहीं जानता कि किसी ने भी इसे इतनी दुर्घटना समझी होगी जैसी मुझ पर बीती ॥ कोई २ मुझे ऐसे शोक समय में ठट्ठा भी मारने लगे कोई हँसने भी लगे जिसे देख मेरा दुख और भी बढ़ा। मैंने उसी क्षण जाके दीवान रायराघवप्रसादजी से कहा उन ने इसी क्षण इसकी खोजने को कई सिपाही भेजे और श्रीमहाराज को विदित किया महाराज की आज्ञा से सारी अयोध्या ढूंढ़ी गई पर ग्रन्थ न मिला । और बन्दर के ले जाने की भी आशङ्का थी इस कारण ऊंच ऊंच मन्दिर मन्दिर भी खोजे गये पर एक पत्ता भी न मिला ॥

मैं सांझ को उदास मुँह दर्बार में गया वहां प्रसिद्ध कवि लछिराम प्रभृति उपस्थित थे वे तथा श्रीमहाराज मेरे दुःख से सह दुःखी हुए । मैंने दो तीन कुण्डलिया कण्ठ ही सुनाई और श्रीमहाराज ने प्रसन्नता दिखलाई परन्तु इस सभा में कई वर्ष के श्रम के रचित ग्रन्थ खोने का शोक ही रहा। मैं इसी रात काशी चला आया, उस समय जो शोक मुझे था, मैं समझता हूं कि वैसा शोक कदाचित् न तो दिवाला निकलने से सेठ को होता होगा और न राज्य जाते रहने से राजा को होता होगा क्योंकि उन सम्पत्तियों के यथास्थित होने की कदाचित् फिर भी आशा रहे पर नष्ट कविता ज्यों की त्यों फिर कैसे हो सक्ती है ॥ हँसने और चिढ़ानेवाले बहुत मिले परन्तु मेरे चाचा * पण्डित राधावल्लभजी ने मुझे सोत्साह किया और कहा कि अब पुनः इस ग्रन्थ को बनाओ यह पहले से भी अच्छा बनेगा और गये ग्रन्थ का स्मरण छोड़ो। मैंने उसी क्षण पुनः उस ग्रन्थ की रचना में हाथ लगाया । जितनी कुण्डलियायें बङ्गवासी में छप चुकी थीं उतनी ही मुझे पूर्व की रचना की मिली और सब नये क्रम से आरम्भ करनी पड़ी। इस बार खोने के डर से मैंने इसी क्षण दो स्थान में लिखना आरम्भ किया और एक † शिवराजविजय उपन्यास भी मैं संस्कृत में इन दिनों में लिख रहा था उस को भी दो प्रति कराने लगा और अब से प्रत्येक कविता दो प्रति रहैं इस का दृढ़ नियम किया ॥

सं० १९५२ में यह ग्रन्थ पुनः पूर्ण हुआ और मैं इसे ले ज्येठ मास में अयोध्येश के यहां पहुंचा ॥ श्रीमन्महाराज ने भेंट होते ही पूछा कि उस ग्रन्थ का कुछ पता लगा या नहीं परन्तु मैंने सहर्ष विनय किया कि उस की तो एक कविता भी न मिली परन्तु पुनरपि नवीन रूप से बन के यह ग्रन्थ प्रस्तुत है। यह सुन श्रीमान् ने अति प्रसन्नता प्रगट की और उसी समय तीस चालीस कुण्डलिया मुझ से सुनी और हर्षपूर्वक आज्ञा की कि अब यह ग्रंथ शीघ्र मुद्रित होना चाहिये । सो यह बिहारीविहार ग्रंथ श्री महाराज की आज्ञा से मुद्रित हो कर यावत् रसिकों के चित्त विनोदार्थ प्रस्तुत है जैसे सतसई के कारण तथा उपहारभाजन महाराज मिर्ज़ा जयसिंह थे वैसेही इस विहारीविहार के एक मात्र अवलम्ब श्री

---

* वे महाराज डुमरांव के आश्रित हैं अनेक ग्रन्थों के रचयिता हैं और मेरे पिता के ममेरे भाई हैं॥

† यह ग्रन्थ अब परिपूर्ण प्रस्तुत है छपना ईश्वराधीन है ॥

कोशल देश नरेश महाराजाधिराज Honourable श्रीप्रतापनारायणसिंह बहादुर K. C. I. E. हैं । उन्हीं के करकमल में श्रीराधामाधव के प्रसाद स्वरूप यह ग्रन्थ समर्पित है ।

इसी यात्रा में श्रीमन्महाराज ने मुझ से घटिकाशतक कविता अर्थात् एक घड़ी (२४ मिनिट) में प्रस्तुत विषय पर नवीन १०० श्लोक बनाने का कौशल तथा शतावधान अर्थात् एक सङ्ग सौ काम तक करने का कौशल भी देखा (इस दिन केवल २५ अवधान किये गये थे । इन में समस्यापूर्त्ति व्यस्ताक्षर अंग्रेज़ी फ़ारसी अरबी आदि वाक्य, गुणन, वर्ग, किसी तारीख़ पर वार निकालना, प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, ताश, शतरञ्ज, वर्णन, शास्त्रार्थ आदि विषय थे) अनन्तर श्रीमहाराज ने मेरा सीमातिरिक्त सम्मान कर आज्ञा की कि 'इस विजयदशमी के आम दर्बार में आप को सुवर्ण पदक तथा प्रशंसापत्र दिया जायगा ।'

आमन्त्रणानुसार मैं विजयदशमी पर दर्बार में पहुंचा दर्बार की शोभा देखने ही योग्य थी ।

दूर दूर के रईस तथा बवुआन एकत्रित थे । यूरोप के प्रसिद्ध विद्वान् पिङ्कट साहब भी सभा में सुशोभित थे । पश्चिमोत्तर के प्रधान प्रधान पण्डित, कवि गुणी पत्र सम्पादक और वक्ता विद्यमान थे । चारोंओर सीढ़ी की भाँति ऊँचा दूसरा और दूसरे से तीसरा यों मञ्चों की अवली सजी थी सुवर्ण तथा रजत के कामवाला प्रधान उच्च सिंहासन श्रीमन्महाराज का था । श्रीमन्महाराज के कर्मचारियों में जितने महाशयों के कार्य्यों की प्रशंसा हुई उन को पारितोषिक मिला और जिन की निन्दा हुई उन को शिक्षा दी गई । फिर श्रीमान् ने स्वहस्त से मुझे सुवर्णपदक तथा घटिकाशतकपदसहित एक प्रशंसापत्र दिया और मेरी प्रशंसा कर मुझे अपनी अनुपम दया से खरीद लिया ॥ कान्यकुब्जेश्वर ने दो बीड़े पान के देकर श्रीहर्ष कवि की जो अपूर्व प्रतिष्ठा की थी, श्रीमहाराज ने सुवर्णपदक देकर उससे कहीं अधिक मेरी प्रतिष्ठा की । श्रीमन्महाराज की इस गुणग्राहिता की पूरी प्रशंसा करने के लिये कोष में शब्दों का दारिद्र्य है और कविता में उक्ति युक्ति का दारिद्र्य है । इस कारण इस ग्रन्थ में जिन दोहों में बिहारी ने अपने ग्रन्थ में निज महाराज जयसिंह की प्रशंसा की है उन्ही दोहों की कुण्डलियाओं में मैंने महाराज कोशलेश की प्रशंसा कर कविता सफल की है ।

प्रायः इन दिनों के राजा महाराजों को इतिहास का व्यसन नहीं रहता और यही प्रधान कारण है कि इतिहासविद्या नष्ट हो गई । परन्तु हमारे महाराजाधिराज कोशलेश्वर की सर्वतोमुख रुचि है । इस कारण मैंने बिहारी तथा इनके व्याख्याकारों की चरितावली लिखने का श्रम उठाया और दो वर्ष के घनिष्ठ परिश्रम से भला बुरा जैसा बना, चरित लेख किया । आशा है कि जैसे मैंने शिवसिंह और श्रीयुत ग्रेयर्सन् साहब बहादुर के लेख से सहायता पा उस विषय को यथा शक्ति आगे बढ़ाया वैसे ही मेरे भविष्यत् ऐतिहासिकगण मेरे इस दरिद्र लेख से सहायता पा यथाशक्ति इसे और आगे बढ़ावेंगे और श्री कोशलेश का गुण गावेंगे तथा मेरी भूल चूक सुधार भविष्यत् काल के लिये इतिहास का पथ परिष्कृत करेंगे ॥

अम्बिकादत्तव्यास ।

श्रीराधावराय नमः।

(अथ* विहारीविहार)

मेरी भववाधा हरो राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परैं स्याम हरितदुति होइ ॥ १ ॥

† स्याम हरितदुति होइ परत तन पीरी झाँई। राधा हू पुनि हरी होत लहि स्यामल छाँई ॥ नयन हरे लखि होत रूप अरु रङ्ग अगाधा। सुकवि जुगुल छविधाम हरहु मेरी भववाधा ॥ १ ॥

पुनः।

होइ हरितदुति सबै स्याम जो जो कछु जग मैं। भेद कछू नहिं रहत नील अरु पन्ना नग मैं ॥ मेरो हिय अति स्याम हरो ह्वै है कब एरी। निजझाँई की की भीख सुकवि दीजै यह मेरी ॥ २ ॥

पुनः।

होइ हरितदुति स्याम परत तन पीरी झाँई। होत बैंगनी परैं लाल चादर की छाँई ॥ अति कारे लहि प्रभा साँवरी सारी केरी। सुकवि सबै रँग भरी हरहु भववाधा मेरी ॥ ३ ॥

---

* व्याकरण के अनुसार व ब समझना। † युगलस्वरूपवर्णन।

पुनः ।

❀ होइ हरित राधिका स्याम आवत समुहैं जब। आये आये कहत चौंकि सी उठत सखी सब ॥ बिनु देखेहुँ जय कहत चौंर लै दौरत चेरी। राधा हरिरँग रँगी सुकवि अवलम्बन मेरी ॥ ४ ॥

पुनः।

स्याम हरितदुति होइ पितम्बर गहरो पीरो। अधर गुलाबी होइ कनक सो कुण्डल हीरो ॥ मोती हारहु पद्मरागछबि धारत आधा । सुकवि स्यामरँग रँगी हरहु मेरी भवबाधा ॥ ५ ॥

पुनः ।

† होइ दिव्यदुति स्याम कलुष सब जात नसाई। हृदयग्रन्थि खुलि जात सबै संसय उड़ि जाई ॥ पराभक्ति साकार सुकवि पूरति मनसाधा। सो राधा करि कृपा हरहु मेरी भवबाधा ॥ ६ ॥

पुनः ।

स्याम हरितदुति होइ सखिन को हिय हरसावत । ताही सौं जनु हरे कृष्ण कहि मुनिगन गावत ॥ बहुरङ्गे को रङ्ग बदलि दीनो दुति तेरी। निज रँग रँगि लै मोहु सुकवि बिनती सुनु मेरी ॥ ७ ॥

पुनः ।

स्याम हरितदुति होइ जासु तन झाँई पायैं। हरो रहत हूँ मैं हुँ जासु पद पङ्कज ध्यायैं॥ रचना कछु मैं करत तिनहिं छबि निजहिय हेरी। सुकवि स्याम राधिका कामना पुरवहु मेरी ॥ ८ ॥

❀ जातन की झाँई (जिस राधा के अंग की कान्ति) स्याम परें (कृष्ण का प्रतिबिम्ब पड़ने से) हरितदुति होइ (हरी) होती है ।

† यह आशंका होती है कि अपनी झाँई से श्रीकृष्ण को हरा करना तो भवबाधाहरण का पोषक नहीं है फिर असम्बन्ध विशेषण क्यों ? उत्तर यह कि जिसकी झाँई पड़ने से = ध्यानगोचर होने से, स्याम हरित = पाप का हरण होता है और दुति होइ = दिव्य देह होता है ।

सीस मुकुट कटि काछनी कर मुरली उर माल ।
एहिं बानक मोमन बसहु सदा बिहारीलाल ॥ २ ॥

सदा विहारीलाल निरखि मोही ब्रजबाला। अपनेहिँ कोँ हरि समुझि प्रेम सोँ भई विहाला ॥ उलटि पुलटि ही वेस रच्यो निज सुकवि छटा छटि। धारयो नूपुर करनि काछनी सीस मुकुट कटि ॥ ९ ॥

पुनः ।

सदा विहारीलाल कृपा लहि सुकवि विहारी। करी विहारीसतसइया रस रीति निहारी ॥ रची ज़थामति कुण्डलिया तिन पै मैँ सुलसी। सात सतक के सात समुद पै सोहहु पुल सी ॥ १० ॥

मोरमुकट की चन्द्रिकन योँ राजत नँदनन्द ।
मनु ससिसेखर की अकस किय सेखर सतचन्द ॥ ३ ॥

चन्द धरयो अँग रंजित कै ब्रजधूरि विभूती। व्यालवाल सी लट छटकाई कसि मजबूती ॥ सीँग बजावत देखि सुकवि मेरी दृग अटकी। लटकी सुर-सरिधार कलँगिया मोरमुकट की ॥ ११ ॥

मकराकृत गोपाल के कुंडल सोहत कान ।
धरयौ मनो हियगढ़ समर ड्योढ़ी लसत निसान ॥ ४ ॥

ड्योढ़ी लसत निसान चँवर कलँगी जुग राजत। मुकुट मनोहर छत्र* नयन हय जुगल विराजत। आसा सोटा कनक केसरिया खौर हृदयतल। सुकवि मोहि गयो आजु देखि कुंडल मकराकृत ॥ १२ ॥

---

* नेत्रों की उपमा घोड़े से प्रसिद्ध है, जैसे दोहा ३२ औ दोहा २६८ इत्यादि में।

सोहत ओढ़े पीतपट स्याम सलोने गात ।
मनौं नीलमनिसैल पर आतप परयो प्रभात ॥ ५ ॥

आतप परयो प्रभात ताहि सों खिल्यो कमलमुख । अलक भौंर लहराय जूथ मिलि करत बिविध सुख ॥ चकवा से दोउ नैन देखि इहिं पुलकत मोहत । सुकवि बिलोकहु स्याम पीतपट ओढ़े सोहत ॥ १३ ॥

पुनः ।

*आतप परयो प्रभात तासु की छाया जोई । कनकलता सी प्रिया अंग पै सारी सोई ॥ सुकवि हहा चलि लखहु होत सुख कैसो जोहत । राधा सारी स्याम स्याम पट पीरे सोहत ॥ १४ ॥

अधर धरत हरि के परत ओठ-दीठ-पट-जोति ।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्रधनुषदुति होति ॥ ६ ॥

इन्द्रधनुषद्युति होति पाइ घनस्यामसङ्ग छबि । हार लसत बकपाँति मनहुँ कहि सकै कौन कबि ॥ सुकवि पितम्बर सोई बीजुरी रही चमक करि । पावस प्रगट दिखात मुरलिया अधर धरत हरि ॥ १५ ॥

किती न गोकुल कुलबधू काहि न किहिं सिख दीन ।
कौनै तजी न कुलगली ह्वै मुरलीसुरलीन ॥ ७ ॥

लीन भई क्यों अरी नवेली नारि छबीली । चारि दिना तैं आइ भई एती गरबीली ॥ कान आँगुरी देइ भागु ह्वैहै पुनि आकुल । सुकवि देखु बिललात गोपिका किती न गोकुल ॥ १६ ॥

पुनः ।

ह्वै मुरलीसुरलीन लखहु पसु पंछी मोहत । सुरी किन्नरी आदि टकटकी बाँधे जोहत ॥ मन्त्र बसीकर फूँकि करत हरि सबकों आकुल । सुकवि भटकती फिरत गोपिका किती न गोकुल ॥ १७ ॥

---

* युगलवर्णन ।

सखि सोहत गोपाल के उर गुंजन की माल ।
वाहर लसत पिये मनौ दावानल की ज्वाल ॥ ८ ॥

दावानल की ज्वाल सोई उर गुंजनमाला । मृगमदचन्दनछाप सोई पुनि धूम विसाला ॥ सीतल अतिही भई पाय कौस्तुभ मनि सँग लखि । सुकवि नैन जुग फँसे विलोकत नन्दनदन सखि ॥ १८ ॥

नितप्रति एकत ही रहत बैस बरन मन एक ।
चहियत जुगल किसोर लखि लोचन जुगल अनेक ॥९॥

लोचनजुगल अनेक सहस जो होहिँ सँवारे । विना पलक की ढरनि टकटके रहहिँ थिरारे ॥ तौ ताजि जग के जाल ठानि नँदनन्दचरनरति । सुकवि रहौं मै जुगल किसोरहिँ निरखत नितप्रति ॥ १९ ॥

गोपिन सँग निसि सरद की रमत रसिक रसरास ।
लहाछेह अति गतिन की सबन लखे सब पास ॥ १० ॥

सबन लखे सबपास गतिन की लहाछेह सौं । ताताथेई करत नचत सब भरी नेह सौं ॥ ठठक्यो चन्द हु सुकवि नखतजुत रँग्यो प्रेमरँग । नटवर जमुनानिकट आजु नाचत गोपिन सँग ॥ २० ॥

मोहि करत कत वावरी किये दुराव दुरै न ।
कहे देत रँग रात के रँग निचुरत से नैन ॥११॥

रँग निचुरत से नैन छुटी बिंदुरी अरु टीकी । कवरी बिथुरे वार अधर की दुति त्यों फीकी ॥ छाप पीक की लगी कपोलनि हीय नखच्छत । सुकवि प्रगट भई घात वावरी मोहि करत कत ॥ २१ ॥

बाल कहा लाली भई लोयन कोयन माँह ।
लाल तिहारे दृगन की परी दृगन मैँ छाँह ॥१२॥

* छाँह परी यह अरुन हहा तेरे नैनन की । क्यौँ बररावत बहकि हनत बरछी बैनन की ॥ तेरे पायन परत पिया सुकवि हु के पालक। तू दिखरावत भौँह हाय जनु व्यालीबालक ॥ २२ ॥

पुन. ।

† छाँह परी तो चली कहा उठिकै अनखानी ?। नहिँ अनखानी चरन पखारन ल्यावत पानी ॥ बोलत धीमे बोल कहा मो हिय के सालक ? । कछू न प्यारे सुकवि पौरि के सुनिहैँ बालक ॥ २३ ॥

दुरै न निघरघटौ दिये यह रावरी कुचाल ।
विष सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल ॥१३॥

हँसी खिसी की लाल हँसत सतरावत भौँहैँ। प्रगट भयो सब रहस खात तउ झूठी सौँहैँ ॥ कबहुँ निलज हू बकत कबहुँ कोउ कहानि फुरै ना। नखरे करहु करोर सुकवि तउ बात दुरै ना ॥ २४ ॥

सेद सलिल रोमांच कुस गहि दुलहिनि अरु नाथ ।
दियो हियो सँग नाथ के हाथ लिये ही हाथ ॥ १४ ॥

हाथ लिये ही हाथ दियो हिय दोऊ परस्पर । मदनमहीपतिप्रेममुहर करवाई तापर ॥ हीयदान को यज्ञ कियो जानत को भेदा । लाज दच्छिना देइ सुकवि न्हाये दोउ सेदा ‡ ॥ २५ ॥

---

* (सखी की उक्ति) लाल तिहारे (हैँ) तेरे दृगन की (उनके) दृगन में छाँह परी ॥

† नायक नायिका की उक्ति प्रत्युक्ति । ‡ कहीं कहीं स्वर भेद करके कुण्डलना मिलाई गई है ।

कहत न देवर की कुबत* कुलतिय कलह डेरात ।
पंजरगत मंजार ढिग सुक लौं सूखति जात ॥ १५ ॥

सुक लौं सूखति जाति इसार हु सौं न बुझावति । सासु ननद पिय निकट बैठि किहुँ समय बितावति ॥ सुमरि घात अँसुवान बहावति दोऊ नयनन । पूछि सखी सब थकीं कलह-डर तोऊ कहत न ॥ २६ ॥

पार्‌यो सोर सुहाग को इन बिन ही पिय-नेह ।
उनदौंहीं अँखिया क † कै कै अलसौंहीं देह ॥१६॥

कै अलसौंही देह पोंछि कछु अञ्जन दृग को। कच कछु कछु बिथुराइ मिटाइ महावर पग को । कंचुकि हू दरकाइ कपोलनि पींक सँवार्‌यो । पगी सुकबिरँग तिया सोर यह घर घर पार्‌यो ॥ २७ ॥

पुनः ।

कै अलसौंहीं देह ऐंठि अँगिरावति प्यारी। आनन पोंछति बार बार आरसी निहारी ॥ तोरि तोरि पुनि हार गुहत स्याम हिँ मन धार्‌यो । सुकवि सोर इमि तिया पियासँग रति को पार्‌यो ॥ २८ ॥

पुनः ।

कै अलसौंहीं देह फिरे बिनु और करे का। पिय जो चाहत नाहिँ निजहु पुनि नाहिँ ढरे का ॥ झूठेहु लगैं कलङ्क स्यामसँग जनम सुधार्‌यो। सुकवि याहि सौं बाल सोर अति जतनन पार्‌यो ॥ २९ ॥

छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोवन अङ्ग ।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता ‡ रङ्ग ॥१७॥

रङ्ग चढ्यो इक अजब करत बदरङ्ग सौतिमुख । हँसत छिपत कनखात

---

* कुबत = खोटीबात । † कै कै (ऐसा ही दोहा २४१ में है) ।
‡ ताफ्ता = धूपछांह = दो मेल का । फारसी धातु " ताफतन् " ।

नैन ठठकाइ करत सुख ॥ खेलत गुड़ियाखेल सुकबि करि बहुविधि पटुता । जोवन झलक्यो झमकि अङ्ग तउ गई न सिसुता ॥ ३० ॥

तिय तिथि तरनि किसोर वय पुन्यकालसम दोन* ।
का हू पुन्यन पाइयत बैससंधिसंक्रोन ॥ १८ ॥

वैससन्धिसंक्रोन समै जो जोग मिलै सुचि । बुध मनसिज उपदेस देइ पुनि अधिक ठानि रुचि ॥ मज्जन कीजे प्रेमतीर्थ तिहिँ छन निर्मल हिय । वड़े भाग तेँ मिलै सुकवि ऐसी सुंदर तिय ॥ ३१ ॥

लाल अलौलिक लरिकई लखि लखि सखी सिहाति ।
आज काल्हि मैं देखियत उर उकसौँहीँ भाँति ॥ १९ ॥

उर उकसौँहीँ भाँति भौँह कछु व्है गई बाँकी । चितवनि तिरछी भई घात पुनि करति निसाँकी ॥ झूलति सखियन सङ्ग अलापति ज्यौँ वसन्त पिक । सुकवि रसीली रहनि ठहनि सब लाल अलौकिक ॥ ३२ ॥

अपने अँग के जानि कै जोबन नृपति प्रबीन ।
† स्तन मन नयन नितंब कौँ बड़ो इजाफा दीन ॥२०॥

दीन इजाफा बहु नितंब तन मन नैनन कौँ। दीन मधुरता आनि अधर आकृति वैनन कौँ॥ दीन मनोहरता हु चलनि चितवनि भौँगी रँग । सुकवि अपूरव राज कियो जोवन अपने अँग ॥ ३३ ॥

---

* दोन दोनोँ ।

† " स्तन " शब्द यथास्थित प्रयोग कर्ण कटु है । इजाफा = वड़ाई = अधिकाई । हरिप्रकाश में " अपने तन के पाठ है) ।

नवनागरितनमुलकलहि जोबनआमिल जोर ।
घटि वढ़ि तैं बढ़ि घटि रकम, करी और की और ॥२१॥

करी और की और जोर निज खरो दिखायो । नीको राजप्रवन्ध ठानि जनमन तरसायो ॥ गए स्याम हू मोहि देखि सुन्दरताआगरि । वरनि सकै किहिँ सुकवि भरी जोवन नवनागरि ॥ ३४ ॥

पुनः ।

और भयो अब राज जगतजाहिर जोवन को । नैनसैनपति वान चलावत रुकत न तनको ॥ धन्य सोई अधिकार जासु इहिँ राज्य कछुक फव । विनु पूरव के पुन्य सुकवि नहिँ मिलत तिया नव ॥ ३५ ॥

पुनः ।

और हि कटि अव भई नाहि कछु परत लखाई । कुच उमड़े ज्यौं विजय दुंदुभी द्वै औंधाई ॥ चीन्ही परत न कछू भई अव जगतउजागरि । सुकवि रसीले स्याम मोहि गये लखि नवनागरि ॥ ३६ ॥

पुनः।

और भयो तिय अङ्ग सबै विधि ते सुठि सोहन । *मार हु मन को मारन अरु मोहन को मोहन ॥ उच्चाटन देवन हूँ को ठानत उच्चाटन । कर्षन कर्षन सुकवि लसत यह नवनागरितन ॥ ३७ ॥

ज्यौं ज्यौं जोवनजेठ दिन कुचमित अति अधिकात ।
त्यौं त्यौं छन छन कटि छपा छीन परति नित जात ॥२२॥

छीन परत नित जात छपा सी कटि छिन ही छिन । सेदविन्दु भभराइ उठत वातन ही दिन दिन ॥ अधरामृत की प्यास करत है विकल रसिकगन । सुकवि करेरो होत जेठ दिन ज्यौं ज्यौं जोवन ॥ ३८ ॥

---

* मार = काम । मोहन को मोहन = कृष्ण का मोहन करने वाला ॥ उच्चाटन = ऊँचे अटन करने वाले = विमान पर चलने वाले (देव का विशेषण)॥ कर्षणाकर्षण = बलभद्र का भी आकर्षण करनेवाला॥

बाढ़त तोउर उरजभर भरि तरुनई बिकास ।
बोझनि सौतनि के हिये आवत रूँधि उसास ॥ २३ ॥

आवत रूँधि उसास करेजो सो पुनि टूटत । तू मदमाती फिरत होस पुनि उनके छूटत ॥ रहत उनींदी अधिक तुई उनकौं दाहत जुर । वे बोझन सौं मरत सुकवि कुच बाढ़त तो उर ॥ ३९ ॥

पुनः ।

आवत रूँधि उसास तासु निहँचै हम कीन्हो । प्रेमभरयो कर तासु हीय हरि नैं नहिँ दीन्हो ॥ कहा जरनि मैं अहै न बूड़त क्यौं सुरलीसुर । सुकवि उनहिँ नहिँ अहै प्रेम जिमि बाढ़त तोउर ॥४०॥

---

*भावक उभरौंहौं भयौ कछुक परयो भरुआय ।
सीपहरा के मिस हियो निस दिन हेरत जाय ॥ २४ ॥

जाय बिलोकत बदन छन हिँ छन दरपन माँहीं । टीका को करि उतरु देत पुनि सखियन पाहीं ॥ रुचत अधिक मुख पान नैन अञ्जन पग जावक । सुकबि बिलोकत निहुरि निहुरि उभरौंहौं भावक ॥ ४१ ॥

---

† देह दुलहिया की बढ़ै ज्यौं ज्यौं जोबनजोति ।
त्यौं त्यौं लखि सौतैं सबै बदन मलिनदुति होति ॥२५॥

बदन मलिनदुति होति आँसुरी नैन बहावत । बिलखत लेइ उसास सुमिरि मन अति दुख पावत ॥ होत सबै बदरंग देखि तिहिँ रंग मँहदिया । सुकवि आँगुरी देत दसन लखि देह दुलहिया ॥ ४२ ॥

---

* कुछ कुछ । भाव = एक । थोड़ा एक ।

† यह दोहा कृष्णदत्त की टीका में नहीं है ।

होत मलिनदुति वदनकमल सब सौतिन केरो । ज्यौं अमन्द मुखचंद तिया को करत उजेरो ॥ * रूपरंगवयगरवदरब सब परयो चुलहिया । सुकवि करत है राज आज यह देह दुलहिया ॥ ४३ ॥

मानहु मुखदिखरावनी दुलहिन करि अनुराग ।
सास सदन मन ललन हूँ सौतिनि दियो सुहाग ॥ २६ ॥

सौतिन दियो सुहाग लखत ही तिया छबीली । निज हियरो दै दियो सबै सहचरी रसीली ॥ निजकविता को जोर दियो सब सुकवि सुजान हु । ताना दियो चबाइन मुखदिखरावनि मानहु ॥ ४४ ॥

पुनः ।

† सौतिन दियो सुहाग ललन हू आजु सयानी । जामिनि कामिनि स्याम काम की समै सुहानी ॥ सारी कारी पहिरहु पट छटकावहु कै सुख । क्यौं उदास जिय होहु सुकवि विहँसहु मानहु मुख ‡ ॥ ४५ ॥

निरखि नवोढ़ानारितन छुटत लरकई लेस ।
भौ प्यारो प्रीतम तियन मानहुँ चलत विदेस ॥२७॥

मानहुँ चलत विदेस यहै सौतिन मन मान्यो । नवनागर बस होइ हमैं बिसरैहै जान्यो ॥ बिनवत विधि को बार बार करि हिय अति पोढ़ा । सुकवि कहै किमि जरत जिय हिं जिय निरखि नवोढ़ा ॥ ४६ ॥

---

* रूप, रङ्ग, और वय के गर्व स्वरूप द्रव्य (रूपकसमास) ।

† सखी की उक्ति नायिका से "मानहु, मुख दिखराव, नीँदु लहि न, करि अनुराग" (मेरी बात मान, मुहँ दिखला, निद्रित मत हो, स्नेह कर) अभिसरण का अवसर दिखलाती है कि इस समय सास घर में है और तुमारा पति भी सपत्नियों पर आसक्त है । इस अर्थ पर यह कुण्डलिया है ।

‡ मुख बिहँसहु अथवा मुख्य मानहु ।

ढीठौ दै बोलति हँसति पौढ़ बिलास अपौढ़ ।
त्यौं त्यौं चलत न पियनयन छकये छकी नवौढ़ ॥२८॥

छकये छकी नवोढ़ हँसत फूलन बरसावति । दै दै गुलचा गाल हठीली हिय हरसावति ॥ सुधासार सौं भरयो बचन बोलति अति मीठौ । सुकवि ठठकि गयो भाव सबै लखि वाको ढीठौ ॥ ४७ ॥

---

*चाले की बातैं चलीं सुनति सखिन के टोल ।
गोये हू लोचन हँसति बिहँसत जात कपोल ॥ २९ ॥

बिहँसत जात कपोल रुमञ्चित व्है गई अँग अँग । सेद सगबगी भई रँग्यो हिय हू ताही रँग ॥ मन्द मन्द पुनि कम्प पाइ तन लाग्यो हाले । सुकवि तियाहिय पीय परयो सुनतै निज चाले ॥ ४८ ॥

लखि दौरत पियकरकटक बास छुड़ावन काज ।
बरुनीबन दृग गढ़नि मैं रही गुढ़ौ करि लाज ॥ ३० ॥

लाज लजाई तिया आँखि अपनी ही मूँदै । पुलकि पसीजति आनँद की टपकावति बूँदै ॥ नाहीं कबहूँ कहत होत चुपकी कबहूँ सखि । सुकवि प्रेम मैं बूड़ि रही निज पिय कौं लखि लखि ॥ ४६ ॥

दीप उजेरे हू पति हिं हरत बसन रतिकाज ।
रही लपटि छबि की छटनि नैको छुटी न लाज ॥ ३१ ॥

नैको छुटी न लाज मूँदि दृग जुग निज लीनो । रससमुद्र मैं बोरि हियो अन्तरहित कीनो ॥ रँगी स्यामरँग तिया स्यामही चहुँदिस हेरो । अन्धकार सो कियो रहत हू दीप उजेरो ॥ ५० ॥

---

* चाले की = गौने की ।

समरस *समरसकोचवस बिवस न ठिकु ठहराय।
फिरि फिरि उझकति फिरि दुरति दुरि दुरि उझकति जाय॥३२॥

दुरि दुरि उझकति जाइ झुमावति वेसर नीको। अलकावली हटाइ लखत फिरि वदन सखी को॥ आपु झरोखे झिपी परयो मन पिय के परवस। सुकवि लाज अरु काम तिया अँग व्यापे समरस॥ ५१॥

करे चाह सौं चुटकि कै खरे उड़ौं हैं मैन।
लाज नवाये तरफरत करत खूँद सी नैन॥३३॥

करत खूँद सी नैन दोऊ मनमथ के घोरे। लाजसईस न रोकि सकत ऐसे मुँह जोरे॥ पुलकवृन्द के फेन गिरावत भरि उमाह सौं। उछरन सकत न तऊ सुकवि वल करे चाह सौं॥ ५२॥

छुटै न लाज न लालचौ प्यौ लखि नैहरगेह।
सटपटात लोचन खरे भरे सकोचसनेह॥३४॥

भरे सकोचसनेह दोऊ लोचन रँगभीने। लगालगी जमि करत दुरे हू घूँघट झीने॥ करि हारी वहु जतन तऊ रससमय जुटै ना। समुझाये हु पै सुकवि लखहु तिय लगनि छुटै ना॥ ५३॥

पियबिछुरन को दुसह दुख हरष जात †प्यौसार।
‡दुर्योधन लौं देखियत तजत प्रान इहिँ वार॥३५॥

तजत प्रान इहिं वार दोऊ लोचन जलभीनी। ऊँचे लेत उसास कँपत तन नारि नवीनी॥ ÷ अकवक भूली सवै वचन कछु नाहिँ फुरन को। सुकवि हरष है तऊ दुसह दुख पियबिछुरन को॥ ५४॥

---

* समर = कार। † प्यौसार नैहर। ‡ दुर्योधन को शाप था कि हर्ष शोक साथ होके मरण होगा।
÷ अकवक भूलना, बोल चाल है। "अकी बकी भूल गई" प्रायः बोला जाता है।

पति रति की बतियाँ कही सखी लखी मुसकाय ।
कै कै सबै टलाटली अली चली सुखपाय ॥ ३६ ॥

अली चली सुखपाइ जुगलजोरी कौं निरखत । हरि राधा पै प्रान वारि अतिसय हिय हरषत ॥ धन्य धन्य सो कुंज राधिका जहाँ बिराजति । जैंहि मुखचन्दचकोर सुकवि सँग राजत ब्रजपति ॥ ५५ ॥

सकुचि सुरति आरंभ ही बिछुरी लाज लजाय ।
ढरकि ढार ढुरि ढिग भई ढीठ ढिठाई आय ॥ ३७ ॥

*ढीठ ढिठाई आय लगी चतुराई छाँटन । जुगल रसिक कौं लगी सुरत-रसरासी बाँटन ॥ अन्तरङ्ग हू सुकबि पहुँचि नहिँ सकत तहाँ तकु । और कविन की बात कहा जो ताहि बरन सकु ॥ ५६ ॥

पुनः ।

आय सकै किहुँ भाति लाज हू जिहिँ थल नाहीँ । और कौन पुनि जाइ सकत तिहिँ कुञ्जन माहीँ ॥ को कवि निलज कहाइ बरनि तिहिँ बनवै बतिआ । सुकबि मदन हू जानत नहिँ वह सकुचि सुरतिआ ॥ ५७ ॥

पुनः ।

ढीठ ढिठाई आय गई उन कवि की रसना । जो बरनत सोउ रहस रहत कछु अपने वस ना ॥ हठ करि जतनन सुकवि लाज बाँधी जउ बकुची । बरनि सकत नहिँ तऊ पात† मसि लेखनि सकुची ॥ ५८ ॥

सब अँग करि राखी सुघर नायक नेह सिखाय ।
रसजुत लेति अनन्त गति पुतरी पातुरराय ॥ ३८ ॥

पुतरी पातुरराय रँगी स्यामहिँ रँग दोऊ । तिमि कपोतधुनि कढ़त तासु सँग बाजन सोऊ ॥ कबरी बरसत फूल मनहु लखि हाव भाव नव । या बिधि हरि के प्रेम सुकवि छवि छाइ रही सब ॥ ५९ ॥

* श्रीराधाकृष्ण का इतना गहरा संयोग अवर्णनीय समझ तीनों कुण्डलिया बनाई गई हैं । † पत्ता ।

पुनः।

पुतरी पातुरराय नचत ठठकत ठमकत पुनि। झूमि वाहवा करत मनहु जुग भौंह परन गुनि॥ दरस इनाम हि देहु लाल रिझवार पागि रँग। सुकवि तुमहिँ विनु वृथा भाव सोँ पूरे सब अँग॥ ६०॥

विहँसि बुलाय विलोकि उत प्रौढ़ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को पियचूम्यो मुँह चूमि॥ ३९॥

पियचूम्यो मुँह चूमि होत रोमांचन सगवग। आलिङ्गत मद माति पीय-अङ्गनि मेले अँग॥ चकपकात सुत देखि विचारति निजहिय रहसी। सुकविहिँ चितै लजाइ मन हिँ मन प्यारी विहँसी॥ ६१॥

---

*सोवत लखि मन मान धरि ढिग सोयो प्यौ आय।
रही सुपन की मिलन मिलि पियहिय सोँ लपटाय॥४०॥

पियहिय सोँ लपटाय रही गयो मान अचानक। वारि गई लखि मुरलीधर को नटवर बानक॥ कौन मूढ़ तिय अहै लही निधि कोँ जो खोवत। धन्य धन्य सो सुकवि मिलैँ हरि जाकोँ सोवत॥ ६२॥

पुन।

पियहिय सोँ लपटाइ रही जनु रसनिधि पाई। नैन मूँदि तेहिँ ध्यान करत सब रैन विताई॥ धिक तिन दिवसन सुकवि गये जो हरिविन रोवत। धन्य धन्य वह रैनि मिले पिय जामैँ सोवत॥ ६३॥

त्रिवली नाभि दिखाइ कै सिर ढकि सकुचि समाहि।
गली अली की ओट ह्वै चली भली विधि चाहि॥४१॥

चली भली विधि चाहि तऊ मन हरि सोँ अटको। फिरि फिरि सोभा

---

* यह दोहा [illegible] की टीका में नहीं है।

लखत लाज को तोरयो फटको ॥ सुकबि मोहि गई तिया सुनत ही वाकी मुरली । विवस ढाँपि नहिँ सकत नाभि रोमावलि त्रिबली ॥ ६४ ॥

देखत कछु कौतुक इतै देखौ नेक निहारि ।
कबकी इकटक डटि रही टटिया अँगुरिन फारि ॥ ४२ ॥

टटिया अँगुरिन फारि रही नहिँ परत पलक पल । साधत मनहुँ निसान हनत जुवजनचित चञ्चल ॥ दामिनि सी थिर भई एक घनस्याम हिँ पेखत। सुकवि बिलोकहु कब की इकटक प्यारी देखत ॥ ६५ ॥

भौँहनि त्रासति मुख नटति आँखनि सौँ लपटाति ।
ऐँच छुरावति कर इँची आगैँ आवति जाति ॥ ४३ ॥

आगैँ आवति जाति रुकति कछु झटकति सारी। बोलत धीमे बोल तरजनी तरजत न्यारी॥ नाक सिकोरति अधर नि दाबति ठानत सौँहनि। भाँति भाँति के भाव सुकवि सतरावति भौँहनि ॥ ६६ ॥

देख्यो अनदेख्यो कियो अँग अँग सबै दिखाय ।
पैठति सी तन मैँ सकुचि बैठी चितै लजाय ॥ ४४ ॥

बैठी चितै लजाय नारि नटखट नखरीली। घूँघट हू की ओट तकत पुनि छिपत छबीली ॥ बिकि गई हरि के हाथ नाहिँ कछु बाकी लेख्यो । दिखरावत तऊ लाज सुकवि प्यारी यह देख्यो ॥ ६७ ॥

कारे बरन डरावनौ कत आवत इहिँ गेह ।
* कै वा लख्यो सखी लखैँ लगै थरहरी देह ॥ ४५ ॥

लगत थरहरी देह सुरति चित भूतलि नाहीँ । रोम खरे सब होत नैन

* कै वा = कै वार । जैसे दो० २२९ "मैँ तोसौँ कै वा कह्यो" ।

दोऊ झँपि जाहीँ ॥ सुकवि बुलावत कौन याहि है मेरे द्वारे। मेरो जिय दर-रात देखि याके कच कारे ॥ ६८ ॥

देवर फूल हने जु सिसु उठे हरषि अँग फूलि।
हँसी करत औषधि सखी देह ददोरनि भूलि ॥ ४६ ॥

देह ददोरन भूलि सखी अतिसै बिलखाई। कछुक कम्प तन देखि और हू हीय सकाई ॥ तिय को मन बँधि गयो प्रेम के याके जेवर। सुकवि न जानत कोऊ अहै इहिँ कारन देवर ॥ ६९ ॥

इहिँ काँटे मो पाय लगि लीनी मरति जिवाय।
प्रीति जनावति भीति सोँ मीत जु काढ्यो आय ॥ ४७ ॥

मीत जु काढ्यो आय पाय गहि निजकरकञ्जन। धीमी चुटकी लाय मधुर वचनन करि रञ्जन ॥ छन छन मिलवत नैन बिहँसि झुकि पुनि ऐँचत तिहिँ। सुकवि स्यामसुख दियो सखी धनि धनि काँटे इहिँ ॥ ७० ॥

पुनः।

आय गये हरि आप छाँड़ि कै धाम काम सब। मो दुख सोँ भये दुखी सखी सो कहा कहूँ अब ॥ मैँ तो चकपक होइ निज हिँ भूली देखत तिहिँ। सुकवि न जान्यो कबै स्याम काढ्यो काँटे इहिँ ॥ ७१ ॥

पुनः।

आय गये हरि बिसरि सबै मम कलहिन बातैँ। पीताम्बर सोँ सेद पोँछि दीने पुनि गातैँ ॥ अब नहिँ परिहौँ कबहुँ भूलि हू सखियन आँटे। लैहौँ नित्त गड़ाइ सुकवि निज पग इहिँ काँटे ॥ ७२ ॥

पुनः।

आय आय रे कण्टक तोहि सोना मढ़वैहौँ। हीरन की लर गाँथि जुही के अतर सिँचैहौँ ॥ सहज मिलन जिहिँ पर्यो नाहिँ मुनि हूँ के बाँटे। सोई मिलये स्याम सुकवि धनि धनि इहि काँटे ॥ ७३ ॥

पुनः।

आय गये हरि आपु सौति संकेत हु त्याग्यो। मेरी झझकन बानि बिसरि के हिय अनुराग्यो॥ सोई मिलयो जासु हेतु रोवत दिन काटे। कोटि सखि-न कोँ सुकवि वारि फैंकहु इहिँ काँटे॥ ७४॥

पुनः।

आय गये हरि आपु बिसारि निज तन मन धन लखि। कहुँ मुरली कहुँ माल कहूँ पटपीत परयो सखि॥ इतो न श्रम हरि कियो परे गज हू के आँटे। घबरायो घनस्याम सुकबि काढ़त इहिँ काँटे॥ ७५॥

घाम घरीक * निवारिये कलितललितअलिपुंज।
जमुनातीर तमालतरुमिलतमालतीकुंज॥ ४८॥

मिलत मालतीकुंज निकट बंसीवट केरे। जहँ घन पातन ओट किरन आवत नहिँ नेरे॥ सोवत जहाँ मयूर संक तजि लहि सुख नीको। सुकबि स्याम चलि तहाँ निवारिय घाम घरीको॥ ७६॥

हरषि न बोली लखि ललन निरखि अमिल सँग साथ।
आँखन हीँ मैं हँसि धरयो सीस हिये पर हाथ॥ ४९॥

सीस हिये पर हाथ धारि मूँदे दृग दोनौँ। पुनि उसास लै हरि हिँ निरखि

---

* घरीक = घरी एक। व्रजभाषा में एक शब्द उत्तर पद रख के समास होता है तब एक के एका[र] का लोप हो जाता है जैसे दो॰ ५४ "छनक छबीली छाँह" दो॰ ७१ "घौसक तें पिय चित चढ़ी" दो॰ ७७ "काम न आवत एकहू मेरे सौक सयान" इत्यादि। दो॰ ९९ "तुहू कहति हौं आप[ु] समुझति सौक सयान" दो॰ २४४ "छनक चलति" कोई कोई ऐसा भी समझे बैठे हैं कि 'एक' के साथ समास होने में पूर्व पद के अंत्य स्वर का लोप हो जाता है और 'एक' का 'ए' पूर्व व्यञ्जन [में] ह्रस्वोच्चारणक हो के मिल जाता है पर वे 'छनक' को 'छनेक' बनालें परन्तु 'घरीक' 'सौक' में क्या करेंगे।

कीनो जनु टोनों ॥ समुँह कै आरसी लगाई हिय अनमोली । सुकवि कुंज दिसि देखि तिया जिय हरषि न बोली ॥ ७७ ॥

न्हाइ पहिरि पट उठि कियौ बँदीमिस परनाम ।
दृग चलाय घर कौं चली बिदा किये घनस्याम ॥ ५० ॥

बिदा किये घनस्याम तऊ आगैं परत न पग। ललित कलिन्दीधार लखन-मिस फिरि चितई मग ॥ गिरि गयो वेसर कहूँ कहति आई जमुनातट । सुकवि घुसी पुनि नीर गुजरिया न्हाइ पहिरि पट ॥ ७८ ॥

चितवत जितवत हित हिये किये तिरीछे नैन ।
भीजे तन दोऊ कँपैं क्यौं हूँ जप निवरैं न॥५१॥

क्यौं हूँ जप निवरैं न दोउन मन दोउ हरि लीन्हो। आपुस मैं जनु दोऊ दुहुँन जादू सो कीन्हो ॥ तनसुधि दोऊ विसरि गये हिय सौं हिय मिलवत। सुकवि पिया अरु पीय आजु इकटक व्है चितवत ॥ ७९ ॥

मुहँ धोवति एड़ी घसति हँसति अनँगवति तीर ।
धसति न इन्दीवरनयनि कालिन्दी के नीर ॥ ५२ ॥

कालिन्दी के नीर धसति नहिं देह अँगोछति। आँचर बोरि निचोरि पसारि कपोलन पोंछति ॥ बार बगारति झारति मलि मलि नैनन जोवति। सुकवि स्यामरँगरँगी तिया मुरि पुनि मुहँ धोवति ॥ ८० ॥

पुनः।

कालिन्दी के नीर धसति क्यों नाहिं बावरी। घरी चार दिन चढ्यो देखु भई किती तावरी * ॥ कहा भयो क्यौं ठठकि रही है कित कौं जोवति। धोइ चुकी है तऊ सुकवि पुनि क्यौं मुँह धोवति ॥ ८१ ॥

---

* तावरी = घाम।

नहिँ अन्हाय नहिँ जाय घर चित चिहुँट्यो तकि तीर ।
परसि फुरहरी लै फिरति बिहँसति धसति न नीर ॥५३॥

बिहँसति धसति न नीर नन्दसुत को मुख हेरति । लेइ बलैया बहुरि बहुरि उत ही दृग फेरति । हरिकर बिकि सी गई प्रेमबस भई छनक महिँ । यासों गूजरि सुकबि जाय घर नहिँ अन्हाय नहिँ ॥ ८२ ॥

चितई ललचौँहैँ चखनि डटि घूँघट पट माहिँ ।
छल सोँ चली छुवाय कै *छनक छबीली छाँह ॥ ५४ ॥

छनक छबीली छाँह छुवत मटकत नखरीली । बसन झपट्टा देत झमकि झमकत गरबीली ॥ केसकुसुम बरसाइ फिरी पुनि रुकि कै सौँहैँ । सुकबिहिँ लखि बिकि गई नारि चितई ललचौँहैँ ॥ ८३ ॥

---

† लाज गहौ बेकाज कत घेरि रहे घर जाहि ।
‡ गोरस चाहत फिरत हौ गोरस चाहत नाँहिँ ॥ ५५ ॥

गोरस चाहत नाहिँ याहि सौँ हँसत छन हिँ छन । लखत तिरीछे नैन फेरि मुख होत मुदितमन ॥ सूधी है ब्रजगैल जाहु देखहु निज काजा । नाहिँ करत तुम हाय स्याम सुकवि हु की लाजा + ॥ ८४ ॥

सब ही तैं समुहाति छन चलति सबनि दै पीठ ।
वा ही तन ठहराति यह *किबलनुमा लौँ दीठ ॥ ५६ ॥

किबलनुमा लौँ दीठ फिरत ताहीं दिसि धावत । हटत हटाये नीठ तऊ

---

* छनक = छन एक (दो० ४८ की टिप्पणी में इस प्रयोग का विशेष वर्णन है) । † यह दोहा अनवर चन्द्रिका में नहीं है । ‡ गोरस = इन्द्रियाराम और दूध । + स्वर वृद्धि से कुण्डलना है ।

* किब्लनुमा = उत्तरवाली सूई = कम्पास

ताही पै आवत ॥ अहै लाल के मुकुट माँहि अटकी कव ही तैं। सुकवि ल-
खहु समुहाति छनक हित यह सब ही तैं ॥ ८५ ॥

खरी भीर हू भेदि कै कित हू ह्वै इत आय।
फिरै दीठ जुरि दीठ सौं सब की दीठ बचाय ॥ ५७ ॥

सव की दीठ वचाय फिरै नट की नटनी सी। हटकत मटकत जुरत फि-
रत नहिँ कोउ न दीसी ॥ लेत चित्र सी खैंचि सुकबि हनि मदन तीर हू।
करत इसारन बात सबै छिपि खरी भीर हू ॥ ८६ ॥

पुनः।

सव की दीठ बचाय चलत जोगिन जिय जानौं। अञ्जन अजब लगाय
भई अन्तरहित मानौं ॥ पहिरे सेली पलक बरुनि लट चहुँ दिस बिखरी।
सुकवि चलत ज्यौं कायव्यूह करि सखी निरख री ॥ ८७ ॥

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लगि जात।
भरे भौन मैं करत हैं नैननि हीं सब बात ॥ ५८ ॥

नैनन हीं सव वात करत सङ्केत बतावत। हँसत हँसावत तिरछैं तकि तकि
पुनि सरमावत ॥ सुकवि हु नहिँ लखि सकत दोउन की बात पटत री। प्र-
गट न बोलत कछू नैन हीं कहत नटत री ॥ ८८ ॥

---

*दीठि वरत† बाँधी अटनि चढ़ि आवत न डरात।
इत उत तैं चित दुहुँनि के नट लौं आवत जात ॥ ५९ ॥

नट लौं आवत जात प्रेम को बोझ लियैं सिर। लाज सींग पग बाँधि
रहे ताहू पै नहिँ थिर ॥ मदनताल पै चाह राग गावत अतिमीठी। चतुराइ
भरि चलत सुकवि कीजै इत दीठी ॥ ८९ ॥

---

* यह दोहा चन्द्रचन्द्रिका में नहीं है ॥ † वरत = डोरी ॥

कंजनयनि मंजन किये बैठी ब्यौरति बार ।
कचअँगुरिनबिच दीठि दै चितवति नंदकुमार ॥ ६० ॥

चितवति नंदकुमार तिया तन मन धन वारति । पुतरी सी व्है गई करै एकटकी निहारति ॥ डारि लाज पै गाज करति अपनो मनरंजन । सुकवि बावरी भई गहे कच निजकरकञ्जन ॥ ६० ॥

पुनः ।

नन्दकुमार विलोकन के मिस तिय गरबीली । भौंहधनुष सौं बान कटाच्छन हनत हठीली ॥ कच की टाटी ओट करत ब्याधन मदभंजन । सुकबि चित्तमृग वेधि लियो गहि निज करकञ्जन ॥ ६१ ॥

जुरे दुहुँनि के दृग झमकि रुकै न झीने चीर ।
हलकी फौज हरौल ज्यौं परति गोल पर भीर ॥ ६१ ॥

परति गोल पर भीर मदन को पाइ इसारो । बान कटारी बरछी को जनु साज सँवारो ॥ ललकि पैंतँरा खेलि रहे पूरे हैं गुन के । पीछे परत न कोऊ सुकवि दृग जुरे दुहुँन के ॥ ६२ ॥

पहुँचत डटि रन सुभट लौं रोकि सकै सब नाँहिं ।
लाखन हूँ की भीर मैं आँखि वहीं चलि जाँहिं ॥ ६२ ॥

आँखि वहीं चलि जाहिं जहाँ वेधिवो निसानो । भौंह धनुष पै बान कटाच्छन करि सन्धानो । लपकि झपकि कै हनत छनक महँ करत छुभित मन । सुकवि कौन वचि सकै आँखि जब पहुँचति डटि रन ॥ ६३ ॥

पुनः ।

आँखि वहीं चलि जाँहिं भौंह भीषन धनु लीनैं । अञ्जन खड्ग कटाच्छ व्यौंत वानन को कीनैं ॥ चक्र कनीनिक बरुनि सूल धारे न रहत हटि । सुकवि सम्हारहु विष वगरावत दृग पहुँचत डटि ॥ ६४ ॥

ऐंचति सी चितवन चितै भई ओट सरसाय।
फिर उझकन कौं मृगनयनि दृगनि लगनियाँ लाय ॥६३॥

दृगनि लगनियाँ लाय रही जादू सो कीने। मदनमन्त्र सो जपत ओट घूँघट की दीने॥ नखरीली नई नारि हाव अरु भाव भरी अति। सुकवि हिँ लखि उठि चली प्रान अपने सँग ऐँचति॥ ९५॥

दूरौ खरे समीप को मानि लेत मन मोद।
होत दुहुन के दृगन हीँ बतरस हँसी विनोद॥ ६४॥

बतरस हँसी विनोद और रूसनि समुझावनि। बिनय विविध विधि प्रेमभरी अरु दोष छमावनि॥ खिझनि खिझावनि हिलनि मिलनि पावनि सुख पूरौ। सब ही होत विनोद सुकवि दोउन के दूरौ॥ ९६॥

जदपि चवायनि चीकनी चलति चहूँ दिसि सैन।
तदपि न छाड़त दुहुनि के हँसी रसीले नैन॥ ६५॥

हँसी रसीले नैंन न छाँड़त नेहअन्हाये। तिरछी तकनि न तजत जऊ हैँ कछु सरमाये॥ सुकवि ललित अतिलोल लरजि लगि रहे लुनाइन। घेरि घेरि घर घेर करत हैँ जदपि चवाइन॥ ९७॥

सटपटाति सी ससिमुखी मुख घूँघटपट ढाँकि।
पावकझर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि॥ ६६॥

गई झरोखा झाँकि झुलनियाँ झूँमि झुमावति। झूँमक दोउ झमकाइ हरति हिय मृदु मुसकावति॥ रूपभिखारिन भीख देत तिय चटपटात सी। लटपटात सी गई सुकवि वह सटपटात सी॥ ९८॥

कव की ध्यान लगी लखौं यह घर लगि है काहि ।
डरियत भृङ्गी कीट लौं जिन वह ई व्है जाहि ॥ ६७ ॥

जिन वह ई व्है जाहि कीट भृङ्गी लौं नागरि। कठपुतरी लौं ठठाकि गई है रूप उजागरि ॥ सुकवि अहै यह प्रान हु तैं प्यारी हम सवकी । जाइ वेगि समझाउ अली मैं विनवत कव की ॥ ९९ ॥

---

* रही अचल सी व्है मनौं लिखी चित्र की आहि ।
तजे लाज डर लोक को कहो बिलोकति काहि ॥ ६८ ॥

कहो विलोकति काहि विसरि कै सुधि अँचरा की । अलकावली झुमाइ भृकुटि हू कीन्हे वाँकी ॥ कछु तिरछी कछु झुकी हँसति कछु कछुक बिकल सी । धन्य सुकवि जिहिँ लखत तिया व्है रही अचल सी ॥ १०० ॥

पल न चलैं जकि सी रही थकि सी रही उसास ।
अव हीं तन रितयौ कहा मन पठयो किहिँ पास ॥६९॥

मन पठयो किहिँ पास अव हिँ नवजोवनमाँती । सूधे परत न पाँव उनमनी सी दरसाती ॥ वहकि चलत सी कछुक रुकत पुनि कै दृग चंचल । सुकवि हिँ लखि लखि मोरि मोरि मुख हँसत पल हिँ पल ॥ १०१ ॥

पुनः ।

मन पठयो किहिँ पास कपोलन परिगई पीरी । सुधि न कछू तोहि देखु गिरि गई कर की वीरी ॥ पुलकि पसीजति रैन दिना नहिँ परत नेक कल । सुकवि तोहि भयो कहा थकित सी होत पल हिँ पल ॥ १०२ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका और कृष्णदत्तकविकृत टीका में नहीँ है ।

*नाम सुनत ही व्है गयो तन औरै मन और।
दबै नहीं चित चढ़ि रह्यौ अबै चढ़ायें त्यौर ॥ ७० ॥

अबै चढ़ायें त्यौर नाहिं दबि है यह आली। छिपी बात हू प्रगट करत तुअ नैन कुचाली ॥ बचन भयो सुर और फिरी दृग दृग फेरत ही। छिपवत क्यों मुख हहा सुकवि के नाम सुनत ही ॥ १०३ ॥

पूछे क्यों रूखी परति सगबग रही सनेह।
मनमोहनछवि पर कटी कहै कँट्यानी † देह ॥ ७१ ॥

कहै कँट्यानी देह तऊ दुरवत क्यों आली। हँसत सखिन लखि क्यों छटकावत नैनन लाली ॥ लगन लगी तो दोस कहा भई क्यों मन छूछे। सुकवि छमा करु क्यों अनखावत हँसि हू पूछे ॥ १०४ ॥

प्रेम अडोल डुलै नहीं मुख बोलै अनखाय।
चित उन की मूरति बसी चितवन माँहि लखाय ॥७२॥

चितवन माँहि लखाय नाहिं यह छिपत छिपाये। होत कहा है ग्वारि बहुरि बातन बौराये ॥ आँखिन डारति धूरि कहा करि बाँके बोला। सुकविहिं प्रगट लखात भटू तुअ प्रेम अडोला ॥ १०५ ॥

ऊँचे चितै सराहियत गिरह कबूतर लेत।
दृग झलकित ‡ मुलकित बदन तन पुलकित किहिं हेत ॥७३॥

तन पुलकित किहिं हेतु कपोलन परिगई पीरी। रोम सेद सगबगे चाल हू भई अधीरी ॥ सुकवि बोल लटपटे कम्प भयो अङ्ग समूचे। ग्रीवा नीची भई करत ही नैनन ऊँचे ॥ १०६ ॥

---

*यह दोहा अमरचन्द्रिकामें नहीं है। †कँट्यानी = कण्टकित। ‡मुलकित = हास्यपूर्वकभावविकारविशिष्ट।

यह मैँ तो ही मैँ लखी भगति अपूरब बाल।
लहि प्रसादमाला जु भौ * तन कदम्ब की माल ॥ ७४ ॥

तन कदम्ब की माल भयो कैसे आली री। केसर देत लिलार देहदुति व्है गई पीरी ॥ लेत चरनजल बूँद छाइ गई अङ्ग अङ्ग महँ। सुकबि भगति नहिँ सुनी कहूँ जैसी तो मैं यह ॥ १०७ ॥

कोरि जतन कीजै तऊ नागरि नेह दुरै न।
कहे देत चित चीकनौ नई रुखाई नैन ॥ ७५ ॥

नई रुखाई नैन चित्तचिकनई जनावति। दृगचञ्चलता हीय प्रेमथिरता प्रगटावति ॥ मन साँवरो लखात लखैँ दुति गोरे तन की। सुकबि न चलि है कछू अली तुअ कोरि जतन की ॥ १०८ ॥

और सबै हरषी फिरैँ गावति भरी उछाह।
तु ही बहू † बिलखी फिरै क्यौँ देवर के व्याह ॥ ७६ ॥

क्यौँ देवर के व्याह बहू तू लेत उसासा। छिपि छिपि आँसू पोँछि सिसकि नहिँ लखति तमासा ॥ बैठति सूने भवन बात कछु परत न परखी। तू ही एक उदास सुकवि और सबै हरखी ॥ १०९ ॥

---

‡ नैन लगे तिहिँ लगनि सौँ छुटैँ न छूटे प्रान।
काम न आवत एक हू मेरे सौक + सयान ॥ ७७ ॥

सौक सयानन तू नाहक ही परी गूजरी। मिलत क्यौँ न दै ढोल देखु पिक रहे कूज री ॥ करत अहै क्यौँ कान चवाइन के छलबैना। दौरि सुकवि गर लागि लगे जासौँ तुअ नैना ॥ ११० ॥

---

* अर्थात् रोमाञ्चित। † बिलखी उदास। ‡ यह दोहा कृष्णदत्तकवि के ग्रन्थ में नहीँ है। + सौक = सैकडोँ।

तू मत माने मुकतई किये कपटवत* कोटि।
जौ गुनहीँ तौ राखिये आँखिन माँहि अँगोटि ॥ ७८ ॥

आँखिन माँहि अँगोटि राखु री पिय की दुलरी। हार मानि मत वैठि सखिन विच तौ कछु † खुल री ॥ हिय राखति क्यौँ गाँठि बात तो हम सब जानै। सुकवि कपट करि कोटि मुकतई तू मति मानै ॥ १११ ॥

---

‡ धनि यह द्वैज जहाँ लख्यो तज्यो दृगनि दुखदन्द।
तुव भागनि पूरब उयौ अहो अपूरब चन्द ॥ ७९ ॥

अहो अपूरब चन्द उयो यह रहित कलङ्का। पूरन मण्डल तऊ राहु की नहिँ कछु सङ्का ॥ बिम्बउरगमृगवालजुगल निजगोद लिये अह। सुकवि याहि जो लखै तासु जीवन धनि धनि यह ॥ ११२ ॥

एरी यह तेरी दई क्यौँ हूँ प्रकृति न जाय।
नेहभरे हिय राखिये तू रूखियै लखाय ॥ ८० ॥

तू रूखियै लखाय कौन की नजर लगी तोहि। रहत उनमनी सदा यासु संका अति ही मोहि ॥ निज पर की सुधि नाहिँ वदन पियराई घेरी। कैसैँ मिटिहै सुकवि हाय चिन्ता यह एरी ॥ ११३ ॥

पुनः।

तू रूखियै लखाय सखिन के नेह सिँचानी। सदा × रागरँगरँगी तऊ पीरी दरसानी ॥ किती करत थिर तऊ देह काँपत अलि तेरी○। सुकवि बूझि हू बूझत नहिँ का व्है गयो एरी ॥ ११४ ॥

---

* कपट की बात = कापटवत, (षष्ठीतत्पुरुष) † खुल अपना अभिप्राय प्रगट कर।

‡ यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है। × राग = गानभेद अथवा ललाई।

○ देह को कौम्पिक विहारी जी ने भी लिखा है " दीपसिखासी देह " ॥

*औरै गति औरै बचन भयो बदनरँग और।
† द्यौसक तैं पियचितचढ़ी कहै चढ़ौहैं त्यौर ॥ ८१ ॥

त्यौर भये कछु और कपोलन हँसी बिराजति। तकि तिरछौंहीं तकनि मदनसर से जनु साजति ॥ घूँघट ऐंचत अली हहा क्यौं हियरो ऐंचति। छन छन औरै भई सुकबि औरै औरै गति ॥ ११५ ॥

रही फेरि मुहँ हेरि इत हित समुहैं चित नारि।
दीठ परत उठि पीठ की पुलकैं कहत पुकारि ॥ ८२ ॥

पुलकैं कहत पुकारि सबै तुव हिय की बातैं। तू कत बदन छिपाइ जात पैठी निज गातैं ॥ क्यौं न लगत हरिहीय करत लखु कोकिल कुहकुह। सुकवि न यह छिपि सकै कहा तू रही फेरि मुहँ ॥ ११६ ॥

वै ठाढ़े उमदात उत जल न बुझै बड़वागि।
जाही सौं लाग्यो हियो ताही के उर लागि ॥ ८३ ॥

ताही के उर लागि जाहि के रँग तू बोरी। लगे कलङ्क हु अङ्क लगत नहिँ कैसी भोरी ॥ होत कहा दुरबचन चवाइन जो मुखकाढ़े। बार बार नहिँ मिलत सुकबि द्वारे वै ठाढ़े ॥ ११७ ॥

पुनः।

लागि हिये परवाह न करि तू कछु कलङ्क की। भीति कहा है घरहाइन के वचन वङ्क की ॥ प्रीति करी सो करी परी का संसय गाढ़े। सुकबि प्रेम भरि दौरि देखु कुंजन वै ठाढ़े ॥ ११८ ॥

पुनः।

ताही के उर लागि कसति का भुज सौं मोही। चूमति बिँहसि कपोल अली का ह्वै गयो तोही ॥ अलकावली सम्हारि चलति है गलबाँहीं कै। सुकवि हु पै दृग डारि देखु उमदाइ रहे वै ॥ ११९ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रकाश टीका और अनवरचन्द्रिका में नहीं है। † दोहा ४८ की टिप्पणी।

लाजगरबआरसउमँगभरे नैन मुसुकात।
रातिरमी रति देति कहि, औरै प्रभा प्रभात ॥ ८४ ॥

औरै प्रभा प्रभात भई री तेरे तन की। बेनी बिथुरे बार कपोलन दुति सुबरन की ॥ छन छन मैं अँगिराति हँसाति झिपि झिपि बेकाजा। जानि गये तो कहा सुकवि सों कैसी लाजा ॥ १२० ॥

पुनः।

औरै प्रभा प्रभात भई बस बोलु न आली। दृग अञ्जन कछु पुँछ्यो और आई कछु लाली ॥ सरम कहा है पट सों कहा छिपावति गाला। मोती सुकवि सम्हारु देखु उर टूटी माला ॥ १२१ ॥

---

* नट न सीस साबित भई लुटी सुखन की मोट।
चुप करि ये † चारी करत सारी परी सरोट ॥ ८५ ॥

सारी परी सरोट कहूँ कहुँ दाग पीक को। काजर हू की चीन्ह इँगुर पुनि माँग लीक को ॥ छाप महावर लगी गयो कुच केसर हू सट। सुकवि भई सो भई बावरी कहा रही नट ॥ १२२ ॥

मो सों मिलवति चातुरी ‡ तू नहिँ भानति भेव।
कहे देत यह प्रगट ही प्रगट्यो पूस पसेव ॥ ८६ ॥

प्रगट्यो पूस पसेव कहूँ का देख्यो कोऊ। बातन ही बहराय रही अवलोकत सोऊ ॥ देत सफाई कहा अरी पूछत को तो सों। मैं गुनआगरि सुकवि कपट चलिहै नाहिँ मो सों ॥ १२३ ॥

---

* नट न = नाहीं मत कर।

† चारी = चुगली।

‡ 'तू नहिँ भानति भेव' = तू भेद नहीं बताती ॥

सही रँगीले रतिजगे जगी पगी सुख चैन ।
अलसौंहँ सौंहँ किये कहैं हँसौंहँ नैन ॥ ८७ ॥

कहैं हँसौंहँ नैन कोटि हू भाँति छिपावहु । ये नहिं तुमरे होत हाथ मलि मलि पछितावहु ॥ करे निचौंहँ तऊ अहैं ये दोऊ रसीले । आजु रमे तुअ सङ्ग सुकवि हैं सही रँगीले ॥ १२४ ॥

औरै ओप * कनीनिकन गनी घनी सिरताज ।
मनी धनी के नेह की बनी छनी पटलाज ॥ ८८ ॥

बनी छनी पटलाज लसत है जुगल कपोलन । नैन नाँहि समुहात झिपे ही करत कलोलन ॥ तेरी सौंह बताउ रही तू काके जोरै । औरै दृग भये सुकवि वचन औरै छबि औरै ॥ १२५ ॥

यह बसन्त न † खरी गरम अरी न सीतल बात ।
कहि क्यौं प्रगटे देखियत पुलकि पसीजे गात ॥ ८९ ॥

पुलकि पसीजे गात आज क्यौं लखियत प्यारी । सुनत न कोऊ और इकन्त हिं भेद बतारी ॥ क्यौं बेसुधि ह्वै हँसति कियो जादू तो पै किहिं । पीरे परे कपोल सुकवि कैसे बसन्त इहिं ॥ १२६ ॥

मेरे बूझे बात तू कत बहरावति बाल ।
जग जानी बिपरीत रति लखि बिंदुरी पियभाल ॥ ९० ॥

भाल रुचिर सिन्दूर और बिंदुरी सुभ सोहति । लागत देखत हँसी माल

---

* कनीनिका = आंख का तारा ॥ तात्पर्य 'औरै ओप कनीनिकन' तेरी आंख के तारों में और ही छवि है, 'गनी घनी सिरताज' तुझको मैं बहुतों की सिरताज समझती हूँ, 'मनी धनी के नेह की बनी' प्रिय के प्रेम की बनी मणि, 'छनी पटलाज' लाज के कपड़े से छन रही है ॥ अर्थात् लाज करने से छिपती नहीं ॥ † खरी = अत्यन्त ।

विनगुन मन मोहति ॥ भये अरुनरगँ नैन अधिक आलस सौं घेरे । सुकवि स्यामछवि लखी कहत का कानन मेरे ॥ १२७ ॥

पुनः ।

लखि विँदुरी पियभाल भाल तुअ खौरि निहारी । लखि तुअ जूरा उनकी वेनी गुही सुढारी ॥ तुअ लिलार उनके पग दाग महाउर सूझै । सुकवि तऊ अनखाइ रही तू मेरे बूझे ॥ १२८ ॥

सुरति दुराई दुरति नहिँ प्रगट करति रतिरूप ।
छुटे पीक औरै उठी लाली ओठ अनूप ॥ ९१ ॥

लाली ओठ अनूप आजु लौँ हम नाहिँ देखी । वीच वीच छत करत चुनी ज्यौँ चमक विसेखी ॥ होन हुती सो भई वात क्यौँ करत वनाई । सुकवि सहेलिन निकट दुरति नहिँ सुरति दुराई ॥ १२९ ॥

रँगी सुरतरँग पियहिये लगी जगी सव राति ।
पैँड़ पैँड़ पै ठठकि कै ऐँड़भरी ऐँड़ाति ॥ ९२ ॥

ऐँड़भरी ऐँड़ाति अलसभरि लेत जँभाई । नैनन मलि समुहाइ नेकु मुख लेत छिपाई ॥ अँचरा ओठन पोँछि सँवारति केस सिथिल अँग । सुकवि आरसी देखि रही तिय रँगी सुरतिरँग ॥ १३० ॥

---

* तरवनकनक कपोलदुति वीच हिँ वीच विकान ।
लाल लाल चमकत चुनी चौकाचीन्हसमान ॥ ९३ ॥

चौकाचीन्हसमान चुनी की चमक सुहाई । चूना ज्यौँ आभा मुलाक की

---

* तरकी का सोना गाल की छटा के बीच ही बीच मिल गया । लाल लाल चुन्नी चमकती है जैसे दन्तक्षत ॥

अधरन छाई॥ *चम्पकलीमनिचमक नखच्छत सी है कुच पर। सुकबि कह्यो को कहा सरमि क्यों करत बदन तर † ॥१३१॥

---

‡ पट कै ढिग कत ढाँपियत सोभित सुभग सुबेख।
हद रदछदछबि देत यह सदरदछद की रेख॥ ९४॥

सदरदछद की रेख गरद दाड़िमदुति कीनी। कौन मरद सों मिली वेपरद नारि नवीनी॥ सरद भई क्यों जाति हरद से अङ्ग छुटी लट। सौंहैं सुकबि बिलोकु दीठि ऐंचत क्यों चटपट॥ १३२॥

कहि पठई मनभाँवती, पियआवन की बात।
फूली आँगन मैं फिरै, आँग न आँग समात॥ ९५॥

आँग न आँग समात डहडही डोलत प्यारी। छन छन रचत सिँगार जात छन द्वार निहारी॥ होत बिलम्ब बिचारि अधिक अकुलात हीय माहि। हहरि हहरि सी उठत सुकबि तिय पीय पीय कहि॥ १३३॥

+ फिर फिर बिलखी ह्वै लखति फिर फिर लेत उसास।
साईंसिरकचसेत लौं बीत्यो चुनत कपास॥ ९६॥

चुनत कपास हिं सींचि सींचि बूँदन आँसू की। बार बार ही थकी थकी करि अँगुरिन फूँकी॥ हरि मिलिबो हिय बस्यो उड़्यो जिय नैन नाहिँ थिर। वैठत चुपकी साधि सुकवि मग चितवत फिर फिर॥ १३४॥

---

* चम्पाकली=एक प्रकार का भूषण॥ † तर=नीचे अथवा स्वेद से भीँगा॥ ‡ हद=हद्द। रद छद छवि देत ओठ को शोभा देती है। सदरदछद की रेख=सद्यः दन्तक्षतकी रेखा॥

+ यह शृङ्गारसप्तशती में नहीं है।

सन सूक्यो बीत्यो* बनौ ऊखौ लई उखारि ।
हरी हरी अरहर अजौं धरु धरहर हिय नारि ॥९७॥

धरु धरहर हिय नारि † कहरि क्यों करत बावरी । सरसों सरस सुहात सरस हिय करंत ‡ चाव री ॥ देखि § पोसतनखेतन हू तन क्यों धुकधूक्यो ॥ कहा भयो जो सुकवि एक कोने सन सूक्यो ॥ १३५ ॥

¶ सतर भौंह रूखे वचन करति कठिन मन नीठि ।
कहा करौं ह्वै जाति हरि हेरि हसौंहीं दीठि ॥ ९८ ॥

हेरि हसौंहीं दीठि रहत मेरे बस नाहीं । अली मान यह परो भार अ- ङ्गारन माहीं ॥ करि जादू सो स्याम सबै सुधि बुद्धि बिनासत। सुकवि पुलकि तन उठत मोर को मुकट प्रकासत ॥ १३६ ॥

पुनः ।

दीठि दुरावत अधिक अधिक मैं तो अपनी घाँ‖ । तऊ खिंची सी जात चलत कछु नहिं मेरी व्हाँ ॥ करत तरेरी जिती नेह तेतो परकासत । कहा करूँ मैं हहा सुकवि लखि मो-दृग हाँसत ॥ १३७ ॥

तु हू कहति हौं आप हू समझति सौक सयान ।
लखि मोहन जौ मन रहै तौ मन राखौं मान ॥ ९९ ॥

मान न पावत रहन अली मोहन की छवि लखि । करी बंक हू भौंह सरल ही होइ जात सखि ॥ ता हू पै कलकण्ठ भाँति कूजत कुहू कुहू । सुकवि रूलिवे कहत अरी भोरी अहै तुहू ॥ १३८ ॥

---

* सन वा तुन = कपास । † कहर व्याकुलता ।
‡ चाव उत्साह । § पोस्तों का खेत । ¶ यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है ॥
‖ अपनी घाँ = अपनी ओर ।

* दहैँ निगोड़े नैन ये गहैँ न चेत अचेत।
हौँ कसि कै रिस कौँ करौँ ये निरखैँ हँसि देत ॥ १०० ॥

ये निरखैँ हँसि देत रोस की बात उड़ावत। झमकत ठमकत चटकि मटकि अति ही सरसावत ॥ लगत ललकि कै ललचि सुकबि पुनि मुड़त न मोड़े। कहा करौँ मैं हहा नैन ये दहैँ निगोड़े ॥ १३६ ॥

पुनः।

ये निरखैँ हँसि देत रोव कछु रहन न पावत। मेरी झझकनि सबै मान की नकल बनावत ॥ ऐंड़भरे मुँहजोर चपल ज्यौँ अड़ियल घोड़े। कहा करौँ मैं हहा नैन ये दहैँ निगोड़े ॥ १४० ॥

मोहि लजावत निलज ये हुलसि मिलैँ सब गात।
भानुउदय की ओस लौँ मान न जान्यो जात ॥ १०१ ॥

मान न जान्यो जात कहाँ धौँ जात समाई। मोरपखौआ लखत तजत दोउ नैन रुखाई ॥ तु हू बावरी भई भटू मो कौँ बहरावत। क्यौँ रूसन कहि सुकवि स्याम ढिग मोहि लजावत ॥ १४१ ॥

पुनः।

मान न जान्यो जात कमल से नैन खिलत दोउ। बिलग होत तमपुंजसरिस कछु कोह कियो जोउ ॥ चुपसाधन हू टुटत नींद सी रहन न पावत। सुकवि स्यामसँग रूसनि अति ही मोहि लजावत ॥ १४२ ॥

पुनः।

जात कठिनता उर की लखि उनके कोमल अँग। नैनअरुनता जात साँवरो लहि उनको रँग ॥ उन मधुराई देखि तजत कटुता हिय कोही। सुकबि नेह सौं सिँचैं रुखाई छाँड़त मो-ही ॥ १४३ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है ॥

खिंचे मान अपराध तैं चलिगे वढ़े अचैन ।
जुरत दीठि तजि रिस खिसी हँसे दुहुँन के नैन ॥ १०२ ॥

हँसे दुहुँन के नैन जुरत ही दीठि दीठि सौं । लगे ललकि ललचाय रुके रोके न नीटि सौं ॥ निज अरु पर कौं भूलि गये आँनदजल सींचे । सुकवि स्याम सौं लगे नैन अब खिंचत न खींचे ॥ १४४ ॥

---

* राति दिवस हौंसै रहै मान न ठिक ठहराय ।
जेतौ अवगुन ढूँढ़िये गुनै हाथ परिजाय ॥ १०३ ॥

गुनै हाथ परिजाय दोष ढूँढ़त हु स्याम के । औगुन हू गुन होत गुनी गनरासिधाम के ॥ चिनगुन माल हु लखैं दिनै दिन † सगुन लखाती । सुकवि सगुनहरिरूपमगन रहती दिन राती ॥ १४५ ॥

---

‡ जौ लौं लखौं न कुलकथा तौ लौं ठिक ठहराय ।
देखे आवत देखवौ क्यौं हूँ रह्यो न जाय ॥ १०४ ॥

क्यौं हूँ रह्यो न जाय स्याम की लखि + औझाँकी । पलक कलपसम लगत लखत वह मूरत बाँकी ॥ सुकवि सवै कुल सील लाज हू राजति तौ लौं । जमुनातट वटनिकट लख्यो नटवर नहिँ जौ लौं ॥ १४६ ॥

कपटसतर भौंहैं करी मुख सतरौंहैं वैन ।
सहज हँसौंहैं जानि कै सौंहैं करति न नैन ॥ १०५ ॥

सौंहैं करति न नैन लजौंहैं अरु ललचौंहैं । हँसी चुई सी परत कपोलन तउ पुलकौंहैं ॥ अधरन मैं मुसुकान लसत नहिँ छिपत वनावट । सुकवि स्याम सौं हारिगई करि बातैं सकपट ॥ १४७ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है ॥ † सगुन लखाती = शकुन दिखवाती ॥
‡ यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है ॥ + औचक झांकी = औझांकी ॥

नहिँ नचाय चितवति दृगन नाहिँ बोलति मुसुकाय ।
ज्यौँ ज्यौँ रुख रूखौ करति त्यौँ त्यौँ चित चिकनाय ॥ १०६ ॥

त्यौँ त्यौँ चित चिकनाइ करत रूखो रुख ज्यौँ ज्यौँ। या सौँ मौन हिँ साधि दबकि बैठी तिय ज्यौँ त्यौँ ॥ हरिहिय लपटनचाह उतै इत मान रही गहि ॥ सङ्कट मैँ तिय परी सुकबि करि सकत कछू नहिँ ॥ १४८ ॥

तो ही कौ छुटि मान गौ देखत ही ब्रजराज।
रही घरिक लौँ मान सी मान किये की लाज ॥ १०७ ॥

मान किये की लाज नाहिँ कछु बचन उचारति । साधि रही टकटकी भरी चकपकी निहारति ॥ कर मलि मलि छिपि गई चहूँ दिसि सखी किती को । सुकवि कोरि बलि जाँउँ प्रेम धनि री तो ही को ॥ १४६ ॥

कियो जु चिबुक उठाय करि कम्पत कर भरतार ।
टेढ़ीयै टेढ़ी फिरति टेढ़े तिलक लिलार ॥ १०८ ॥

टेढ़े तिलक लिलार और टेढ़ी ही अलकन । टेढ़ी भौहँनि टेढ़ी चितवनि टेढ़ी पलकन ॥ टेढ़े टेढ़े नैन बैन मन चोरि लियो जो । सुकबि बूझिगयो हेतु तिलक भरतार कियो जो ॥ १५० ॥

तुम सौतिन देखत दई अपने हिय तैँ लाल ।
फिरति सबन मैँ डहडही वहै मरगजी माल ॥ १०९ ॥

वहै मरगजी माल भूलि गर तैँ न उतारति । छन छन झुकि झुकि निरखि पुलकि दृग आँसुन ढारति॥ सारी सौँ नहिँ ढकति फेर फिर दरपन पेखत ॥ सुकवि कियो कछु टोना सो तुम सौतिन देखत ॥ १५१ ॥

छनक उघारति छन छुवति राखति छनक छिपाइ ।
सब दिन पियखंडित अधर दर्पन देखत जाय ॥ ११० ॥

दर्पन देखत जाय सबै दिन बैठि अकेले । छन छन पोंछति ठठकि जाति पुनि *अँगुरी मेले ॥ ऐंठि उमेठति छनक मोहिं† निज तन मन वारति । सुकवि हिँ लखि लखि ढाँपति छन छन छनक उघारति ॥ १५२ ॥

छला छबीले छैल को नवल नेह लहि नारि ।
चूमति चाहति लाय उर पहरति धरति उतारि ॥ १११ ॥

पहरति धरति उतारि निकारति पुनि पुनि पहरति । मुरति छनक लौं तऊ दीठि वाही पैं ठहरति ॥ छनक उघारति छन सिरधारति सुमिरि रसीले । सुकवि कियो कछु वसीकरन दै छला छबीले ॥ १५३ ॥

दुसह सौति सालै जु हिय गनति न नाहविवाह ।
धरे रूप गुन को गरब फिरै अछेह उछाह ॥ ११२ ॥

फिरै अछेह उछाह रूप गुन की गरबीली । जानत मो सामुहैं रति हु टरि जात लजीली ॥ नये व्याह को मनहुँ तमासा देखत डहडह । सुकवि पिया-बसकरनि सौति नहिं याकों ‡दुःसह ॥ १५४ ॥

सुघरसौतिबस पिय सुनत दुलहिनि दुगुन हुलास ।
लखी सखीतन दीठि करि सगरब सलज सहास ॥ ११३ ॥

सगरब सलज सहास भौंह मटकावति प्यारी । करैं तिरीछे नैन सहेलिन ओर निहारी ॥ सुघराई के गरब भरी जानति सब रँगरस । मुसकिराति तिय सुकवि सुने हरि सुघरसौतिबस ॥ १५५ ॥

---

* अधर पै ॥ † मोहित हो के ॥ ‡ विसर्ग सद्य है ॥

हँसि ओठनबिच कर उँचै किये निचौंहैं नैन ।
खरे अरे प्रिय के प्रिया लगी बिरी मुख दैन ॥ ११४ ॥

लगी बिरी मुख दैन कण्टकित कर तैं प्यारी । लाजनबोझनझुकी गहति सिर सरकत सारी ॥ पुलकन सौं लगबगी सुरतिहरि हिये रही बसि । सुकवि तिरीछैं लखति फेरि मुख चितवति हँसि हँसि ॥ १५६ ॥

पुनः ।

लगी बिरी मुख दैन धन्य धलि धनि यह नारी । हरि पैं रीझी सबै आपनी सुरति बिसारी ॥ जोगीजन जिहिं ध्यावत बैठे कन्दरकोठन । सुकवि गूजरी देति बिरी तिहिं हँसि हँसि ओठन ॥ १५७ ॥

पुनः ।

दैनलगी मुख पुलकि पसीजे कर तैं बीरी । पीरी छटा कपोल अधीरी भई अहीरी ॥ गिरिगई सो बीच हीं रही बनमाल माहिं फँसि । अँगुरी ओठनि लगी सुकबि तकि दोऊ गये हँसि १५८ ॥

बिथुर्‌यो जावक सौतिपग निरखि हँसी गहि गाँस ।
सलज हँसौंहीं लखि लियो आधी हँसी उसाँस ॥११५॥

आधी हँसी उसाँस लियो मुख मोरि गूजरी । अरुनकमल सी छटा बदन की भई ऊजरी ॥ सूखन लाग्यो अधर भयो अँग जैसैं पावक । *बिथुरो अंजन नैन सुकवि लखि बिथुरो जावक ॥ १५६ ॥

छला परोसिनहाथ तैं छल करि लियो पिछानि ।
पिय हिं दिखायो लखि बिलखि रिससूचक मुसकानि ॥११६॥

रिससूचकमुसकानिभरी ताने सी मारति । तकति तिरीछी तकनि छिपी जनु बात उघारति ॥ सुकवि हठीली नारि कान्ह के हिय की †तोसिन । कहति हहा किमि लह्यो लला यह छला परोसिन ॥ १६० ॥

* बिथुरो = आँसू से बह चला ॥ † तोसिन = तोषिणी = तुष्ट करने वाली ।

बिलखी लखै खरी खरी भरी अनख बैराग।
मृगनैनी सैन न भजै लखि बेनी को दाग॥ ११७॥

लखि बेनी को दाग कुंज के ठाढ़ी कोने। सोने भये कपोल मनहु मारी कोउ टोने॥ आँसू नैनन देखि सखिन हू नाहिँन *दुलखी। सुकवि बदन पट ढाँपि मोरि मुख प्यारी बिलखी॥ १६१॥

---

† दीठि परोसिनईठ व्है कहै जु गहै सयान।
सबै सँदेसे कहि कह्यो मुसकाहट मैँ मान॥ ११८॥

मुसकाहट मैँ मान समुझि सब बूझी सोऊ। फिरि देख्यो कछु हँसनि-लस्यो मुख नायक कोऊ॥ हँसी सखी हू तिरछे लखि दोऊ दिस लोइन। सुकवि लखत सरमानी ऐँची दीठ परोसिन॥ १६२॥

गह्यो अबोलो बोलि प्यौ आपै पठै बसीठ।
दीठ चुराई ‡ दुहुन की लखि सकुचौँहीं दीठ॥ ११९॥

लखि सकुचौँहीं दीठि दुहुन की प्रीति जनाती। मुखछवि हू अरसानी सी मानहुँ मदमाती। काजर कछु कछु पुँछे कपोलन झलक तमोलो॥ सुकवि छिपाये हु लखिगई नागरि गह्यो अबोलो॥ १६३॥

---

* दुलखी = दुहरा के कही गई।

† अर्थ,—(डीठि) देख के नायक को (परोसिनईठ ह्वै) परोसिन की इष्ट हो के, मित्र हो के। समझदारी से कहती है (बात परोसिन से कहती है व्यङ्ग नायक पर है) सब मनसे कहके मुसकाई, इस लिये कि मुसकाहट से मान विदित हुआ॥ (कुण्डलिया) उसका मान समझ उसके पति से अपनी प्रीति का खुलना परोसिन समझ गई। तब वह उस प्रिय की ओर झाँकी, तो उसे भी कुछ मुसकिराता देखा। एक सखी इन दोनों की आँखें मिलती देख हँसी, तब परोसिन ने सरमा के अपनी आँखें झुका लीं। ‡ दुहुन की = दूती और प्रिय की।

हठ हित करि प्रीतम दियो कियो जु सौति सिँगार।
अपने कर मोतिनगुह्यो भयो हरा हरहार * ॥ १२० ॥

भयो हरा हरहार हु सौँ बढ़ि विष बगरावत। दूर हि सौँ जनु डसत कोटि फन सौँ फुफकावत ॥ चहूँ चमकरसना लपकावत मनहुँ कोप भरि। सुकबि कालि ही लियो छली झूठो हठ हित करि ॥ १६४ ॥

सुरँग महावर सौतिपग निरखि रही अनखाय।
पियअँगुरिन लाली लखैँ खरी उठी लगि लाय ॥ १२१ ॥

खरी उठी लगि लाय बदन पै छाई लाली। †धूमघटा सी बङ्क भौंह भई तँहिँ छन आली॥ अङ्गारा से नैन भये अरु साँस मनहु ‡झर। सुकबि बचन-चिनगी चमकत लखि सुरँग महावर ॥ १६५ ॥

रहौ गुही बेनी लखे गुहिबे के त्योनार+।
लागे नीरचुचावने नीठ सुखाये बार ॥ १२२ ॥

नीठ सुखाये बार भये पुनि जल सौँ तरतर। नीठ नीठ सुरझाने पुनि अरुझाने तुव कर ॥ कुसुमकली मुरझाइ परी भई नीर चुहचुही। सुकबि चराओ गाय जाहु वेनी रहौ गुही ॥ १६६ ॥

पियप्राननि की पाहरू जतन करति नित आप।
जा की दुसह दसा भयैँ सौतिन हूँ सन्ताप ॥ १२३ ॥

सौतिन हूँ सन्ताप सवै घवराई डोलत। छन आवत छन जात साँस ऊँचे भरि वोलत॥ कदलीदलन वयारि करति मुरझाने से जिय॥ सुकबि मनावत विधिहिँ रहैँ नीके दोऊ तिय पिय ॥ १६७ ॥

---

* हरहार=शेषनाग ॥ हार भी श्वेत है शेष का भी श्वेत ही वर्णन है शेषनाग सा भयानक हो गया॥ † धुआँ की घटा सी। ‡ झर=झल=ज्वाला की लपट ॥ + त्योनार=प्रकार, कौशल।

दुनिहाई सब टोल मैं रही जु सौति कहाय ।
सु तौ ऐंचि पिय आप त्यौं करी अदोखिल आय ॥१२४॥

करी अदोखिल आय कलङ्कनसङ्क हटाई । त्यौं जनु उन के बदन माँहि सेतता रमाई ॥ चतुर चवाइन को चवाव हू दियो मिटाई । सुकवि स्याम नैं सती करी जो ही दुनिहाई ॥ १६८ ॥

रह्यो ऐंचि अन्त न लह्यो अवधि दुसासन बीर ।
आली बाढ़त बिरह ज्यौं पञ्चाली को चीर ॥ १२५ ॥

पंचाली को चीर मनहुँ निजतन विस्तारत । विविध रंग दिखराय हाय जनु धीरज गारत ॥ पट बाढ़े तैं द्रुपदसुता तो अधिक सुख लह्यो । विरह बढ़े पुनि सुकवि हहा सो हीय तचि रह्यो ॥ १६९ ॥

---

* हिय औरै सी व्है गई टरे अवधि के नाम ।
दूजे करि डारी खरी बौरी बौरे आम ॥ १२६ ॥

बौरी बौरे आम और दुखिया करि डारी । कुहू कुहू कै कोकिल हू जनु हीयविदारी ॥ फूले किंसुक गुनि दवागि भागी सी दौरै । सुकवि तिया विरहिनी भई तन अरु हिय औरै ॥ १७० ॥

---

† छतौ नेह कागद हिये भई लखाइ न टाँक ।
बिरह तचे उघरयो सु अब सेंहुड़ को सो आँक ॥ १२७ ॥

विरह तचे उघरयो सु अब सेंहुड़ को सो आँक तपायें प्रगट लखायो । नैन नीर सौं धुप्यो और ९

---

* यह दोहा शृङ्गारसप्तशतिका में नहीं है । † सेंहुड़ के दूध से कागज़ पर कुछ लिख .. जाय तो यह यों नहीं जानपड़ता पर जब उसे तपावें तो अक्षर प्रगट होते हैं । योंहीं पानी से भीने भी वे अक्षर प्रगटते हैं ॥

जनु चमकायो॥ अवधिअधार न होतो तौ जीवन को गछतो। सुकवि चलो अब वेगि नाहिँ जैहै जिय अछतौ॥ १७१॥

---

*चित तरसत मिलत न बनत बसि परोस के बास।
छाती फाटी जाति सुनि टाटीओट उसास॥ १२८॥

टाटीओट उसास सुनत फाटत सो हियरो। आह दाह सो करत हाय झुरसावत जियरो॥ मोखा और झरोखा लखि लखि दृग दोऊ वरसत। उछरि जान मन चहत सुकबि ऐसो चित तरसत॥ १७२॥

रहिहैँ चंचल प्रान ये कहि कौन की अँगोट।
ललन चलन की चित धरी कल न पलन की ओट॥१२९॥

कल न पलन की ओट जलन अँग अङ्ग जरावत। अँसुवाजलन भिँगाइ मैन अति देह कँपावत॥ छलन वलन किमि किये पीय रहिबो चित गहिहैँ। मदनदलन बिनु सुकवि जीय कैसे कै रहिहैँ॥ १७३॥

अज्यौँ न आये सहज रँग बिरहदूबरे गात।
अब हीँ कहा चलाइयत ललन चलन की बात॥१३०॥

ललन चलन की बात कछू अब हीँ न चलैयो। नीठ नीठ सूखे आँसुन मत फेरि वहैयो॥ बार बार तुम कौँ बिनवत हौँ हाहा खाये। सुकबि लखहु तियगात सहज रँग अजौँ न आये॥ १७४॥

पूस मास सुनि सखिन पैँ साँईं चलत सँवार।
गहि कर बीन प्रबीन तिय राग्यौ राग मलार॥१३१॥

राग्यो राग †मलारमेघ मेघ हु मँड़राये। गरजि गरजि पुनि बरसि बरसि

---

* यह दोहा शृङ्गारसप्तशती श्री देवकीनन्दन की टीका में नहीं है॥ † मेघमल्लार प्रसिद्ध राग है॥

नद नदी बहाये ॥ चमकन लागी विज्जु चहूँ दिस भो अँध्यार पुनि । सावन कीनो सुकवि चलन पिय पूस मास सुनि ॥ १७५ ॥

ललनचलन सुनि पलन मैं अँसुआ झलके आय ।
भई लखाइ न सखिन हूँ झूठैं हीं जमुहाय ॥ १३२ ॥

झूठैं हीं जमुहाय लगी मलिबे दोउ नैनन । सानि निदौंहैं भाव दये निज गदगद बैनन ॥ केसरअवटन उबटि पियरई दई ढाँपि पुनि । सुकवि इकन्त हिं बैठि रही तिय ललनचलन सुनि ॥ १७६ ॥

चलत चलत लौं ले चले सब सुख सङ्ग लगाय ।
ग्रीषमबासर सिसिरनिसि पिय मोपास बसाय ॥ १३३ ॥

पिय मोपास बसाय सिसिरनिसि वासरग्रीषम । चले आपु रखि मोदृग मैं बरपारितु भीषम ॥ दरकत छाती सुकवि सुमिरि हू सरद कीच ज्यों । भली निबाही प्रीति साँवरे चलत चलत लौं ॥ १७७ ॥

बिलखी डभकौंहैं चखन तिय लखि गमन बराय ।
पिय गहबर आयो गरो राखी गरैं लगाय ॥ १३४ ॥

राखी गरैं लगाय बिसरि कै बात जान की । तन मन नैनन बैनन छाई प्रिया प्रान की ॥ जैबे के अपराध मनहुँ दृग होत न सौंहैं । सुकवि हिये जनु लिखी तिया बिलखी डभकौंहैं ॥ १७८ ॥

बामा भामा कामिनी कहि बोलौ प्रानेस ।
प्यारी कहत लजात नहिं पावस चलत बिदेस ॥ १३५ ॥

पावस चलत बिदेस कहत मुख प्यारी प्यारी । और जरे पै नोन डारि

उपजावत झारी ॥ सुकवि तिहारो दोष कौन भाषत घनस्यामा । करै
कोउ भयो जु पै मेरो विधि वामा ॥ १७६ ॥

पुनः ।

पावस चलत विदेस तऊ भाषत हो प्यारी । करत *छटूको हीय प
कसत मुरारी ॥ प्रान हरत अरु प्रानप्रिया बोलत विनु कामा । सुकवि
वलिजाँउ कहत किन वामा भामा ॥ १८० ॥

पुनः ।

पावस चलत विदेस छाँड़ि जमसरिस जामिनी । तऊ कामना
तिहारी कहहु कामिनी ॥ मान करन को रोष याद करि भाषहु भा
सुकवि वाम विधि भये कहहु या सोँ मोहि वामा ॥ १८१ ॥

मिलि चलि चलि मिलि मिलि चलत आँगन अथयो भा
भयो मुहूरत भोर तैं पौरी प्रथम मिलान ॥ १३६ ॥

पौरी प्रथम मिलान भोर तैं संझा कीनी । प्रेमपयोधि तरङ्ग अजहुँ
गत रसभीनी ॥ वार वार कछु कहत दोऊ मिलि जात दुहूँ बलि । सु
विरह सहि सकत नाहिँ आवति पुनि मिलि मिलि ॥ १८२ ॥

चाहभरी अति रिसभरी बिरहभरी सब बात ।
कोरि सँदेसे दुहुन के चले पौरि लौं जात ॥ १३७ ॥

चले पौरि लौं जात सँदेसे होत न पूरे । सौ सौ पलटे खात रहत
तऊ अधूरे ॥ अधिक उराहन भरे प्रेम परवस कीनी मति । सुकवि
यह आहभरी अरु चाहभरी अति ॥ १८३ ॥

नये विरह बढ़ती विथा भई बिकलजिय बाल ।
बिलखी देखि परोसिन्यौ हरषि हँसी तिहि काल ॥ १३८

हरखि हँसी तिहिँ काल परोसिन को दुख निरखत । सौतिन अलप क

* छटूको = छ टुकड़े वाला ॥ पटूको = पटुका = कमरबन्धा ।

हु किहिँ नहिँ हरखनि बरखत ॥ उनमुख पीरो लखत रङ्ग मुख औरै उनये । सुकवि छनक मैँ उमँगि उठे पुनि वियोग जु नये ॥ १८४ ॥

---

*चलत देत †आभार सुनि वही परौसिनिनाह ।
लसी तमासे के दृगनि हाँसी आसुनि माँह ॥ १३९ ॥

हाँसी आँसुन माँहिँ मुरकि कै पुनि हरियाई । पीरे जुगल कपोलन पुनि छाई अरुनाई ॥ भयो निहँचै हरिमिलन नैन दोउ पोंछे अंचल । सुकवि स्यामदरसनप्यासी गूजरि भई चंचल ॥ १८५ ॥

भये बटाऊ नेह तज बाद बकति बेकाज ।
अब अलि देत उराहनौ उर उपजत अति लाज ॥ १४० ॥

उर उपजाति अति लाज कही पुनि पुनि का कहिये। निघरघटो लखि कै मन हीँ मन मैँ दुख सहिये ॥ दैव भयेँ प्रतिकूल दोस दीजै जनि काऊ । सुकवि स्याम की बात कहा वे भये बटाऊ ॥ १८६ ॥

मृगनयनी दृग की फरक उर उछाह तन फूल ।
बिन हीँ पियआगम उमगि पलटन लगी दुकूल ॥ १४१ ॥

पलटन लगी दुकूल आगमन निहँचै मान्यो । तिलक सँवारयो भाल नैन-जुग अञ्जन ठान्यो ॥ झवा झुलावति झुकति उझकि झाँकति पिकबयनी । फूली फूली सुकवि निज हिँ बिसरी मृगनयनी ॥ १८७ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है ॥

† नायिका का परोसी से प्रेम है। पति विदेश जाता है सो उसी परोसिन के नाह को अपने घर का बोझा दिये जाता है यह सुनतेही तमासे की दृष्टि में आँसुओं में हँसी लसी। आभार = बोझा =

बाम बाहु फरकत मिलैं जो हरि जीवनमूरि ।
तौ तौं ही सौं भेटि हौं राखि दाहिनौ दूरि ॥ १४२ ॥

राखि दाहिनो दूरि तो हि सौं स्याम भेटिहौं । भूषन तो हि पहिराइ दच्छ सौं प्रेम मेटिहौं ॥ यौं कहि चूमति बाम भुजा सुमिरति घनस्यामा । हरि हरि भाषति सुकबि बावरी ह्वै गई बामा ॥ १८८ ॥

मलिन देह वे ई बसन मलिन बिरह के रूप ।
पियआगम औरै बढ़ी आननओप अनूप ॥ १४३ ॥

आननओप अनूप और ही छन मैं छाई । अँसुवनमलिन कपोलन आई पुलकलुनाई ॥ ✻उजरे से जे हुते सु सोभित भये गेह वे । सुकबि दीहदुति सौं दमकाने मलिन देह वे ॥ १८९ ॥

कियौ सयानी सखिन सौं नहि सयान यह भूल ।
दुरै दुराई फूल लौं क्यौं पियआगमफूल ॥ १४४ ॥

क्यौं पियआगम फूल फूल लौं दुरै दुराई । सपथ किये हू मृगमदगन्ध न छिपै छिपाई ॥ बिरहबिथा सहि सुकबि आज जो पुनि हरसानी । ताहि छपावत कहा †सयानप कियो सयानी ॥ १९० ॥

रहे ‡बरौठे मैं मिलत पिय प्रानन के ईसु ।
आवत आवत की भई बिधि की घरी घरी सु ॥ १४५ ॥

विधि की घरी घरी सु व्है गई किते बरस सी । सरस हरस हू बरसत दृग भई दरसतरस सी ॥ सिथिलित अँग व्है चले हते जु उछाह हरौठे । सुकवि देह रह्यो गेह प्रान पुनि रहे बरौठे ॥ १९१ ॥

✻ उजरे = उजड़े । † सयानप = स्यानपन । ‡ बरौठा = बहिःकोष्ठ = बरामदा ।

भेटत बनत न भाँवतो चित तरसत अति प्यार ।
धरति उठाय लगाय उर भूषन बसन हथ्यार ॥ १४६ ॥

भूषन बसन हथ्यार जोई जोई तिय पावति। आँनदअँसुअन सींचि सोई सोई उर लावति ॥ पुलकडहडहे नैनन पिय कों निरख हु सकत न । प्रेम-बावरी तिया सुकवि भई भेटत बनत न ॥ १६२ ॥

बिछुरे जिये सकोच यह मुख तैं कहत न बैन ।
दोऊ दौरि लगे हिये किये निचौहैं नैन ॥ १४७ ॥

किये निचौहैं नैन रहे दोऊ दोउन जकरे । चित्रलिखे से दोऊ दुहुन कर सों कर पकरे ॥ दोऊ दोउन सींचि रहे जल कज्जलनिचुरे । सुकवि धन्य दोउ मिले आजु कोऊ दिन के बिछुरे ॥ १६३ ॥

पुनः ।

*किये निचौहैं नैन राम लछिमन दोउ भाई। मूरति से गये ठठकि दोऊ दोउन उर लाई ॥ देव हु बरसत फूल नगरबासी जय जय कहै। सुकवि सकत नहिं भापन बिछुरे जिये सँकोच यह ॥ १६४ ॥

---

†ज्यौं ज्यौं पावकलपट सी तिय हिय सौं लपटाति ।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब की छतियाँ अति सियराति ॥ १४८ ॥

छतियाँ अति सियराति बुझत उमँगी बिरहागी । हीतल सीतल होत जात मन आनँद पागी ॥ अङ्ग उमङ्गन भरत सुकवि हू बरनि सकै क्यौं । हरसत सरसत नैन तीय कसि आलिङ्गत ज्यौं ॥ १६५ ॥

आयो मीत बिदेस तें काहू कह्यो पुकारि ।
सुनि हुलसी बिहँसी हँसी दोऊ दुहुँनि निहारि ॥ १४९ ॥

दोऊ दुहुँन निहारि रहे दोउन के नैना। मुख अरुनाई छई बदन तें कढ़त

---

* भरतमिलाप का प्रकरण । † यह दोहा कृष्णदत्तकवि के ग्रन्थ में नहीं है ॥

न बैना ॥ तिया मुदित तिहिँ ग्वारि निकट जउ चहत छिपायो। सुकवि तऊ बिहँसावत तिहिँ मुद बाहर आयो ॥ १९६ ॥

अहे कहे न कहा कह्यो तो सौं नन्दकिसोर।
बड़बोली कत होति है बड़े दृगनि के जोर ॥ १५० ॥

बड़े दृगन के जोर बड़ी बड़ि बात बनावति। ऐंठि ऐंठि कै चलति भमकि भौंहैं सतरावति ॥ तनि तनि कै पुनि तान रही है तिरछे नैना। सुकवि कान्ह तोहि कहा कह्यो कछु अहे कहे ना ॥ १९७ ॥

पुनः।

बड़े दृगन के जोर बड़प्पन कितो बढ़ैहै। भौंह जुगल सतराइ किते पुनि तानै कैहै ॥ कहा परेखो बात बताइ कछू तो मो सौं। सुकबि साँवरे अहे कहे न कहा कह्यो तो सौं ॥ १९८ ॥

जदपि तेजरो हाल वर लगी न पलकौ बार।
तउ गैवड़ो घर को भयो पैंड़ो कोस हजार ॥ १५१ ॥

पैंड़ो कोस हजार भयो यह गाँव गली को। चलत चलत जनु उतरि गयो मुख इते बली को ॥ भींजि सेद सौं आपु कियो बाजी तरबतरो। सुकवि कलप पल भई हतो यह जदपि तेजरो ॥ १९९ ॥

नभ लाली चाली निसा चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत आये बनमाली न ॥ १५२ ॥

आये बनमाली नहिँ टाली अवधि कुचाली। लगी पिकाली काली कूजन डाली डाली ॥ कोउ ग्वाली की प्रीति सम्हाली स्याम रसाली। सुकवि रिजाली दई वहाली भई नभ लाली ॥ २०० ॥

पुनः ।

आये वनमाली नहिँ वात बना ली खाली । टाली काली रैन निराली लहि कोउ ग्वाली ॥ देखी भाली ताली देइ उड़ावत ख्याली । सुकवि रंगराली भ्रमराली भई नभलाली ॥ २०१ ॥

झुकि झुकि झपकौंहँ पलन फिर फिर जुरि जमुहाय ।
जानि पियागम नींद मिस दी सब सखी उठाय ॥ १५३ ॥

दी सब सखी उठाय अलस के अङ्गन भारी । वार वार मलि नैन बजावत चुटकी प्यारी ॥ हरि ही के रँग रँगी भापि कै वातैं रुकि रुकि । कीनो सुकवि इकन्त नींद के व्याजन झुकि झुकि ॥ २०२ ॥

ज्यौं ज्यौं आवत निकट निस त्यौं त्यौं खरी उताल ।
झमकि झमकि टहलैं करे लगी रहँचटे वाल ॥ १५४ ॥

लगी रहँचटे वाल आरसी मैं मुख पेखति । काजर अलक सँवारि द्वारदिस पुनि पुनि देखति ॥ सुकवि सँवारत सेज अतर अरु पान सजावत । त्यौं त्यौं वढ़त उछाह निकट निसि ज्यौं ज्यौं आवत ॥ २०३ ॥

फूली फाली फूल सी फिरति *जो बिमल बिकास ।
भोरतरैया होंहि ते चलत तोहि पियपास ॥ १५५ ॥

चलत तोहि पियपास सौतिमुख पीरे व्हैहैं । नैन हुलास विकास भरे ते उ मुरझैहैं ॥ नँदनन्दन को हीय सरस सरसैहे आली । सुकवि संक तजि अली चली चलु फूलीफाली ॥ २०४ ॥

---

* जो सौत ॥

*उठि ठकठक एतौ कहा पावस के अभिसार।
जान परैगी देखि ज्यौँ दामिनि घनअँधियार ॥ १५६ ॥

दामिनि घनअँधियार सरिस सुन्दर छबि पैहै। मोतिनभूषन पहिरि चमक जुगनू सी व्हैहै॥ क्यौँ बहु संसय परी करति है झूठे बकबक। सुकवि अँधेरी रैनि नाँहि कछु हू उठि ठकठक ॥ २०५ ॥

गोप अथाइन तैँ उठे गोरज छाई गैल।
चलि बलि अलि †अभिसार की भली सँझोखैं सैल॥१५७॥

भली सँझोखैं सैल सिँदूरी छाये बादर। फूली संझा धारि कुसुम्भी सारी चादर ॥ नूपुर सुनिहै कौन घोर गाइनि की घण्टिन। सुकबि असंसय चलु सँकेत गये गोप अथाइन ॥ २०६ ॥

छप्यो छपाकर छित छयो तम ‡ससिहर न सँभारि।
हँसति हँसति चलि ससिमुखी मुख तैँ आँचर टारि ॥१५८॥

मुख तैँ आँचर टारि साँवरी को तोहि लखिहै। सघनतमालनछाँह बात तेरी सब रखिहै॥ हिय जनि होहि उदास साज सब है रसआकर। सुकबि छबीले छैल निकट चलि छप्यो छपाकर ॥ २०७ ॥

सघन कुंज घन घनतिमिर अधिक अँधेरी राति।
तऊ न दुरिहै स्याम यह दीपसिखा सी जाति ॥ १५९ ॥

दीपसिखा सी जाति स्याम कैसैँ छिप जैहै। ढपैँ साँवरी सारि हु तैँ अँग-दुति दमकैहै ॥ या सोँ आपु हि चलो छैल सोविनती करि मन। सुकबि तिहारी गैल निहारति हिय कै रसघन ॥ २०८ ॥

---

* अनवरचन्द्रिका मेँ यह दोहा नहीँ है॥ (ठकठक = अन्देशा = बखेड़ा)। † लल्लूलाल ने 'अभिसारिके' पाठ रखा है। ‡ ससिहर न = डर मत।

जुवति जोन्ह मैं मिलिगई नेक न होति लखाइ।
सौंधे के डोरे लगी अली चली सँग जाइ॥ १६०॥

अली चली सँग जाइ सुनत कछु कछुक पगाहट। कान लगाये सुनत कछुक चूरिन की आहट॥ भूमि पर्यो आकार लखाति कबहुँक छाया को। सुकवि अली यों जाति लखी नहिँ पराति जुवति जो॥ २०९॥

निसि अँधियारी नील पट पहिरि चली पियगेह।
कहो दुराई क्यौं दुरै दीपसिखा सी देह॥ १६१॥

दीपसिखा सी देह दंतदुति चन्दकला सी। कनकआभरन हू की चमकन त्यों चपला सी॥ चहुँ दिसि फैल्यो पुनि निसास को सौरभ भारी। सुकवि दुरै क्यों दीपति है जउ निसि अँधियारी॥ २१०॥

अरी खरी सटपट परी विधु आधे मग हेरि।
सङ्ग लगे मधुपन लई भागन गली अँधेरि॥ १६२॥

भागन गली अँधेरि लई तऊ छिपै न गोरी। बगराये सब बार गाँठ जूरा की छोरी॥ सुकवि मलत कुच मृगमद लै अँग अँग घरी घरी। अलि-कुल घेरी छिपी किहूँ किहुँ विधि अरी खरी॥ २११॥

---

*मिस ही मिस आतप दुसह दई और बहकाय।
चले ललन मनभावति हिँ तन की छाँह छिपाय॥१६३॥

तन की छाँह छिपाय चले दीने गलबाँहीं। मधुर मधुर आलपत हँसत पुनि छन छन माहीं॥ छिप्यो पितम्बर धूप माँहि भयो एक ही सारिस। सुकवि साँवरी छाया में मिलिगई मिस ही मिस॥ २१२॥

---

* यह दोहा, देवकीनन्दन टीका में नहीं है।

मिलि छाँही अरु जोन्ह सौं रहे दुहुनि के गात।
हरि राधा इक संग ही चले गली मैं जात ॥ १६४ ॥

चले गली मैं जात चाँदनी मिलि गई प्यारी । छाया मैं मिलि स्याम चले त्यौं कुञ्जविहारी ॥ कोऊ नाँहि लखि सकत गहे दोउ दोउन बाँही। सुकवि अलख भये साँच दोऊ मिलि जोन्ह* रु छाँही ॥ २१३ ॥

पलनि पीक अंजन अधर धरे महावर भाल।
आज मिले सु भली करी भले बने हौ लाल ॥ १६५ ॥

भले बने हो लाल अति हि क्यौं हिय सरमावत। पीतम्बर कौं ऐंचि कपोलन कहा छिपावत ॥ पूछत बातन सुकवि कहा ठानत हो छल बल। दरपन ल्यावति अबै स्याम ठाढ़े रहियो पल ॥ २१४ ॥

मरकतभाजन सलिलगत इंदुकला के बेष।
झीन झगा मैं झलमलै स्यामगातनखरेख ॥ १६६ ॥

स्यामगातनखरेख कला जनु बिधु की राजै । सेदकनन को जाल नखतगन सरिस बिराजै ॥ बिथुरी सी उपवीत देवबीथी मोहत मन । प्रतिबिम्बित नभ मनहुँ सुकबि जल मरकतभाजन ॥ २१५ ॥

वैसीयै जानी परति झगा ऊजरे माँह।
मृगनयनी लपटी जु हिय बेनी उपटी बाँह ॥ १६७ ॥

वेनी उपटी बाँह कण्ठढिग सैंदुर लाग्यो । कुचकेसर को दाग हिये सोहत रसपाग्यो ॥ आवत अङ्ग सुगन्ध फुलेल चमेली कैसी । सुकबि स्याम तउ बात बनावत ऐसी वैसी ॥ २१६ ॥

---

* रु = अरु।

कत बेकाज चलाइयत चतुराई की चाल ।
कहे देत गुन रावरे सबगुन निर्गुन माल* ॥ १६८ ॥

सब गुन निर्गुन माल कहत बाकी नहिँ राखत । अलसअरुन दृग दोऊ गवाही तापैँ भाषत ॥ कुचकेसर दई मुहर पीक हू कीने दसखत । सुकबि अजहुँ है निलज झूठ इजहार देत कत ॥ २१७ ॥

तुरत सुरत कैसेँ दुरत मुरत नैन जुरि नीठ ।
†डौँड़ी दै गुन रावरे कहै ‡कनौड़ी दीठि ॥ १६९ ॥

कहै कनौड़ी दीठि कछू नहिँ रखत छिपाये । देत रसन दरसाये अरसाये सरसाये ॥ सुकबि खरे करि कहा ग्रीव को अति निठुरन कै । प्रगट भई यह आये हो हरि तुरत सुरत कै ॥ २१८ ॥

पावक सो नैननि लग्यो जावक लाग्यो भाल ।
मुकुर होहुगे नैक मैं मुकुर बिलोको लाल ॥ १७० ॥

मुकुर बिलोको लाल रहे क्यौँ धुकुर पुकुर कै। सरमाने हो कहा रहे क्यौँ अङ्ग सुकुर कै ॥ सुकबि लगै किन तुम कौँ अतिसै मनभावक सो । जावक लाग्यो भाल लगै मोकौँ पावक सो ॥ २१९ ॥

प्रानप्रिया हिय मैं बसै नखरेखाससि भाल ।
भलो दिखायो आनि यह हरि हररूप रसाल ॥ १७१ ॥

हरि हररूप रसाल आजु अति सरस दिखायो । अंजनरंजनव्यालबाल-

---

* सब गुनवाली निर्गुन माल तुम्हारे गुन (दोष) को कहे देती है । हरिप्रकाश मैं " कहे देत गुनि रावरे " पाठ है । संस्कृत आर्याकार हरिप्रसाद ने तो औरही पाठ रखा है जैसे " कत बेकाज बनाइयत चतुराई की चाल ॥ कहि देत यह रावरे सबगुन बिनुगुन माल " ॥ उनकी आर्या यों है "प्रथयसि किमर्थमधुना चातुर्यं ते हवा गुणं निखिलम् । कथयति वनिता माला गुणगलिता वचसा कलिता " ॥

† डौँड़ी = डुगडुगी । ‡ कनौड़ी = कान की ओर झँपी (कानमुड़ी) ।

कुण्डल लपटायो ॥ गरलसरिस मृगमदटीका को दाग कण्ठ दिय। सुकबि मदनमदहरन धन्य तुत्र प्रानप्रिया हिय ॥ २२० ॥

नखरेखा सोहैं नई अरसौंहैं सब गात।
सौंहैं होत न नैन ये तुम सौंहैं कत खात ॥ १७२ ॥

तुम सौंहैं कत खात कौन पूछत तुम सौं हैं। बदन लजौंहैं झलकि रही तिय हीयबसौंहैं ॥ तरसौंहैं से देह बिलच्छन राजत वेखा। ग्रीवा बिंदुरी सुकबि हीय सोहत नखरेखा ॥ २२१ ॥

---

*पल सोहैं पगि पीकरँग छल सौं हैं सब बैन।
बलि सौंहैं कत कीजियत ये अलसौंहैं नैन ॥ १७३ ॥

ये अलसौंहैं नैन होत नहिँ हमरे सौंहैं। निघरघटौंहैं भाव बदन तुव होत हँसौंहैं ॥ सुकबि छबीले भाल रह्यो जावकरँग सौं रगि। धनि दिखरायो दरस पीकरँग पल सौंहैं पगि ॥ २२२ ॥

पट सौं पोंछि परी करौ खरी भयानक भेष।
नागिन व्है लागति दृगनि नागबेलिरँगरेख ॥ १७४ ॥

नागबेलिरँगरेख कोप सौं अरुन नागिनी। दूर हि सौं डसि रही अगिनि सी जोति जागिनी ॥ †मुरलीवारे तुम बिन कौन बचावै झट सौं। सुकबि लखी नहिँ जात झटकि झारो निज पट सौं ॥ २२३ ॥

जिहिँ भामिनि भूषन रच्यो चरनमहाउर भाल।
उहीं मनौं अखियाँ रँगी ओठनि के रँग लाल ॥ १७५ ॥

ओठनि के रँग लाल उहीं अँखिया रँग दीनी। मेहँदी के कर फेरि कपोलनि नवदुति कीनी ॥ व्है अनुरागन अरुन चले अरुनोदय तजि तिहिँ। सुकवि महाउरमोहरछाप दीनी भामिनि जिहिँ ॥ २२४ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है। † साँपिन से बचाने को पूँगीवाला चाहिये सो तुम हो।

गड़े वड़े छविछाक छकि छिगुनीछोर छुटै न।
रहे सुरँग रँग रँगि उही नहँदी महँदी नैन ॥ १७६ ॥

नहँदी महँदी नैनन लगि अति करी ललाई। पुनि अपने अनुराग हि सौं दीनो हिय छाई ॥ सौतिन हूँ के दृगन माँहिँ अरुनई गई फवि। *कौन रसिक के मन न सुकवि इहिँ गड़े वड़े छवि ॥ २२५ ॥

वेई गड़ि गाड़ैं परी उपट्यो हार हियै न।
आन्यो मोरि मतंग मनु मारि गुरेरनि मैन ॥ १७७ ॥

मारि गुरेरनि मैन किहूँ विधि मोर मुरायो। आँकुस दीनो गहकि नाहिँ नखछत दरसायो ॥ सुकवि कहो कोउ बाँह पड़ी वेनी की पाड़ैं। साँच हु कोड़ा हने रही वेई गड़ि गाड़ैं ॥ २२६ ॥

ह्याँ न चलै वलि रावरी चतुराई की चाल।
सनख हिये छन छन नटत अनख वढ़ावत लाल ॥१७८॥

अनख वढ़ावत लाल सनख सुन्दर तुमरो हिय। अरस देह पुनि कहत सरस साँचो तुमरो जिय ॥ रूखे रूखे नैन चीकनो चित भाषत भलि। सुकवि चाल चतुराईवारी ह्याँ न चलै वलि ॥ २२७ ॥

कत कहियत दुख दैन कौं रचि रचि वचन अलीक।
सवै कहाउ रहैं लखैं लालमहाउरलीक ॥ १७९ ॥

लालमहाउरलीक को न कोरो यह चीन्हो। प्यारी नैं तुमरो सगरो करतव लिखदीन्हो ॥ कोऊ सौं पढ़वावहु जो अपने नाहिँ पढ़ियत। सुकवि अरथ विनु वात वनावट की कत कहियत ॥ २२८ ॥

---

* अन्वय—"कौन रसिक के मन इहिँ छवि न वड़े गड़े" वड़े गड़े = अतिगड़े ॥

तरुनकोकनदबरन बर भये अरुन निसि जागि।
वा ही के अनुराग दृग रहे मनो अनुरागि॥ १८०॥

रहे मनो अनुरागि दोऊ दृग तेहिँ अनुरागैँ। पीकछापमिस पुनि कपोल अनुरागै पागैँ॥ अरुनोदय जग अरुन भयेँ छिपि चले वेदरद। सुकबि अरुन मैँ अरुन मिले तन तरुन कोकनद॥ २२९॥

न कर न डर सब जग कहत कत बे काज लजात।
सौंहैँ कीजे नैन जो साँची सौंहैँ खात॥ १८१॥

साँची सौंहैँ खात नैन तो कीजे सौंहैँ। पिय प्यारे बलि जाँउँ करत क्योँ वदन लजौंहैँ॥ जो झूठी ही बात देह क्योँ थरथरात तव। सुकबि निडर व्है रहहु कहत हैँ न कर न डर सब॥ २३०॥

लालन लहि पाये दुरै चोरी सौंह करे न।
सीस चढ़े *पनिहा प्रगट कहैँ पुकारे नैन॥ १८२॥

कहैँ पुकारे नैन बात हिय की सब खोटी। दोऊ कपोल दिखाइ रहे जनु पीकचमोटी॥ अधर हु थरथर करत देत हियरो दरकाये। चोरी कैसैँ दुरै सुकवि लालन लहि पाये॥ २३१॥

रह्यौ चकित चहुँघाँ चितै चित मेरौ मति भूलि।
सूरउदै आये रही दृगन साँझ सी फूलि॥ १८३॥

दृगन साँझ सी फूलि रही है स्याम तुमारे। अधिकअँधेरेउमँगन जनु भये अधर अँध्यारे॥ सुकवि कपोलन चमकि रहे तारे हू कहुँ कहुँ। लखि मुखससि मो दृग चकोर ह्वै रह्यौ चकित चहुँ॥ २३२॥

---

* जासूस = चुगलखोर = निन्दक = सूचक।

आपु-दियो मन फेरि लै पलटै दीनी पीठि।
कौन चाल यह रावरी लाल लुकावत दीठि॥ १८४॥

लाल लुकावत दीठि कहा किँहिँ वात लजाने। लेन देन करि पूरन पुनि कैसे सकुचाने॥ सोहत तुम कौं सबै सुकवि गोपाल धन्य धन। देइ लियो अरु फेर आन कौं आपु दियो मन॥२३३॥

मोहि दियो मेरो भयो रहत जु मिलि जिय-साथ।
सो मन बाँधि न दीजिये पिय सौतिन के हाथ॥ १८५॥

पिय सौतिन के हाथ हाय सौंपो जनि वाही। मेरो जानि कसाइन लौं हानिहैं ये ताही॥ अथवा मेरो होइ गयो चालि जो मम द्रोही। सुकवि और को हुँ ह्वैहै नहिँ निहँचै है मोही॥ २३४॥

ललन सलौने अरु रहे अति सनेह सौं पागि।
तनक कचाई देति दुख सूरन लौं मुख लागि॥ १८६॥

सूरन लौं मुख लागि हाय काटत ग्रीवा जनु। कछू नाहिँ कहि सकत पीर जानत मन ही मनु॥ तपे न विरह सँताप कठिन ह्वै या सौं गौने। सुकवि भये रसरहित ताहि सौं ललन सलोने॥ २३५॥

आज कछू औरै भये ठए नये ठिक ठैन।
चित के हित के चुगल ये नित के होहिँ न नैन॥१८७॥

नित के होहिँ न नैन आजु लखि परत लजीले। कछुक सलौने अलस-भरे कछु अहैं रसीले॥ कछु कछु अंजनपुँछे छये नखरे के त्यौरे। सुकवि अरुनताभरे लखे आज कछू औरे॥ २३६॥

अनत बसे निसि की रिसनि उर बर रह्यो बिसेषि।
तऊ लाज आई झुकति खरे लजौंहैं देखि ॥ १८८ ॥

खरे लजौंहैं देखि लाज अँग अङ्ग दबावति। दृग अरसाने लखत नैन नाहिन समुहावत ॥ कहि न सकत कछु जऊ मौन पिय लागत है बिस। उफन रही रिस सुकबि स्याम लखि अनत बसे निस ॥ २३७ ॥

---

*फिरत जु अटकत कटनि बिन रसिक सुरस न खियाल।
अनत अनत नित नित हितनु कत सकुचावत लाल ॥१८९॥

कत सकुचावत लाल नेह नित नयो बनावत। नित मो हाहा खाइ और सौं नैन लगावत॥ तुम का जानौं निलज चोट जानत है गिरत जु। सुकबि कहत क्यौं प्यारी मोकौं घर घर फिरत जु ॥ २३८ ॥

---

†कत सकुचत निधरक फिरौ रतियो खोरि तुम्हैं न।
कहा करौ जो जाइ ये लगैं लगौंहैं नैन ॥ १९० ॥

लगैं लगौंहैं नैन लाल तुमरो कत दोसू। क्यौं कुम्हिलावत बदन करत को तुम पै रोसू॥ विचरो चाहे जहाँ रहहु नित आँनँद मैं रत। कोऊ बिधि नहिँ खोरि सुकवि तुम सकुचत हो कत ॥ २३९ ॥

तेह तरेरौ त्यौर करि कत करियत दृग लोल।
लीक नहीं यह पीक की श्रुतिमनिझलक कपोल ॥१९१॥

श्रुतिमनिझलक कपोल तमोलन छाप न होही। कुंकुम जावक समुझि होत क्यौं कामिनि कोही ॥ बिन पूछे समुझे बिनु जिय क्यौं करत करेरो। तिरछे लखि लखि सुकवि तानि रही तेह तरेरो ॥ २४० ॥

---

* कटनिबिनु = चूर चूर भये बिना ॥ सुरस = यह शृङ्गार रस है ॥ न खियाल = क्या तुम नहीं जानते !! अथवा खेल नहीं है ॥ † यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है।

*कत लपटैयत मोगरैं सो न जु ही निस नैन।
जिहिँ चंपकबरनी किये गुल्लाला-रँग नैन ॥ १९२ ॥

गुल्लालारँग नैनकमल दावदी बदनछवि। हारसिँगार हु अजब विगुन कहि सकै कौन कवि ॥ पारजात रस उदधि अनत मोहि क्यौं वहरैयत। छल अति सीखे सुकवि तजहु गर कत लपटैयत ॥ २४१ ॥

मैं तपाय त्रय ताप सौँ राख्यौ हियौ हमाम।
मति कब हूँ आवैं इहाँ पुलकपसीजे स्याम ॥ १९३ ॥

पुलकपसीजे स्याम इतै जो कब हूँ आवैं। गरम गरम अँसुआन फुहारन धार नहावैं ॥ पुनि तैसिये बतास साँस की लागै उन पैं। सुकवि याहि सौं अति तपाय हिय राख्यो है मैं ॥ २४२ ॥

---

†जो तिय तुम मनभावती राखी हिये बसाय।
मोहि खिझावति दृगनि ह्वै वह ई उझकति आय ॥ १९४ ॥

वह ई उझकति आय दृगन ह्वै हीय विदारति। वह ई तुअ वचनन सँग जनु विषवृन्द बगारति ॥ वहै अमोलकपोलन झलकि मसूसि रही जिय। सुकवि परी मोगैल ‡अँगेरी प्यारे जो तिय ॥ २४३ ॥

सदन सदन के फिरन की +सद न छुटै हरि राय।
रुचै तितै विहरत फिरौ कत विहरत उर आय ॥ १९५ ॥

आय आय कै धाय हाय क्यौं हीय विदारत। दुर्भागन सौं भरी आपु ही पुनि क्यौं मारत ॥ भाललिखी त्यौं साहिहौ मैं सरवेध मदन के। सुकवि तुम्हैं का परी फिरैया सदन सदन के ॥ २४४ ॥

---

* इस कुण्डलिया में ११ फूलों का नाम आता है। † यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है ॥
‡ अँगेरी = अङ्गीकृत करो ॥ + सद = आदत = बान = स्वभाव।

सुभर भर्यौ तुव गुनकननि पचयो कुबत कुचाल ।
क्यौँ धौँ दार्यौ लौँ हियो दरकत नहिँ नँदलाल ॥ १९६ ॥

दरकत नहिँ नँदलाल अघात हु लहे अचूको । अति धुकधूको होत होत नाहिन टुकटूको ॥ कहूँ कौन सौँ सुनै कौन जो कछु संकट हुअ। सुकबि लखो किन आय गुनकननि सुभर भर्यो तुअ ॥ २४५ ॥

केसर केसरकुसुम के रहे अंग लपटाय ।
लगे जानि नख *अनखली कत बोलति अनखाय ॥१९७॥

कत बोलति अनखाय अनख की बात तिहारी । कुंकुमतिलक लिलार लखाति ज्यौँ जावकधारी ॥ ऊँचे ऊँचे साँसन मैलो करि रही बेसर । सुकबि खुसी ह्वै भाषि करत क्यौँ अँगरँग केसर ॥ २४६ ॥

रस के से रुख ससिमुखी हँसि हँसि बोलति बैन ।
गूढ़ मान मन क्यौँ रहे भये †बूढ़रँग नैन ॥ १९८ ॥

भये बूढ़रँग नैन भृकुटि घन सी घहराई । तीखी तीखी दीठ चमक चपला चमकाई ॥ रुकि न सक्यो किहुँ भाँति आइ झलक्यो जनु पावस । सुकवि हु कौँ वहरावत सी तू दरसावत रस ॥ २४७ ॥

मो हू सौँ बातन-लगे लगी जीह जिहिँ नाँय ‡ ।
सोई लै उर लाइयै लाल लागियत पाँय ॥ १९९ ॥

लाल लागियत पाँय हाय क्यौँ मोहि सतावत । जगे रैनि के सोवत क्यौँ नहिँ क्यौँ दुख पावत ॥ छिपि न सकत है अजू लगत मन जब को हू सौँ । या सौँ सुकवि प्रनाम आजु लीजै मो हू सौँ ॥ २४८ ॥

---

* अनखली—कोप के स्वभाव वाली वा अनोखी ॥ राजपुतानी (अणखली)

† वूढ़—इन्द्रवधू । ‡ जिस के नाम में जीभ जा लगी ॥

गहकि गाँस औरै गहै रहे *अधकहे बैन।
देखि खिसौँहैँ पियनयन किये रिसौँहैँ नैन ॥ २०० ॥

किये रिसौँहैँ नैन दोऊ भौँहैँ सतराई । तिरछौँहैँ कै डीठ नासिका हू सिकुराई ॥ अरुनाई लहि बदन लुनाई भई जनु लहलह। सुकवि कहै किमि बैन कण्ठ आँसुन भयो गहगह ॥ २४९ ॥

वाही की चित चटपटी धरत अटपटे पाय ।
लपट बुझावत बिरह की कपटभरे हू आय ॥ २०१ ॥

कपटभरे हू आय झपट सौं बात बनावत । डपट हु नहिँ सरमात निघरघट पुनि समुहावत ॥ छाँडहु खटपट सुकबि करहु बिनती ता ही की। जासौँ गटपट भये आस राखो वा ही की ॥ २५० ॥

---

†दच्छिन पिय ह्वै बामबस बिसराई तिय आन।
एकै बासर के बिरह लागे बरष बितान ॥ २०२ ॥

लागे बरष बितान मनहु एकै दिन माहीँ । ता पै दूजी रैनि भये जनु कलप सिराहीं ॥ रहत सोई हिय सुमिरत जिय ताही कौं छिन छिन । सुकबिं पिया बामा के बस भये है कै दच्छिन ॥ २५१ ॥

बालम ‡बारे सौति के सुनि परनारि बिहार ।
भौ रस अनरस रँगरली रीझ खीझ इकबार ॥ २०३ ॥

रीझ खीझ इकबार अली कौं अधिक सतावत । दुरजोधन लौँ प्रान तजत

---

* आधे के साथ भूत कालिक क्रिया से समाप्त होती है ॥ यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है ॥

† नायिका अन्यों में ॥ दक्षिण पति था सो और बाम के बस हुआ ॥ आन अर्थात् मुझसे प्रतिज्ञा की थी सो भूलगया है तिय ॥ अथ वा सखी सखा से नायक चतुर है तो भी नायिका के ऐसा बस हो गया है कि (आन) और सब बात भूल गया ॥ शेष स्पष्ट ॥ ‡ पारी में ।

सी अति दुख पावत ॥ लहरैं सी लै रही डसी सी जनु अहि कारे। दहकि रही है तिया सुकबि लखि बालम बारे*॥ २५२ ॥

पुनः

रीझ खीझ इकबार भयो तऊ सङ्कट गाढ़ो। सौति एक सौं अधिक भई यह दुख हिय बाढ़ो ॥ सखियन हाहा खाइ कहत समुझावहु प्यारे। सुकबि उनमनी रहत तिया लखि बालम बारे ॥ २५३ ॥

मुह मिँठास दृग चीकने भौंहैं सरल सुभाय।
तऊ खरे आदर खरौ छिन छिन हियो सकाय ॥ २०४ ॥

छिन छिन हियो सकाय हाय सुनि कोमल बिनती। लखि अँग अँग अनुकूल होत संसय अनगिनती ॥ मीठो सबै बिलोकि सुकबि भये चकित नैन-मृग ॥ मीठी बात बनावत मीठो मुँह मिठास दृग ॥ २५४ ॥

रही पकरि पाटी सुरिस भरे भौंहैं चित नैन।
लखि सपने पिय आनरति जगत हु लगति हियै न† ॥ २०५ ॥

जगत हु लगति हिये न बङ्क बातैं बतरावति। छिन छिन लेइ उसास त्यौर तकि तकि ललतरावति ॥ सौ सौ सौंहैं करी सुकबि तउ ताप सहिरही। समुझाये समुझै न हठीली गाँठि गहिरही ॥ २५५ ॥

---

‡अँगुरिनु उँचि भरु भीँत दै उलझि चितै चख लोल।
रुचि सौं दुहूँ दुहून के चूमे चारु कपोल ॥ २०६ ॥

चूमे चारु कपोल दुहूँ कीनो मनभायो। दुहुँन रोमाञ्चित गात सेदबिन्दुन

---

* भोले अथवा धृष्ट। † लालचन्द्र इसी ठिकाने नायकनायिकावर्णनरूप प्रथम प्रकरण की समाप्ति मानते हैं। और यहाँ से संयोग शृङ्गार का द्वितीय प्रकरण प्रगट करते हैं।

‡ साधारण में तो चुम्बन में दोनो के उचकने की अथवा भींत पर बोझा देने की आवश्यकता नहीं। इस कारण इस आवश्यकता के दिखाने को दूसरी कुण्डलिया है।

सौं छायो ॥ इक इक कर सौं गलवाहीं दै खरे संक विनु। दूजे कर गहि सुकवि रहे अँगुरी गँसि अँगुरिन ॥ २५६ ॥

पुनः

चूमे चारु कपोल मुड़ेरा वीच हिँ राख्यो । किहुँ विधि ऊँचे होइ दोऊ दोऊगर कर नाख्यो ॥ उर उर सौं कसि एक करत जनु सुकवि संक विनु । थाकि थकि झुकि झुकि उँचत फेर भरु दै पगअँगुरिनु ॥ २५७ ॥

---

*परयौ जोर विपरीत रति रुपी सुरत रन धीर ।
करति कुलाहल किंकिनी गह्यो मौन मंजीर ॥ २०७ ॥

गह्यो मौन मंजीर चरन थिर भये छिति माहीं । चंचल चलत नितम्ब कुच हु दोउ थिरकि सुहाहीं ॥ मदनविजय जनु हार कहत हिय पै लहरयो जो । सुकवि सवै विपरीत सुरत विपरीत परयो जो ॥ २५८ ॥

नीँठि नीँठि उठि वैठि हू पियप्यारी परभात ।
दोऊ नींदभरे खरे गरे लागि गिरिजात ॥ २०८ ॥

गरे लागि गिरि जात †अधकहे वैन उचारत । कछु मूँदे कछु खुले दृगन दृग जोरि निहारत ॥ ढीले ढीले कर सौं कर गहि ठठकि रहत सुठि । सुकवि झुके से जात आज दोउ नीँठि नीँठि उठि ॥ २५९ ॥

विनती रतिविपरीत की करी परसि पियपाय ।
हँसि अनवोले ही दियो ऊतर दियो वताय ॥ २०९ ॥

ऊतर दियो वताय विना ही ऊतर दीनें । हीय दियो हुलसाय विना ही जतनन कीनें ॥ वड़े मनोरथ वा ही छन पिय के अनगिनती । सुकवि वधाई भई आजु मानी पियविनती ॥ २६० ॥

---

* विपरीतरति का भार पड़ा सुरतरूप रण में धीर नायिका अड़ रही है । † भूतकालिक धातु के साथ 'आधा' शब्द का समास होता है तब 'आधा' के स्वर ह्रस्व हो जाते हैं ।

रमन कह्यौ हँसि रमनि सौँ रतिबिपरीतबिलास ।
चितई करि लोचन सतर सगरब सलज सहास ॥ २१० ॥

सगरब सलज सहास दृगन पिय को चित चोर्‍यो । बिन ही ऊतर दिये चित्त को संसय तोर्‍यो ॥ सुकबि पीय की आस बढ़ी मन गयो हुलास बसि । 'बलिहारी बलिहारी' एतो रमन कह्यो हँसि ॥ २६१ ॥

प्रीतम दृग मिहिँचत प्रिया पानिपरससुख पाय ।
जानि पिछानि अजान लौं नेक न होति जनाय ॥२११॥

नेक न होति जनाय रोकि उमँगन जनु राखति । सुरभङ्ग हु की सङ्का करि कछु हू नहिँ भाषति ॥ जिय हिय मैँ धरि ध्यान सबै नासत दुख हीतम* । सुकबि सेद कर लगैँ हीय की जानी प्रीतम ॥ २६२ ॥

---

†सरस सुमिल चिततुरँग की करि करि अमित उठान ।
गोइ निबाहे जीतिये प्रेमखेलचौगान ॥ २१२ ॥

प्रेमखेलचौगान चाहचाबुक चटकावहु । लाजलगाम हिँ गहहु तऊ ढीली ढरकावहु ॥ कोटि चबावन सहहु अहै नहिँ सूधी चौसर । सुकबि चहहु जीतन तौ धावहु लखि कै औसर ॥ २६३ ॥

दृग मीँचत मृगलोचनी भर्‍यो उलटि भुज बाथ ।
जानगई तिय नाथ कौ हाथपरस ही हाथ ॥२१३॥

हाथ परस ही हाथ नाथ को तिय पहिचानी । सेद कम्प रोमञ्च ततच्छन लच्छन जानी ॥ आनँदविन्दुन रही उमँगि पिय को हिय सीँचत । बरसि परी जनु सुधा सुकबि स्यामादृग मीँचत ॥ २६४ ॥

---

* हृदय का तमस्वरूप दुःख । † यह दोहा कृष्णदत्त की टीका में नहीं है ॥ (तात्पर्य) अनुरागपूर्वक उत्तम मेल करके चित्तरूप घोड़े के भाँति भाँति के धावे करके गेँद के निवाहने से अथवा छिपा के निवाहने से प्रेम खेल का मैदान जीता जाता है । इसका अनुवाद हरिप्रसाद ने योँ किया है । "अस्रेन मिलित चित्तः सरसं चोत्थानममितमपि कृत्वा । चतुरस्त्रे खेलस्त्वं निर्वाहय गोलकस्त्वेहम्" ॥

*मैं मिस ही सोयौं समुझि मुँह चूम्यौं ढिग जाय ।
हँस्यौ खिसानी गर गह्यौ रही गरे लपटाय ॥ २१४ ॥

रही गरे लपटाय नहीँ मानी जु मनाये । गयो आपु ही मान वान जब मैन जमाये ॥ धीमैं धोखो खाइ आइ कसि गई भुजन पैं । नैन निचौंहैं किये सुकवि हँसि अधर पियो मैं ॥ २६५ ॥

---

†मुँह उघारि प्यौ लखि रहे रह्यौ न गौ मिस सैन ।
फरके ओठ उठे पुलक गये उघरि जुग नैन ॥ २१५ ॥

गये उघरि जुग नैन कपोलन हाँसी छाई । प्रगट भई मुसकानि दन्त-दुति हू दरसाई ॥ ग्रीवा नासा मुरी लाज रस हरस भरो प्यौ । सुकवि चित्र सो भयो लखत छवि मुँह उघारि प्यौ ॥ २६६ ॥

दोऊ ‡चोरमिहीँचनी खेलि न खेल अघात ।
दुरत हिये लपटाय कै छुवत हिये लपटात ॥ २१६ ॥

छुवत हिये लपटात दोऊ दोउन तरसावत । चूमि कपोलन छिपी छिपी कछु वात वनावत ॥ नैनन हीँ मैं हँसत प्रीति जानत कोउ कोऊ । सुकवि मैन रस लूटि रहे हैं तिय पिय दोऊ ॥ २६७ ॥

---

* मैं बहाने से सो गया, तब मुझे सोया समझ नायिका ने मेरा मुह चूमा । मैं हंसा । वह खिसानी = लजाई । मैंने गलबाहीं दी । तब यह भी गले में लिपट गई । लालचन्द्र "मिसहा" पाठ रखते हैं और मिसहा का अर्थ बहाना करने वाला लिखते हैं । संस्कृत टीका में भी मिसहा पाठ है ॥

† नायिका बहाना करके सोई थी पर जब उघाड़ के पति मुख देखने लगा तब शयन के बहाने (मिस) नहीं रहा गया ॥ ओठ फरके, पुलक हुआ और आंखें खुल गईं ।

‡ चोर मिहीँचनी = आंख मुँदौअल । (अंखमूँदनी सब्र तिहारे न खेलि हैं) ।

हँसि हँसि हेरति नवल तिय मद के मद उमदाति ।
बलकि बलकि बोलति बचन ललकि ललकि लपटाति ॥२१७॥

ललकि ललकि लपटाति भुजन कसि कराठ लगावति । रुकि रुकि झुकि झुकि झमकि फेर जिय अति उमगावति ॥ कबहुँक समुहैं करति अरुन मुख कवहुँक फेरति । सुकबि तिरीछे डीठि किये तिय हँसि हँसि हेरति ॥ २६८ ॥

निपट *लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेइ ।
त्यौं त्यौं अति मीठी लगै ज्यौं ज्यौं ढीठो देइ ॥ २१८ ॥

ज्यौं ज्यौं ढीठो देइ बदन सौं घूँघट टारै । ज्यौं ज्यौं अनिमिष नैन नैन सौं जोरि निहारै ॥ ज्यौं ज्यौं बलकत बैन लटपटे कहत छबीली । त्यौं त्यौं सुकवि सुहावनि लागै निपट लजीली ॥ २६९ ॥

---

†खिलित बचन अधखुलित दृग ललित सेदकन जोति ।
अरुनबदन छबि मद छकी खरी छबीली होति ॥ २१९ ॥

खरी छबीली होत खरी निरखत चुप साधे । नैन कँपावत बैन कहत पुनि आधे आधे ॥ झूमि उझकि झुकि चलत कवहुँ पुनि सखिन संग मिलि । कवहुँ न वोलत बोल कवहुँ पुनि हँसत सुकबि खिलि ॥ २७० ॥

रूप सुधाआसवछक्यो ‡आसव पियत बनै न ।
प्यालेओट प्रियाबदन रह्यो लगाये नैन ॥ २२० ॥

रह्यो लगाये नैन सुकवि विनु पलक झुकाये । बैन मैनरसऐन सुनन श्रुति-

---

* लजीली = लाजवाली ।' वाला' प्रायः पूर्व शब्द में मिल कर 'ईला' हो जाता है जैसे रसवाला, चटकवाला, छविवाला, । रसीला, चटकीला, छवीला । इसमें पूर्वपद में कोई स्वर दीर्घ हो तो ह्रस्व हो जाता है । जैसे ; लाजवाला = लजीला, साजवाला = सजीला, ढङ्गवाला = ढँगीला इत्यादि । स्त्री लिङ्ग में ईकारान्त हो जाता है । † खिलखिलाये वचन । ‡ आसव = मद ।

जुग ललचाये ॥ अङ्ग अङ्ग आलिङ्गनहित उमगाये चारू । ठठकिरह्यो मोहिनीमन्त्र मार्‍यो जनु मारू ॥ २७१ ॥

गली अँधेरी साँकरी भौ भटभेरो आनि।
परे पिछाने परसपर दोऊ परस पिछानि ॥ २२१ ॥

दोऊ परस पिछानि दोऊ दोउन पहिचान्यो। उन कर चूरी लही लकुट उन उन कर जान्यो ॥ अहो कौन जू कौन कहनि मधुराई हेरी । सुकवि स्याम स्यामा भेटे लहि गली अँधेरी ॥ २७२ ॥

लटकि लटकि लटकत चलत डटत मुकुट की छाँह।
चटक भर्‍यौ नट मिलगयो अटक भटक बनमाँह ॥२२२॥

अटक भटक बनमाँह लकुट कर लिये सुहावत । कनक कटक कर छटा छटकि रही हिय हरसावत॥ पीरे पट को पटुका कसि निरखत जमुनातट । सुकवि नैन में खटकि रही लटकी दोऊ लट ॥ २७३ ॥

अहे *दहेंड़ी जिन धरै जिन तू लेइ उतारि।
नीकै है छींकौ छुए ऐसैं हीं रहि नारि ॥ २२३ ॥

ऐसैं हीं रहि नारि दोऊ कर ऊँचे कीने। पीन पयोधरसम्भुजुगल को दरसन दीने ॥ ऊँचे दृग हू की दिखरावत छवि मद ऐंड़ी । सुकवि खरी रह ऐसे हि लीने अहे दहेंड़ी ॥ २७४ ॥

मन न मनावन कौं करै देत रुठाय रुठाय।
कौतुक लाग्यो पिय प्रिया खिझ हू रिझवत जाय॥ २२४॥

खिझहू रिझवत जाय पीय तिय आनँद बरसत। टेढ़ी भौंहन लखत छन

---

* कृष्णदत्त कवि की टीका वाले ग्रन्थ में यह दोहा नहीं है। दहेंड़ी दही की हांड़ी। ममास।

हि छन मैं दृग तरसत ॥ पीठ देइ बैठन मुखमोरन हुलसावत तन । तीखे तीखे वचन सुकबि को चोरिरहे मन ॥ २७५ ॥

---

* छ्वै छिगुनी पहुँचौ गिलत अति दीनता दिखाय ।
बलिबामन कौ ब्यौंत सुनि को बलि तुम्हैं पत्याय ॥ २२५ ॥

को बलि तुम्है पत्याय कथा सुनि बलिबामन की । तीन पाँव तैं जगत नापि कीनी निज मन की ॥ धरे मच्छ अवतार बड़े ही बड़े गये है । सुकबि गहत हो हाथ नाथ पहिले छिगुनी छ्वै ॥ २७६ ॥

---

† चिरजीवो जोरी जुरै क्यौं न सनेह गँभीर ।
को घटि ये वृषभानुजा वे हलधर के बीर ॥ २२६ ॥

वे हलधर के बीर धर्म के रूप बखाने । धरत जगत को भार गोपगोपिन मनमाने ॥ ये हू रस की दैन पतितगनपावन गोरी । सुकबि पापविनसावन यह चिरजीवो जोरी २७७ ॥

---

* छिगुनी कनिष्ठिका । † नायिका नायक की अन्तरङ्गिणी सखी हास्य पूर्वक सखी से कहती है । वृषभानुजा राधा वा वृषभ की अनुजा । हलधर के बीर = बलभद्र के भाई वा वृषभ के भाई । धर्म के रूप = धार्मिक वा वृष । रस = आनन्द वा दूध । और समस्त शेषभाग भी दोनों ओर लगता है । संस्कृत टीकाकार ने कदाचित् इस हास्य को अश्लील समझा इस लिये वे कहते हैं कि ये बड़े की बेटी हैं वे बड़े के भाई हैं स्नेह होना ही चाहिये । उनका लेख यों है । "'चिरजीवो' इति राधाकृष्णयोर्युग्मं चिरञ्जीवतु अनयोर्गम्भीरःस्नेहः 'क्यों न जुरै' किं न भवेत् । कथमित्याह 'कोघटि' अनयोर्मध्येकोन्यूनः कुलशीलसौन्दर्य्यादिभिः को हीनः । उभौ समाविति यावत् तदाह इयं राधा वृषभानुकन्या अयं कृष्णः बलभद्रभ्राता । समानकुलत्वात् अतिसख्यं युक्तमेव" । परन्तु इसी के आगे उनने लिखा है कि "श्लेषः कथन शान्तरसमाह" इससे जान पड़ता है कि उन्हें हास्य भी भासित था । अथवा यह भी अर्थ झलकता है कि वे बलभद्र के भाई हैं अर्थात् चन्द्रवंशीय हैं और राधा 'वृषभानुजा' अर्थात् वृषराशिस्थ (जेठवाले प्रचण्ड) भानु = सूर्य की बेटी हैं तो ऐसे सूर्यवंशीय चन्द्रवंशीय का स्नेह उचित ही है । यह दोहा हरिप्रसादकृत अनुवाद में नहीं है ॥

कहा लड़ैते दृग करे परे लाल वेहाल।
कहुँ मुरली कहुँ पीतपट कहूँ मुकुट बनमाल ॥ २२७ ॥

कहूँ मुकुट वनमाल कहूँ पुनि लकुट गयो परि। कहुँ गुञ्जा को भवा कहूँ कलँगिया गई ढरि ॥ बोलत अटपट बात सुनत कछु नाहिँ कहे ते। सुकवि मोहनीभरे करे दृग कहा लड़ैते ॥ २७८ ॥

यौँ दलमलियत निरदई दई कुसुम से गात।
कर धर देखौ धरधरा अजौँ न उर कौ जात ॥ २२८ ॥

अजौँ न उर को जात धरधरा कर धर देखो। सुकवि सुमिरतै सेद कपोलन आवत पेखो ॥ कंचुकि दरकी लरकी लर विथुरे कच रहियत। कर की चूरी करकिगई अँग यौँ दलमलियत ॥ २७९ ॥

मै तो सौँ कै वा कह्यौ तू जिन इन्हैँ पत्याय।
लगालगी करि लोइननि उर मैं लागी लाय ॥ २२९ ॥

उर मैँ लागी लाय पन्यो तव तैँ पीरो अँग। कारे भये कपोल रैन दिन के आँसुनसँग ॥ सदा उनमनी रहति जाति देखी नहिँ मो सोँ। सुकवि अजहुँ तजि प्रीति कह्यो कै वा मैँ तो सोँ ॥ २८० ॥

पुन:

उर मैं लागी लाय धुँआ सी छाई अगन। दृग जनु अदहन वहत दहकि रह्यो हाय छाम तन ॥ भये ज्वाल से साँस रह्यो ढिग जात न मो सोँ। तू नहिँ मानी सुकवि कह्यो कै वा मैँ तो सोँ ॥ २८१ ॥

मन न धरति मेरो कह्यो तू आपने सयान।
अहे परनि परि प्रेम की परहथ* पार न प्रान ॥ २३० ॥

परहथ पार न प्रान जाउँ चलि मान छबीली। नई सासरे आइ होत है

* परहथ = पराये हाथ।

क्यों गरवीली ॥ छन मैं जैहै सुघरपनो पीरो परिहै तन । परकर परि कै सुकवि फेर फिरि आवत नहिँ मन ॥ २८२ ॥

---

* बहक न इहिँ बहिनापने जब तब बीर बिनास ।
बचै न बड़ी सबील हू चील्हघौंसुआ मास ॥ २३१ ॥

चील्हघौंसुआ मास बचै नहिँ कोऊ उपायन । आँचनिकट नवनीत कहो कैसे गरि जाय न ॥ या सों रहनि सम्हारि समुझि कै अपने ही मन। बहनापन कछु निबह न सुकबि या सु मैं बहक न ॥ २८३ ॥

तू रहि सखि हौं हीं लखौं चढ़ न अटा बलि बाल ।
बिन ही ऊगे ससि समुझि दैहैं अरघ अकाल ॥ २३२ ॥

दैहैं अरघ अकाल सबै दिन भूखे प्यासे । मानि बदन तुअ चन्द होइहैं अधिक हुलासे ॥ चौथ हिँ पूरन बिधु लखि घबरैहैं पण्डित हू । सुकबि हठ न जो तजै ढाँपि मुख आउ अटा तू ॥ २८४ ॥

दियौ अरघ नीचे चलौ संकट भाने जाय ।
सुचिती ह्वै औरै सबै ससि हिँ बिलोकैं आय ॥ २३३ ॥

ससि हिँ बिलोकैं आय सबै करि करि मन सुचिती। पूरन बिधु क्यों भयो जाइ यह जिय सों दुचिती ॥ चहूँ चकोर हु गिरें परत चाहत रस पीयो । सुकवि अटकि क्यों रही अरघ तो बिधि सों दीयो ॥ २८५ ॥

नाक चढ़ै सीवी करै जितै छबीली छैल ।
फिर फिर भूलि उहै गहै पिय कँकरीली गैल ॥ २३४ ॥

पिय कँकरीली गैल गहै न सरल मगु आवै । ज्यों ज्यों चिहुँकति तिया

---

*यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है इसमें कोई उत्तम उक्ति नहीं है, अश्लील औ वीभत्स प्रगट है ॥

ताहि त्यों अधिक सुहावै ॥ तरुतर रुकि रुकि कहो कहा सुखरासि लहै ना। भली गली सों सुकवि रसीलो जान चहै ना ॥ २८६ ॥

लखि लखि अँखियनि अधखुलिनि अङ्ग मोरि अँगिराय।
आधिक उठि लेटति लटकि आलसभरी जँभाय ॥२३५॥

आलसभरी जँभाय चुटाकिया वहुरि वजावति। तोरि तोरि अकराँस दृगन मलि भौंह उचावति ॥ सेद कपोलन सटे समेटति कचन कवहुँ सखि। सुकवि सवै निसि जगी मूँदि दृग लेटति लखि लखि ॥ २८७ ॥

दोऊ चाहभरे कछू चाहत कह्यो कहैं न।
नहिं जाँचक सुनि सूम लौं वाहर निकसत वैन ॥ ॥२३६॥

वाहर निकसत वैन नाहिँ दोउ हँसत कपोलन। ललचौहैं दृग अधर फरक चाहत जनु वोलन ॥ झुकि झुकि उझकत भौंह भाव वूझत कोउ कोऊ। जादू सो करि दियो सुकवि दोउन पै दोऊ ॥ २८८ ॥

---

*उयौ सरदराकाससी करति क्यौं न चित चेत।
मनो मदनछितिपाल को छाँहगीर छवि देत ॥ २३७ ॥

छाँहगीर छवि देत चमक जेहिँ चहुँ दिसि छाई। फूलनवरपासरिस नखत की पाँति सुहाई ॥ कोटि कोटि ज्यौं चौंर कास त्यौं फूलिरहे वर। सुकवि सिपाहिनसरिस कुमुदछविपुंज उयो सर ॥ २८९ ॥

---

†नावक सर से लाय कै तिलक तरुनि इत ताकि।
पावकझर सी झमकि कै गई झरोखा झाँकि ॥ २३८ ॥

गई झरोखा झाँकि झझकि झझकति मतवारी। झुलनी झूमि झुमाइ

* यह दोहा लालचन्द्रिका में नहीं है। † नावकसर = नलिका के वाण ॥

झपकि झपटावति सारी ॥ झन झन झमकति झनकावति झब्बा बसकर से। सुकबि भौंहधनु तानि लाइ गई नावक सर से ॥ २९० ॥

सुनि पगधुनि चितई इतै न्हाति दिये ही पीठि।
चकी झुकी सकुची डरी हँसी लजीली दीठि ॥ २३९ ॥

हँसी लजीली डीठ निरखि चटपट मुख मोरयो। ओदे पट तन ढाँपि फुरहरी लै चित चोरयो ॥ ग्रीवा कछुक झुकाइ नेह सों लखन लगी पुनि। सुकबि हियो बस कियो तिया पिय की सुनि पगधुनि ॥ २९१ ॥

सहित सनेह सकोच सुख स्वेद कंप मुसकानि।
प्रान पानि करि आपने पान दिये मो पानि ॥ २४० ॥

पान दिये मोपानि प्रान कर लै छन माहीं। *अधरसुधा बिनु पान प्रान बहुरैं वे नाहीं ॥ जादू सो करि गई कहा धौं मन्द मन्द कहि। चन्दमुखी बिनु सुकबि ताप अब जात नाहिं सहि ॥ २९२ ॥

रही दहेंड़ी ढिग धरी भरी मथनियाँ बारि।
कर फेरति उलटी रई नई बिलोअनहारि ॥ २४१ ॥

नई बिलोअनहारि हारि गई छन हीं माहीं। भई रोमञ्चित अङ्ग अङ्ग पुनिकम्प सोहाहीं ॥ सेदभरी ताकि बात कहत है ऍड़ीबैंड़ी। सुकबि बारि मथि दियो धरी ही रही दहेंड़ी ॥ २९३ ॥

बेसरमोतीदुतिझलक परी ओंठ पर आय।
चूनो होइ न चतुर तिय क्यौं पट पोंछो जाय ॥ २४२ ॥

क्यौं पट पोंछोजाय सुकबि नाहिन यह चूनो। पीक कपोलन नाँहि चुनी चमका दुतिदूनो ॥ सेद नाँहि यह केसकुसुम की है मरन्दझर। साँस भरत क्यौं अली करत है मैलो बेसर ॥ २९४ ॥

---

* अधरसुधा के पिये बिना ॥

टटकी धोई धोवती चटकीली मुखजोति ।
फिरति रसोई के बगर जगरमगर दुति होति ॥ २४३ ॥

जगरमगर दुति होति चमाचम चमकति चूरी । सेद कपोलन पोंछि रही लागत अति रूरी ॥ झाँकि झरोखे चलति दिखावति निजछवि छटकी । सुकवि हिये अटकी खटकी दृग तियरुचि टटकी ॥ २९५ ॥

छनक चलति ठठकति छनक भुज प्रीतमगल डारि ।
चढ़ी अटा देखति घटा बिज्जुछटा सी नारि ॥ २४४ ॥

बिज्जुछटा सी नारि बटा से नैन चलावत । हटा हटा कचलटा निरखि पियहिय हरषावत ॥ हेरँ हेरँ बतराइ रही है हरति सुकबिमन। छन अटकति छन चलति ठठकि छन ठुमकि मुरति छन ॥ २९६ ॥

राधा हरि हरि राधिका बनि आये संकेत ।
दंपति रतिबिपरीतसुख सहज सुरत हू लेत ॥ २४५ ॥

सहज सुरत हू लेत ताहि को मानुष जानै। अनअधिकारी सुनै कौन अरु कौन बखानै । काटत जम के फन्द मिटावत सब भवबाधा । सुकवि दोऊ हैं एक स्याम हरि गोरी राधा ॥ २९७ ॥

चलत घैर घर घर तऊ घरी न घर ठहराति ।
समुझि उही घर कौं चलै भूलि उही घर जाति ॥ २४६ ॥

जाति उही घर समुझि भूलि हू मग मग भटकति । घरहाइन की घोर घुरक सुनि हू नहिं अटकति ॥ घूमि तितै ही लखति सुकवि औसर अनऔसर । तिय राची घनस्याम भले ही चलत घैर घर ॥ २९८ ॥

*नाहिँ नहीँ नाहीँ ककै नारि निहोरे लेय।
छुअत ओठ बिच आँगुरिन बिरी बदन प्यौ देय॥ २४७॥

बिरी बदन प्यौ देय बाम बाहीँ गर दीने। दच्छिन कर छ्वै चिबुक सरस रस-बरसा कीने॥ परसहरस लहि परबस ह्वै गई नारि नवीना। सुकबि चहत तऊ मुरि मुरि भाषत नाहि नहीँ ना॥ २९६॥

गदराने तन गोरटी ऐपन आड़ लिलार।
†हूठ्यो दै अठिलाय दृग करै गँवारि सु मार॥ २४८॥

करै गँवारि सु मार मार की आगि जगावति। कबहुँक ढाँपति बदन कबहुँ सारी सरकावति॥ हँसति ठठाइ डटाइ नैन अँग लसत सुहाने। ऐँठि ऐँठि कै चलति सुकबि तिय तन गदराने॥ ३००॥

---

‡जाति मरी बिछुरत घरी जलसफरी की रीति।
छन छन होति खरी खरी अरी जरी यह प्रीति॥२४९॥

अरी जरी यह प्रीत भरी दुख सौँ नित बाढ़ति। सुख को लेस न देति करेजो सो जनु काढ़ति॥ केहूँ होत न धीर आह सौँ फाटत छाती। सूखि गई दोऊ दीठि सुकवि जउ भरि भरि जाती॥ ३०१॥

+द्वैजसुधादीधितकला वह लखि दीठि लगाय।
मनौ अकास अगस्तिया एकै कली लखाय॥ २५०॥

एकै कली लखाय लखत हियरो हरसावत। अनगिन तारे जुही जूह जनु

---

* यह दोहा कृष्णदत्तकवि के ग्रन्थ मेँ नहीँ है॥ क कै = कैकै। 'दो १६ मेँ भी ऐसाही है' संस्कृत टीका मेँ "नाकमोरि नाँही क कै" पाठ है॥

† कटि पर हाथ लगाकर। ‡ यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ मेँ नही है॥ + यह दोहा अनवर चन्द्रिका मेँ नहीँ है।

चित तरसावत ॥ या छवि वरनत किते सुकवि हू जात मूक व्है। ठठकि चित्र से होत विलोकत सखि लोचन द्वै ॥ ३०२ ॥

सकुचि सरकि पियनिकट तैं मुलकि कछुक तन तोरि।
कर आँचर की ओट करि जमुहानी मुख मोरि ॥ २५१ ॥

जमुहानी मुख मोरि वाम कर चुटकी* दीनी। छवि की चुटकी देत† पीय हिय चुटकी‡ लीनी ॥ चुटकी× भर यह कान्ति रही जारत जुवजनजिय। सुकवि सुहावनि निरखि रही है सकुचि सरकि पिय ॥ ३०३ ॥

वेंदी भाल तँवोल मुख सीस सिलसिले वार।
दृग आँजे राजे खरी येही सहज सिँगार ॥ २५२ ॥

ये ही सहज सिँगार हार फूलन को रूरो। गोदन गुद्यो कपोल दोऊ कर सुन्दर चूरो ॥ कंचुकिकसे उरोज हाथ पग राची मेँदी। छला छिगुँनियाँ छज्यो सुकवि मुख कुंकुम वेंदी ॥ ३०४ ॥

पुनः।

ये ही सहज सिँगार लसै जो पट चटकीलो। कण्ठ साँवरी पोत नाक वेसर चमकीलो ॥ रेख महावर रची रची कर चरनन मेँदी। सुकवि अलक जुग भौंह मध्य राजत वर वेंदी ॥ ३०५ ॥

¶विधि विधि कै निकरै टरै नहीं परे हू पान।
चितै कितै तैं लै धरयो इतौ इतै तन मान ॥ २५३ ॥

इतो इते तन मान आन कैसें धौं धारयो। यह माखन सो रूप कठिन

---

* चुटकी बजाई। † भिक्षा। ‡ चिकोटी। × क्षण भर। ¶ सखी का वचन मानवती से। भाँति भाँति कर नायक ने मनाया तेरा मान जाता नहीं और पांव भी पड़े। इतना कह सखी हाथ से बता कहती है देख कहां से ले रक्खा इतना बड़ा इतने छोटे से शरीर में क्रोध, (इति लालचन्द्रिका)। पूर्वार्द्ध में प्रगट नहीं है 'पान' भाषाच्युत है ॥ यह दोहा हरिप्रसाद के अनुवाद तथा देवकीनंदन की टीका में नहीं है।

हियरो करि डारयो ॥ सीधी तजि कै बान भई टेढ़ेपन की निधि । इती अनख दई हाय सुकवि धौं कहा लख्यो बिधि ॥ ३०६ ॥

बतरसलालच लाल की मुरली धरी लुकाय ।
सौंह करै भौंहनि हँसै देन कहै नटि जाय ॥ २५४ ॥

देन कहै नटि जाय फेर मुलकति ललचावति । कछुक कछुक दिखराय फेर अँचरान छिपावति ॥ झूमि झुमाय ठठोली कै कीनो मोहन बस । भूलि गई धन धाम सुकबि राची तिय बतरस ॥ ३०७ ॥

पुन:

देन कहै नटि जाय बाँसुरी लै लचकावति । उझकि झुमाय घुमाय ऐंचि अँचरान छिपावति ॥ छीनाछीनी करत गोपिका भई प्रेमबस । सुकबि आप कौं भूलि गई परि हरि के बतरस ॥ ३०८ ॥

गुड़ी उड़ी लखि लाल की आँगन आँगन माँह ।
बौरी लौं दौरी फिरै छुवति छबीली छाँह ॥ २५५ ॥

छुवति छबीली छाँह तिया तन मन धन भूली । मुलकि मुलकि कै पुलकि रही अँगअंगन फूली ॥ होइ रोमाञ्चित बञ्चित सी दृग फेरि रही सखि । उड़ी उड़ी सी फिराति सुकबि वह गुड़ी उड़ी लखि ॥ ३०९ ॥

लखि गुरुजनबिच कमल सौं सीस छुवायो स्याम* ।
हरिसम्मुख करि आरसी हिये लगाई बाम † ॥ २५६ ॥

हिये लगाई बाम आरसी हरिसंमुख कै । मनिथम्भ हिँ आलिङ्गि रहे हरि लालच दृग दै‡ ॥ तब राधा विकस्यो सरसिज लै मूँदि दियो सखि + । हरि लिलार छ्वै रहे‖ सुकवि यह कोउ न सक्यो लखि ॥ ३१० ॥

---

* चमा माँगी । † तुम मेरे हृदय में हो । ‡ कब मेल होगा । + रात को । ‖ धन्यभाग ॥

मैं हो जान्यौ लोयननि जुरत बाढ़िहै जोति ।
को हो जानत दीठि कौं दीठि किरकिरी होति ॥ २५७ ॥

दीठि किरकिरी होति उमँगि अँसुवान बहावति । नींद हरति ह्वै अरुन देइ दुख अति भभरावति ॥ भींजि हु सूखी रहति कलेस न जाय बखान्यो । आँखि आँखि कौं किरकिरात नहिँ मैं हो जान्यो ॥ ३११ ॥

पुन:

होति दीठ के लगत आँख सौं आँसुन की झर । सुकवि पलक भभराइ उठत पुनि ताही औसर ॥ पुतरी तिरमिर होत परत नहिँ कछु दरसान्यो । डीठ डीठ कौं किरकिरात नहिँ मैं हो जान्यो ॥ ३१२ ॥

हरिछबिजल जब तैं परे तब तैं छन निबरै न ।
भरत बरत बूड़त तरत रहत घरी लौं नैन ॥ २५८ ॥

रहत घरी लौं नैन ताहि पै अति चकराते । ऐंचे हू पै फेरि घूमि ता ही दिसि जाते ॥ झूलरहे हैं सुकवि प्रेम के फन्द माँहि परि । सूखत भींगत उबलत दोउ दृग लहि छबिजल हरि ॥ ३१३ ॥

अलि इन लोयन कौं कछू उपजी बड़ी बलाय ।
नीरभरे नितप्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय ॥ २५९ ॥

तऊ न प्यास बुझाय रहत हैं मानौं सूखे । नेहचीकने तऊ लखत दस हूँ दिस रूखे ॥ इन डीठिन कौं डीठि लगी है हाय जाउँ बलि । सुकवि बताउ उपाय बालपन की प्यारी अलि ॥ ३१४ ॥

पुन:

प्यास बुझाय न कछू रहत सूखे से दोऊ । लरजत लालचभरे सरस निरखत नहिं कोऊ ॥ सुकवि सदा घनस्याम हिं पै ये टमकत बलि बलि । इन नैनन कौं हाय कहा धौं भयो देखु अलि ॥ ३१५ ॥

*अलि इन लोयनसरनि को खरो विषम संचार ।
लगे लगाये एक से दुहुअन करत सु मार ॥ २६० ॥

दुहुअन करत सु मार अचानक हीय बिदारत। साँस उड़ाइ जराइ जिगर जलआँसू ढारत ॥ वायुअग्निजलअस्त्र सक्ति सौं भरे जाउँ बलि । बिन गुन धनु सौं चलत सुकबि सर अजब अहैं अलि ॥ ३१६ ॥

लोभलगे हरिरूप के करी † साट जुरि जाय ।
हौं इन बेची बीच ही लोयन बड़ी बलाय ॥ २६१ ॥

लोयन बड़ी बलाय अहैं नट के से बट्टा । दरस अमोलक मोल मानि कीनो जनु सट्टा ॥ मेरे सुकबि कहाइ मोहि बेची लालच करि । क्यौं धौं लई खरीद कहा धौं लोभलगे हरि ॥ ३१७ ॥

नैना नेक न मानहीं कितौ कह्यौ समुझाय ।
तन मन हारे हू हँसैं तिनसौं कहा बसाय ॥ २६२ ॥

तिन सौं कहा बसाय सखी अपने जु कहावत । तऊ जरावत जीय ललचि आँसून वहावत ॥ सदा तरसतै रहत दरसहित ये दिन रैना । सुकबि मान मरजादा खोई अलि इन नैना ॥ ३१८ ॥

पुन: ।

‡तिन सौं कहा बसाय लाज जिन धोइ बहाई ।औरन हियरो हारि देत

---

* अपने को लगे तोभी दोनोको मारकरते हैं । और लगाये जाय तोभी दोनों को मारकरते है ॥ वा अपने को लगे अथवा अपनी ओर से दूसरे को लगाये जाँय तो (दुहुअन एक से) दोनों प्रकार से एक से होके अपने ऊपर मारकरते हैं ॥

† सट्टा किया । ‡ इस कुण्डलिया के लिये दोहे का अर्थ यों समझना । खण्डिता सखी से । नायक की (ही) हृदय मे (नैना नेक न मान) न कुछ नय है न मान है । कितना समझाया तो भी दूसरी से तन मन हारे हैं । औ हसते हैं अब इन से क्या बस चले ।

जनु हमैं बधाई ॥ ऐसे निघरघटन सों सुकवि तजे हम बैना। मानस मान न जासु जासु नै ना कछु नैना ॥ ३१९ ॥

ढरे ढार तेहीं ढरत दूजे ढार ढरैं न।
क्यौं हूँ आनन आन सौं* नै ना लागत नैन† ॥२६३॥

लागत नैन न कोऊ सों पुनि पुनि उत हेरैं। किये कोटि हू जतनन रुख वाही दिस फेरैं ॥ मूँदे हु ताही लखैं खुले व्है देखत नित जेहिं। कहो कोऊ कछु सुकवि रहैं ये ढरे ढार तेहिं ॥ ३२० ॥

कहत सबै कवि कमल से मो मत नैन पषान।
‡नतरक कत इन विय लगत उपजत विरहकृसान॥ २६४॥

उपजत विरहकृसान नैन सों नैन भिरत जब। घरहाइनि पै चोट करत घबराइरही सब॥ इन के बोझन मरत सौति गई उतरि बदनछवि। सुकवि व्यर्थ इन दृगन कमल से कहत सबै कवि ॥ ३२१ ॥

+ साजे मोहनमोह कौं मो हीं करत कुचैन।
कहा करौं उलटे परे टोने लोने नैन ॥ २६५ ॥

टोने लोने नैन हहा ये हीय दहत हैं। तकि तकि गोकुलगैल नीरनद उमँगि बहत हैं। लगत रैन नहिं छनक लगे उनसों बिनु काजे। सुकवि मोह सब तजे मोह मोहन को साजे ॥ ३२२ ॥

---

* नै ना लागत नैन = झुक के नहीं लगती आंखें। † "नैना लागत है न" हरिप्रकाश।

‡ नहीं तो अथवा इसमें और तर्क नहीं है। नातर = नहीं तो (राजपुतानी)

+ यह दोहा चमत्कारचन्द्रिका में नहीं है।

मो हू सौं तजि मोह दृग चले लागि उहिं गैल।
छनक छ्वाय छबिगुरडरी* छले छबीले छैल ॥ २६६ ॥

छले छबीले छैल मोहनी सी जनु मारी। मधुर मधुर मुसकाय ठगोरी सी कछु डारी ॥ सुकबि बिससिये नैन नाहिं पूरे निरमोहू। उन के है हैं कहा चले तजि कै जो मो हू ॥ ३२३ ॥

नखसिख रूपभरे खरे तउ माँगत मुसकान।
तजत न लोचन लालची ये ललचौंही बान ॥ २६७ ॥

ये ललचौंहीं बान लालची लोचन तजत न। चहत कबहुँ मुसकान कबहुँ चाहत हैं अनखन ॥ पियत बदनबिधुसुधा कबहुँ कचब्यालबालबिख। तउ प्यासे ही रहत सुकबि अटके दृग नखसिख ॥ ३२४ ॥

जस अपजस देखत नहीं देखत साँवल गात।
कहा करौं लालचभरे चपल नैन चलि जात ॥ २६८ ॥

चपल नैन चलि जात रुकत रोके न किहूँ बिधि। सूखत भीँगत ढरत कहा धौं भयो हाय बिधि† ॥ सदा उनमने रहत भये ऐसे कछु परबस। सुकबि स्याम पै मोहे निरखत नहिँ जस अपजस ॥ ३२५ ॥

लाजलगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिँ।
ये मुहँजोर तुरङ्ग लौं ऐंचत हू चलि जाहिँ ॥ २६९ ॥

ऐंचत हू चलि जाहिँ चाहचाबुकसटकाये। मानहुँ मदनसवार एड़ दै सुकवि उड़ाये ॥ अँसुआफेन गिराइ रहै कीने थरथर तन। घूँघटटाटी लाँघत मानत लाजलगाम न ॥ ३२६ ॥

---

* गुरडरी = गुड़ की डली = माधुर्य। † हा दैव। दो बिधि शब्द के दो अर्थ हैं।

इन दुखिया अँखियानि कौं सुख सिरजो ही नाहिँ ।
देखै बनैँ न देखते अनदेखे अकुलाहिँ ॥ २७० ॥

अनदेखे अकुलाहिँ हाय आँसू बरसावत । नेहभरे हू रूखे ह्वै अति जिय तरसावत ॥ सुकवि लखत हू पलक कलपसतसरिस सुहाइ न । प्रान जाइ जो तोऊ दोऊ दृग को दुख जाइ न ॥ ३२७ ॥

पुन:

बिन देखे अकुलाहिँ ललकि पुनि देखन चाहत । एक टकटकी बाँधि तृषित से अधिक उमाहत ॥ पलक परे पै कोटि कलप से बीतत हैँ छिन । बिधि क्यौं रचे निमेष सुकवि दुखियाँ अँखियाँ इन ॥ ३२८ ॥

को जानै ह्वैहै कहा जग उपजी अति आगि ।
मन लागे नैननि लगे चलै न मग लगलागि ॥ २७१ ॥

लागि चलत क्यौं लगालगी के मग तू आली । जानत नहिँ ब्रजमाहिँ अजब चाली है चाली* ॥ अङ्ग अङ्ग दहकावति है निहँचै किन मानै । सुकवि लगै जिहिँ जानै सो दूजो को जानै ॥ ३२९ ॥

---

†बनतन कौं निकसत लसत हँसत हँसत इत आय ।
दृगखंजन गहि लै गयो चितवनि चेप लगाय ॥ २७२ ॥

चितवनिचेप लगाइ जुलुफ के जाल फसायो । तिलककनककतरनी कतरि परकटा बनायो ॥ टोपीपिंजरा माहिँ राखि लीनो है तजत न । अलि बहेलिया स्याम सुकवि है या वृन्दावन ॥ ३३० ॥

---

* चालो है चाली = चलो है चाल । † बनतन की बन की ओर को (लालचन्द्रिका हरिप्रकाश) तन का अर्थ ओर प्रसिद्ध है ।

दृग उरझत टूटत कुटुम जुरति चतुरसँग प्रीति।
परति गाँठि दुरजनहिये दई नई यह रीति ॥ २७३ ॥

दई नई यह रीति परत ऐंठन सौतिनहिय। बहु बातन वल परत फसत त्यौं प्रीतम को जिय॥ लाज परत है ढीली अरु मन खिँचि खिँचि सुरझत। आँख सुकबि की खुलत लखो दृग सौं दृग उरझत ॥ ३३१ ॥

ह्वै हिय रहति *हई छई नई जुगुति यह जोइ।
आँखिन आँखि लगी रहै देह दूबरी होय ॥ २७४ ॥

देह दूवरी होइ सदा मन रहत उदासी। बानी थरथर कँपत और सुधि बुधि हू नासी॥ पावकझर से साँस तपत अकुलात अली जिय। सुकबि दई यह छई छई कैसी धौं है हिय ॥ ३३२ ॥

---

† क्यौं बसिये क्यौं निबहिये नीति नेहपुर नाहिँ।
लगालगी लोयन करैं नाहक मन बँधि जाहिँ ॥ २७५ ॥

नाहक मन बँधि जाहिँ दूबरे होत अंग अँग। छाती तरफर होत होत मुख को पीरो रँग ॥ नाम धरयो पुनि जात सबै कुलकानि नसत त्यौं। सुकबि नीति ह्यौं नाहिँ अहो इहिँ पुर बसिये क्यौं ॥ ३३३ ॥

जात सयान अयान ह्वै वे ठग काहि ठगैं न।
को ललचाय न लाल के लखि ललचौहैं नैन ॥ २७६ ॥

लखि ललचौंहैं नैन खौरचरचनि केसर की। टेढ़ी पचरँग पाग कपोलन जुलुफैं ढरकी॥ मन्द हँसत से अधर कनककुण्डल छबिछाजा। सुकबि आँखि कौं आँखि होत लखि कै रसराजा ॥ ३३४ ॥

---

* हई = हाय, ओहो। † यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है।

चितवित बचत न हरत हठि लालनदृग बरजोर ।
सावधान के बटपरा ये जागत के चोर ॥ २७७ ॥

ये जागत के चोर करत जादू सो छन मैं । सब सुधि बुधि हरि कै विष सो बगरावत तन मैं ॥ दिन हीं डाँका देत करत हैं जुलुम नितै नित । सुकवि किते अब जाँहिं स्याम दृग छीन्यो चित वित ॥ ३३५ ॥

पुनः

ये जागत के चोर अहैं डाँकू पुनि दिन के । महा उचक्के चूक रहित चतुरन अनगिन के ॥ छलिया छलबलभरे छबीले छलिन छलैं नित । धीरधुरन्धर सुकवि हु के ये हरत हेरि चित ॥ ३३६ ॥

डर न टरै नींद न परै हरै न कालविपाक ।
छनछाकै *उछकै न फिर खरो विषम †छबिछाक ॥२७८॥

खरो विषम छबिछाक रोम ही रोम समावै । ‡मारमार हू हटै नाहिं उपचार बढ़ावै ॥ मद अफीम संखिया नहीं इमि नसा सकैं कर । सुकवि विरह के ×दहनदहन हू सों होत न डर ॥ ३३७ ॥

चखरुचिचूरन डारि कै ठग लगाय कै साथ ।
रह्यो राखि हठ लै गयो हथाहथी मन हाथ ॥ २७९ ॥

हथाहथी मन हाथ लेइ कै मति भरमाई । ¶पूँगी कलुक बजाइ फूँकि §फूँकी चतुराई ॥ कलु कलु जुलुफ कँपाइ कँपायो सिगरो सिखनख । बसीकरन सो कियो सुकवि हरि नेक मोरि चख ॥ ३३८ ॥

---

* उछकै = उतरै । † छबिछाक = छबि का नशा ॥ ‡ मारमार = कामदेव की मार में (मार से और नशा तो उतर आता है पर यह मार से नहीं उतरता । × दहन दहन = अग्निदाह । ¶ पूँगी = बंसी ॥ वशीकरण में पूँगी बजाना भी राजपुताने में प्रसिद्ध है जैसे मछुवर खिलाने में ।

§ फूँकी = जलाई अथवा उड़ाई ॥

कीने हूँ कोरिकजतन अब गहि काढ़ै कौन।
भो मन मोहनरूप मिलि पानी मैं को लौन ॥ २८० ॥

पानी मैं को लौन होत है तन्मय जैसैं। मन हू तन्मय भयो रूप निज खोयो तैसैं ॥ बहु विधि लहरैं खाइ रह्यो थिर होत न केहूँ। नहिं डूबै नहिं तरै सुकवि जतनन कीने हूँ ॥ ३३६ ॥

पुनः

पानी मैं को लौन तपायैं तैं जल त्यागै। बिरहतपैं यह अधिक अधिक ताही रँग पागै ॥ गलिमिलि एकै भयो लखै को चित दीने हूँ। सुकवि अलग नहिं होइ सकत बहु स्रम कीने हूँ ॥ ३४० ॥

---

*फिरि फिरि चित उत ही रहतु टुटी लाज की लाव†।
अङ्ग अङ्ग छबि झौंर मैं भयो भौंर की नाव ॥ २८१ ॥

भयो भौंर की नाव परयो अँग झोकाझोकी। आँधी चाह हु उड़ी कोऊ विधि रुकै न रोकी ॥ आसपाल तनि रह्यो लिये ही जात अहै इत। सुकवि होत अनुकूल नाहिं काँपत फिरि फिरि चित ॥ ३४१ ॥

---

‡ओठ उचै हाँसीभरी दृग भौंहन की चाल।
मोमन कहा न पीलियो पियत तमाखू लाल ॥ २८२ ॥

पियत तमाखू लाल पियो मेरो मन छन मैं। फूँकि फूँकि जनु आगि जगाई मेरे तन मैं ॥ धुआँ उड़ाइ उड़ाइ नींद दृगजुग तरसाओ। सुकवि चवासँग अधिक अधिक जनि मोहि तपाओ ॥ ३४२ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्तकवि के ग्रन्थ में नहीं है। †लाव = रस्सी = लहासी।
‡ यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है। पुराने कवियों में तमाखू गाँजे आदि के वर्णन की चाल नहीं थी। इस दोहे के विहारीकृत होने में सन्देह भी होता है ॥

लरिका लैबे के मिसनि लंगर मोढिग आय।
गयो अचानक आँगुरी छाती छैल छुवाय ॥ २८३ ॥

छाती छैल छुवाय अधर ही मैं कछु बिहँस्यो। मन्द कहा धौं कह्यो फेर मन हीं मन हुलस्यो ॥ तिरछैं लखि मोओर लग्यो चुटकी सी दैबे। सुकबि राखि मन और चलत है लरिका लैबे ॥ ३४३ ॥

नई लगनि कुल की सकुच बिकल भई अकुलाय।
दुहूँ ओर ऐंची फिरै फिरकी लौं दिन जाय ॥ २८४ ॥

जाय फसी वह नेहडोर के बन्धन गोरी। चतुरचँवाइनचक्कर परि चक-पक भई भोरी॥ औरै रँग कछु देख परत छई औरै लुनई। चाह लाज मिलि सुकबि धूपछायाछबि उनई ॥ ३४४ ॥

झटकि चढ़ति उतरति अटा नेक न थाकति देह।
भई रहति नट को बटा अटकी नागरि नेह ॥ २८५ ॥

अटकी नागरि नेह चढ़ति उतरति पट झटकति। ठटकति ठटकति चलति खटकभरि पुनि कछु अटकति ॥ भृकुटि कुटिल मटकायरही बोलत नाहिं नटखट। नटवर के बस सुकबि भटू बोलै झटकति झट ॥ ३४५ ॥

इत तें उत उत तें इतै छन न कहूँ ठहराति।
जक न परति चकई भई फिरि आवति फिरि जाति ॥२८६॥

फिरि आवति फिरि जात होत खिरकी में ठाढ़ी। अनिमिष दृग तें तकति प्रीति ऐसी कछु बाढ़ी ॥ गोरी के अँग हाय समायो साँवर कित तें। सुकबि बावरी भई तिया भटकति उत इत तें ॥ ३४६ ॥

उर उरझ्यो चितचोर सौं गुरु गुरुजन की लाज ।
चढ़े हिंडोरे से हिये किये बनै गृहकाज ॥ २८७ ॥

किये बनै गृहकाज कहो कैसैं इहिं भाँती । झोका झोकी दोऊ दिसि रहि परवस दिन राती ॥ आँखैं घुमरी खाइ रही किहुँ जात न सुरझ्यो । सुकबि नेह की डोर फस्यो हरि सों उर उरझ्यो ॥ ३४७॥

उन *हरकी हँसि कै उतै इन सौंपी मुसकाय ।
नैन मिले मन मिलगयो दोऊ मिलवत गाय ॥ २८८ ॥

दोऊ मिलवत गाय जीय सौं जीय मिलायो । दोऊ कपोलन जाल सेद बिन्दुन को छायो ॥ इन बिसराई सींगगहनि बँधि नये नेहगुन । औंधी मटकी राखि सुकबि पुनि दोहि दई उन ॥ ३४८ ॥

उन को हित उन हीं बनै कोऊ करो अनेक ।
†फिरत काकगोलक भयो दुहूँ देह ज्यों एक ॥ २८९ ॥

दुहूँ देह ज्यों एक फिरत नहिं परत लखाई । देहो एकै करन मिलत जनु पुनि पुनि धाई ॥ सबै भाँति अद्वैत भयो बढ़ि चल्यो नेह नित । सुकबि कहाँ मैं कहा वहै जानैं उन को हित ॥ ३४९ ॥

या के उर औरै कछू लगी बिरह की लाय ।
पजरै नीर गुलाब के पिय की ‡ बात बुझाय ॥ २९० ॥

पिय की वात बुझाय दिये चन्दन लहरावै । दीने चूर कपूर बरूदन जनु भभकावै ॥ नलिनीदल सौं चिनगी चमकति चढ़ाति मनौं जुर । सुकबि पिये दावानल धसि गयो हरि याके उर ॥ ३५० ॥

---

* हरकी—हाँकी । † जैसे कौए की दो आँखों में एक ही गोलक (कोआ) फिरता है वैसे दो देह में एक हो जोव फिरता है ॥ ‡ वात श्लेष है एक पक्ष में वात = वायु ; दूसरे में बात चर्चा ।

तिय निजहिय जु लगी चलत पिय नखरेखखरोट।
सूकन देति न सरसई खौँटि खौँटि खतखोट ॥ २९१ ॥

खौँटि खौँटि खतखोट सरसई और बढ़ावत। पियसेदन के दाग देखि सारी न धुआवत ॥ पौंछत नाहिँन पाक कपोलन प्रेमभरे जिय। टूट्यो हार गुहावत नहिँ यह लखहु सुकवि तिय ॥ ३५१ ॥

---

* बासि सकोचदसबदनबस साँच दिखावति बाल।
सिय लौँ सोधति तिय तन हिँ लगति अगनि की ज्वाल ॥ २९२ ॥

लगति अगनि की ज्वाल माहिँ निज तन दै दीनो। दाहदहकदहकाइ देह कंचन सो कीनो ॥ अब चाहति है मिलन पीय सोँ गाढ प्रेम गसि। सुकवि स्याम हिय राखि रही है स्याम हिये बसि ॥ ३५२ ॥

---

†नेकु न झुरसी बिरहझर नेहलता कुम्हिलाति।
नित नित होति हरी हरी खरी झालरति जात ॥ २९३ ॥

खरी झालराति जात देखियत नित्त डहडही। दीरघसाँसझपट्टन हूँ अति होत लहलही ॥ लालगुलाबअँगारन हूँ पुनि कछू न भुरसी। सुकवि नेह की बेल बिरहझर नेकु न झुरसी ॥ ३५३ ॥

---

‡ खलबढ़ई बल करि थके कटै न कुबतकुठार।
आलबाल उर झालरी खरी प्रेमतरुडार ॥ २९४ ॥

खरी प्रेमतरुडार जरै नहिँ बिरहदवागी। लागे अँसुवनझोक और हू दृढ़ता पागी ॥ त्यौँ कलङ्कआँधी लागे जउ भई अति प्रबल। अमरलता लहि सुकवि सँजीवन हारि गये खल ॥ ३५४ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रकाश में नहीं है। † यह दोहा हरिप्रसाद ने अपने ग्रन्थ में सं० ३६५ और सं० ४१२ में दो बेर लिखा है और थोड़ेसे पदभेद से दो बेर अनुवाद भी किया है ॥
‡ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ॥

करत जात जेती कटनि बढ़ि रससरितासोत।
*आलबाल उर प्रेमतरु तितो तितो दृढ़ होत ॥ २९५॥

‡ तितो तितो दृढ़ होत सुरति हिमकनन नहायो। बिरहझपट्टा लगे और हू फैलि सुहायो ॥ जोगपत्रिकाबिज्जु परें फूलन भयो लरझर। सुकबि ज्ञान की आग लगायें फलित दियो कर ॥ ३५५ ॥

बालबेलि सूखी सुखद इहिँ रूखे रुख घाम।
फेर डहडही कीजिये सुरस सींचि घनस्याम ॥ २९६ ॥

सुरस सींचि घनस्याम फेर कछु हरी कीजिये। बिरहदवागि बुझाइ आसरो फेर दीजिये॥ पुलकप्रफुल्लित करहु बेगि चलि सँग इहिँ काला। सुकबि सफल ह्वैहै जद्यपि सूखी है बाला ॥ ३५६ ॥

देखत चुरे कपूर ज्योँ उपै जाय जिन लाल।
छन छन होति खरी खरी छीन छबीली बाल ॥ २९७ ॥

छीन छबीली वाल होत दिनदिन अधिकाई। सितता व्यापी जात गई अँग की अरुनाई ॥ तहाँ लगी बिरहागि नाहि क्योँ चलि कै पेखत। सुकबि सुन्न ह्वै जाय न प्यारी देखत देखत ॥ ३५७ ॥

कहा कहौँ वाकी दसा हरि प्राननि के ईस।
बिरहज्वाल जरिबो लखेँ मरिबो भयो असीस ॥ २९८॥

मरिबो भयो असीस अमी सो माहुर जानौँ। लै कृपान कोउ हनै ताहि उपकारी मानौँ॥ अजहूँ चलिये सुकबि मैं हुँ आनँद महा लहौँ। छाती भरि भरि जात दसा वाकी कहा कहौँ ॥ ३५८ ॥

* आलबाल —थाँवला ॥ † गोपियोँ की उक्ति उद्धवप्रति ॥

हरि हरि बरि बरि करि उठति करि करि थकी उपाय ।
वा को जर बलि वैद ज्यौं तोरस जाय तो जाय ॥ २९९ ॥

तोरस जाय तो जाय और रस अनरस लागै । तू चलि जो कर गहै तवै जिय को भ्रम भागै ॥ छाती छ्वै कै देखु होत कैसी हिय धरधरि । सुकवि नींद नहिँ लगत वहकि बररावत हरि हरि ॥ ३५९ ॥

यह बिनसत नग राखि कै जगत बड़ो जस लेहु ।
जरी विषम जर ज्याइयै आय सु दरसन देहु ॥ ३०० ॥

*आय सु दरसन देहु विषम जर अँग अँग व्याप्यो । गरम सुहाय न कछू नाहिँ सीतल सुख थाप्यो ॥ लोकनाथ वह मुखमृगाङ्क हित प्यारी तरसत । सुकवि स्याम मधु जोग देइ राखहु यह बिनसत ॥ ३६० ॥

---

†नेक न जानी परति यौं पर्‌यो विरह तन छाम ।
उठति दिया लौं नाँदि हरि लिये तुम्हारो नाम ॥३०१॥

नाम तुमारो एक रह्यो है वाकी आसा । पुतरी चढ़ि गई भाल स्याम भई मुख की भासा । लखे परत नहिँ साँस सुकवि गोपी तरसानी । जीयत धौं मरि गई परत कछु नेक न जानी ॥ ३६१ ॥

मैं लै दयौ लयौ सु कर छुवत छनकि गो नीर ।
लाल तिहारो अरगजा उर ह्वै लग्यो अबीर ॥ ३०२ ॥

उर ह्वै लग्यो अबीर सोऊ तन ताप तपायो । देखत देखत स्याम स्याम रँग को ह्वै आयो ॥ कछू धूम सी उठी फेर सब गयो सेत ह्वै । राजत सुकवि बिभूति मनहुँ दीनौं जो मैं लै ॥ ३६२ ॥

---

* शीतोष्ण का पच्छा न लगना ज्वरधर्म्म है ॥ लोकनाथ श्री मृगाङ्क वैद्यकशास्त्र में प्रसिद्ध रस हैं । श्यामा = पिप्पली, मधु = शहद ॥ एक पक्ष में मधु वसन्त । † यही दोहा सं० ४२३ में फिर आया है । इस पर दूसरी कुण्डलिया है ॥ यह प्राज्ञमशाही क्रम का दोष जान पड़ता है ॥

हित करि तुम पठयो लगैं वा बिजना की बाय।
टरी तपनि तन की तऊ चली पसीना न्हाय ॥ ३०३ ॥

चली पसीना न्हाय पुलकि पंखादिस पेखत। कर लै चूमि चढ़ाय सीस इकटक पुनि देखत ॥ पुनि पुनि देइ सखीकर पुनि राखत लै हिय धरि ॥ सुकबि तमासा भयो लाल पठयो जो हित करि ॥ ३६३ ॥

---

*हँसि उतारि हिय तैं दई तुम जु तेहीं दिन लाल।
राखति प्रान कपूर ज्यौं वहै चिहुँटिनी माल ॥ ३०४ ॥

वहै चिहुँटिनी माल अहै छाती सौं लायैं। तुम्हरे सेद लगे पट कौं चाहत न धुआयैं ॥ तुमकरदरकी कंचुकि ही मैं नैन रहे फँसि। सुकबि रटत पुनि-पुनि उन बातन तुम जु कही हँसि ॥ ३६४ ॥

---

†होमति सुख करि कामना तुमहिं मिलन की लाल।
ज्वालमुखी सी जरति लखि लगनि अगनि की ज्वाल ॥३०५॥

लगनि अगनि की ज्वाल माल लहरति भभकाई। खुले केस लट परी धूम मानहु धधकाई ॥ चाहश्रुवा लै लाजघीउ डारति तपवति सुख। सुकबि लखहु अँग समिध बनाये तिय होमति सुख ॥ ३६५ ॥

---

‡थाकी जतन अनेक करि नेक न छाँड़ति गैल।
करी खरी दुबरी सु लगि तेरी चाह चुरैल ॥ ३०६ ॥

तेरी चाह चुरैल परी पीछे बरजोरै। ननद जिठानिन के मन्त्रन हूँ हाय

---

* यह दोहा शृङ्गारसप्तशतिका में नहीं है ॥ † यह दोहा शृङ्गारसप्तशतिका में नहीं है।

‡ वेर के वृक्षपर चुड़ैल रहती है यह जनरव है ऐसे ही चिता देख नाँचना और मेरा हाल किसी से कहै तो मै खाजाऊँगी यह कह डरानाभी प्रसिद्ध है यह भाव दूसरीकुण्डलिया के तृतीय चतुर्थ चरण मे दिखलाया है ॥ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ॥

न छोरे ॥ धूपलपट सौं वढ़त और दूनी दुति वाकी। करूँ सुकवि मैं कहा सबै जतनन करि थाकी ॥ ३६६ ॥

पुनः

तेरी चाह चुरैल ताहि जनि जाइ चबाई। विरह बैरवन विचारि विचारि औरौ बरिआई ॥ चित्तचिता सौं जरत देखि निरतत गति बाँकी। कहि न सकत कछु हाल सुकवि जतनन करि थाकी ॥ ३६७ ॥

---

*लाल तिहारे विरह की अगनि अनूप अपार।
सरसै बरसै नीर हूँ झर हू मिटै न झार ॥ ३०७ ॥

झर हू मिटै न झार बढ़त दूनी पुनि ज्वाला। दीरघ साँस झपट्टन सौं भई अतिविकराला ॥ सूखी पाती† डारि और सुलगाई प्यारे। सुकवि लखहु चलि हाहा खाँऊ लाल तिहारे ॥ ३६८ ॥

जौ वाके तन की दसा देख्यौ चाहत आप।
तौ वलि नेक विलोकिये चलि औचक चुपचाप ॥ ३०८ ॥

चलि औचक चुपचाप ओट तरु के ह्वै ठाढ़े। लताबीच तैं लखहु होइ जिय के अति गाढ़े ॥ सुकवि धीरता गनिहौं मैं तब तुमरे मन की। घबरैहो नहिं लखत दसा जौ वाके तन की ॥ ३६९ ॥

---

‡लई सौंह सी सुनन की तजि मुरलीधुनि आन।
किये रहति नित राति दिन कानन लागे कान ॥ ३०९ ॥

कानन लागे कान रहति कुलकानि विसारी। अलक हटाइ कपोलन श्रुति

---

* यह दोहा चनवरचन्द्रिका में नहीं है। † पाती = पत्ती अथवा चिठी, सूखी = रस रहित।

‡ यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है।

सरकावति सारी॥ टेढ़ी ग्रीवा किये रहति उचकाइ भौंह सी। सुकबि सीख की बात सुनन जनु लई सौंह सी ॥ ३७० ॥

---

*उर लीने अति चटपटी सुनि मुरलीधुनि धाय।
हौं निकसी हुलसी सु तौ गौ †हुल सी उर लाय॥३१०॥

गौ हुल सी उर लाय बोरि जनु विष मैं झुलसी। घुलसी घबराहट गई घट मैं लाज हु भुलसी॥ पुल सी बाँधी बानन की पुनि मैन बहादुर। सुलसी तुलसीमालावारो सुकबि धस्यो उर ॥ ३७१ ॥

---

‡सुरति न ताल रु तान की उठै न सुर ठहराय।
एरी राग बिगारि गौ बैरी बोल सुनाय ॥ ३११ ॥

बैरी बोल सुनाय ठगोरी सी कछु करि गो। सूझत नाहिं अलाप हाय हियरौ हरि हरि गो ॥ ओड़ो खाँड़ो भेद बिसरि गयो सुकबि ततच्छिन। वादी संवादी अनुवादि बिवादी सुरति न ॥ ३७२ ॥

चितवनि भोरे भाय की गोरे मुँह मुसकानि।
लगनि लटकि आलीगरे चित खटकति नित आनि ॥३१२॥

चित खटकति नित आनि कपोलन अलकहटावन। अँचरा झुकत सम्हारि फेर घूँघटसरकावन॥ ओठ उमैंठि ऐंठि भौंहन मन की कछु जितवनि। सुकवि अजौं वह खटकि रही है भोरी चितवनि ॥ ३७३ ॥

---

* यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है। † हुल = शूल। श से प्रायः ह हो जाता है॥ गद के का सीधा पेट मे गोदने का हाथ भी हुल कहाता है ॥ कटार कत्ती आदि पेट में घोव देना हुल मारना प्रसिद्ध है ॥ ‡ यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है।

*छन छन मैं खटकति सु हिय खरी भीर मैं जात ।
कहि जु चली अन हीं चितै ओठनि ही मैं बात ॥ ३१३ ॥

ओठनि ही मैं बात कहा धौं कहि गई नागरि । सारी अँचाति ग्रीव हिलावति रूपउजागरि ॥ वह अलकन की लहर लहर लहरावति तन मैं । सुकवि चलन उकसौंहँ उर कसकत छन छन मैं ॥ ३८४ ॥

चिलक चिकनई चटक सौं लफति †सटक लौं आय ।
नारि सलोनी साँवरी नागिन लौं डसि जाय ॥ ३१४ ॥

नागिन लौं डसि जाय हाय चलि टेढ़ी बाँकी । सीसफूलमनिप्रभापुंज चमचमत निसाँकी ॥ ‡कबहुँ काँचरीराहित सहित सुकुमारतामई । सुकवि न जयो निकट भूलि लखि चिलक चिकनई ॥ ३८५ ॥

+ डग कुडगति सी चलि ठठकि चितई चली निहारि ।
लिये जाति चित §चोरटी वहै गोरटी नारि ॥ ३१५ ॥

वहै गोरटी नारि सु घूँघट वदन छिपाये । मन्द मन्द पग धरति घाघरा घेर घुमाये ॥ आँखि भपाये ग्रीव झुकाये दूजी रति सी । सुकवि छीनि चित लिये जाति चलि डग कुडगति सी ॥ ३८६ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है ॥ † सटका = बेत = पतली छड़ी ॥ (अप्रसिद्ध शब्द है)
‡ कबहुँ काँचरी रहित कबहुँ काँचरी सहित । काँचरी = कञ्चुकी अथवा साँप की केंचुली ॥
+ यह दोहा अनवरचन्द्रिका और देवकीनन्दनटीका में नहीं है ॥ § चोरटी = चोटी, गोरटी = गोरी॥ राजपुताना जयपुर की भाषा में गोरटी = गोरडी ॥ जैसे मेरे पूज्यपिता (दत्तकवि) की कविता ॥ "गोरडी नें धातो देख मोरडो यो नाई कान्हीं चौंकड़दे फिर्यो दत्त गोप्यां मनभावणो । धई खोसता यूँ सोम्यो करड़ो यूँ गूजरड़ो आंखी उतपात आज कंस नैं जगावणो ॥ संग में छो भावलो सो शायो को यूँ भाल्यो देर मड़ो मिचकार नांख्यो घांगर्यां नचावणो । काल्यो छै कठा को छै कठे छै या करे तो कोई कमो रांड़ की छै कंस बाद कै मंगावणो" ॥ अर्थात् ब्रजभाषा में जिन शब्दों के अन्त में री वा री है वहाँ 'रटो' 'रटी' करके समझना है जैसे छोरो = छोरटो, छोरी = छोरटी ॥

भौंह उँचै आँचर उलटि मोरि मोरि मुहँ मोरि ।
नीठि नीठि भीतर गई दीठि दीठि सौं जोरि ॥ ३१६ ॥

दीठि दीठि सौं जोरि जोरि कै चोरि चोरि जिय। छोरि छोरि पुनि धीरज कौं रस घोरि घोरि हिय॥ सुकबि चली अँगिराइ कछुक उचकाइ सी कुचै। बेसर कौं फरकाइ कपोलन हँसि भौंह उँचै ॥ ३८७ ॥

रह्यो मोहि मिलनो रह्यो यौं कहि गहे मरोर ।
उत दै सखिहिं उराहनो इत चितई मो ओर ॥३१७॥

इत चितई मो ओर हाय जादू सो डारयो। होठन हीँ कछु कहति मंत्र मोहन जनु मारयो॥ रोम रोम मद भर्‍यो तबै सौँ जात नहिँ कह्यो। जागत सोवत सुकबि नैन वह रूप छकि रह्यो ॥ ३८८ ॥

चुँदरी स्याम सतार नभ मुख ससि की अनुहारि ।
नेह दबावत नींद लौं निरखि निसा सी नारि ॥ ३१८ ॥

निरखि निसा सी नारि चहूँ दिस कछू न सूझै । मन्थर सब अँग होत कौन सौँ को का बूझै ॥ सुकबि होस नहिँ रहत कहाँ पट कुंडल मुँदरी । *वहै कहानी भली लगै लखि कारी चुँदरी ॥ ३८९ ॥

---

† फेर कछू करि पौरि तैं फिरि चितई मुसकाय ।
आई जामन लेन कौं नेहै चली जमाय ॥ ३१९ ॥

‡ नेहै चली जमाय रई सी डीठ फिरावति । मनमथ सौँ मन मथति

---

* रातही को कहानी भी अच्छी लगती है। † जामन = जोरन। दही जमाने के लिए जो दूध में थोड़ा दही या और कोई खटाई दी जाती है उसे जामन कहते हैं। राजपुतानी 'जावण' ॥ ‡ जामन लेने आई थी पर नेह को जमा मन को मथ मुसकानि का मठा पिला माखन से जी को ले गई ।

चाहगुन ऐंचि घुरावति ॥ मुसुकनिमही पियाइ सेद सौं अङ्ग अङ्ग भरि । माखन सो जिय लेइ गई तिय फेर कछू करि ॥३९०॥

---

*देह लग्यो ढिग गेहपति तऊ नेह निरवारि ।
ढीली अँखियन ही इतै गई कनखियन चाहि ॥ ३२० ॥

गई कनखियन चाहि कपोलन कछु फरकावति। नासा मोरति मुसकिराति अंमृत ढरकावति ॥ उकसति अँचर सम्हारति सारी सजति सुठि जऊ । सुकवि सँतोषपति देह लग्यो ढिग गेहपति तऊ ॥ ३९१ ॥

---

†लहि सूने घर कर गह्यो दिखादिखी करि ईठि ।
गड़ी सुचित नाहीँ करन करि ललचौँहीँ दीठि ॥ ३२१ ॥

करि ललचौँहीँ दीठि कछू जनु नासा मोरी। भौँह सिकोरी थोरी तिरछैं लखि कै गोरी ॥ पुनि कपोल फरकाइ कहा धौं मन्द रही कहि । सुकवि लिये दूने अनन्द तिय सूने घर लहि ॥ ३९२ ॥

---

‡कालबूत दूती विना जुरै न और उपाय ।
फिरि ताके टारे बनै पाके प्रेम लदाय ॥ ३२२ ॥

पाके प्रेम लदाय टार पुनि बहकि ढरै ना। दोउ दिस रहत झुकाव बन्यो कछु हू उझकै ना ॥ नाहिँ लगन मैं बीच परत कछु झोक लहै का। कालबूत को काम नाँहिं तब सुकवि कहै का ॥ ३९३ ॥

---

* यह दोहा चनबरचन्द्रिका में नहीं है। † यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है।

‡ महराब या गुम्बज बनाने के लिये नीचे भराव उसी ढङ्ग का बना ऊपर महराब आदि बनाते हैं, इसी भराव को कालबूत कहते हैं ॥ हरिप्रसाद कदाचित् इसका मर्म नहीं समझे। उनने यों लिखा है। "दूतीद्वारोपायैर्विना न भवति खलु कोऽपि यत्नोऽन्यः । पक्के प्रेमद्वारे स्थितं निष्कारणेन तयोः" इसका मर्म भी यही जाने।

*तो पर वारौं उरबसी सुन राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी व्है उरबसी समान॥ ३२३॥

है उरवसी समान करत मोहन को मोहन। तिलोत्तमा सौं तिलोत्तमा तेरी छवि सोहन॥ मैनका हु मैं मैं न काहु छन छवि पाई वर। रम्भा रम्भा सरिस सुकवि वारौं मैं तो पर॥ ३६४॥

तू मोहनमन गड़ि रही गाढ़ी गड़नि गुवालि।
उठै सदा †नटसाल लौं सौतिन के उर सालि॥ ३२४॥

सौतिन के उर सालि रही दृग दुसह वान लौं। भौंहन धनुष चढ़ाय रही है ऐंचि कान लौं॥ अञ्जनरञ्जनाबिष बुताय अकुलावत सी तन। सुकबि छिपी है अजब व्याध सी तू मोहनमन॥ ३६५॥

पियमन रुचि व्है है कठिन तनरुचि होत सिँगार।
लाख करौ आँख न बढ़ै बढ़ैं बढ़ाये बार॥ ३२५॥

बढ़ैं वढ़ाये वार कसैं चिकनाइ वगारैं। नैन बड़े नहिँ होत किहूँ विधि फारि निहारैं॥ मोती लरभर करत सँवारहु किते अङ्ग सुचि। सुकबि फिरत नहिँ नखरा कीन्हे कछु पियमनरुचि॥ ३६६॥

---

* उर्वशी एक अप्सरा का नाम है उसे मैं तुझ पर वारूं, क्योंकि तू मोहन के उर में, उरवसी समान (उरवसी = धुकधुकी भूषण) वसी तेरी छवि तिलोत्तमा नामक अप्सरा से भी तिल भर उत्तम हो है (तिलभर वढ़ के कहना अधिकता के तात्पर्य से महावरा है)। मैंने मेनका अप्सरा में भी किसी चण अच्छी छवि न पाई। और रम्भा अप्सरा तो रम्भा सी हो गई अर्थात् केले के खम्भे की भाँति ठण्ढी पड़ गई। इन सबको मैं तेरे ऊपर वार डालूँ अथवा वलिहारी॥

† नटसाल = एक प्रकार का वाण (दो० ३३० की टिप्पणी में स्पष्ट है)।

जालरन्ध्रमग अँगनि को कछु उजास सो पाइ ।
पीठ दिये जग सौं रहे दीठ झरोखा लाइ ॥ ३२६ ॥

दीठ झरोखा लाइ रहे मग ही मैं ठाढ़े । को आवत को जात लखत कछु नहिं रसबाढ़े ॥ कम्पित अँग अँग भये तऊ छिति सौं न टरत पग । सुकवि जके से नैन जुरे जमि जालरन्धमग ॥ ३९७ ॥

जद्यपि सुन्दर सुघट पुनि सगुनो दीपक देह ।
तऊ प्रकास करै तितौ भरिये जितौ सनेह ॥ ३२७ ॥

भरिये जितो सनेह तितो ही करै प्रकासा । नेह सुघट पै होइ जाति मानहुँ दुतिनासा ॥ विना नेह पुनि अन्धकार मैं जात मनहुँ ढँपि । सुकवि चाह विनु भलो न लागै सुन्दर जद्यपि ॥ ३९८ ॥

*सनि कज्जल चख झखलगन उपज्यौ सुदिन सनेह ।
क्यौं न नृपति व्है भोगवै लहि सुदेस सब देह ॥ ३२८ ॥

लहि सुदेस सब देह नृपति ह्वै क्यौं नहिं भोगै । जिय धन सहज कलाधर पर्‌यो मदन वुध जोगै ॥ मङ्गल भागनिधान अहैं गुन घने लये गनि । रस सिङ्गारहि सुकवि बढ़ावत दृग कज्जल सनि ॥ ३९९ ॥

†लखि लौने लोयननि के को इन होइ न आज ।
कौन गरीव निवाजिवौ कित तूठ्यौ रतिराज ॥ ३२९ ॥

कित तूठ्यो रतिराज साज सब साजि सुख पागै । किहिं सुहाग सगवगै

* यह दोहा देवकीनन्दन टीका में नहीं है। हरिप्रसाद ने इस पर यह आर्य्या लिखी है॥ "अञ्जनमय झषलग्नं नयनो मीनो ऽत्र शुभदिने जातः। स्नेहो नृपः कथं नो लब्ध्वा भुञ्ज्यात् सुदेशवपुः" ॥

† (लोयननि के लौने लखि) लोचन का लावण्य देख के (को आज इन होइ न) आज कौन इनके

भाग काके पुनि जागे ॥ काके बिरहदवागिदन्ददहकानिदिन गौने । सुकबि न इनको होइ कौन लोयन लखि लौने ॥ ४०० ॥

---

* लागत कुटिलकटाच्छसर क्यौं न होय बेहाल ।
लगत जु हिये दुसार करि तऊ रहत नटसाल ॥ ३३० ॥

तऊ रहत नटसाल हलाहल अँगनि पसारत । जारत आरत करत तऊ जिय सौं नहिं मारत ॥ पीर बढ़त अरु धीर जात पुनि हिय अनुरागत । इन्द्रजाल जनु भरे सुकबि ये दृगसर लागत ॥ ४०१ ॥

---

†नागरि ‡बिबिध बिलास तजि बसी गँवेलिनि माँहि ।
मूढ़ौ मैं गनिबी कि तू हूठौ दै अठिलाहि ॥ ३३१ ॥

हूठो दै अठिलाहि रही है तुअ मन मूढ़ो । पुनि पछितैहै जबै उभरि है नेह निगूढ़ो ॥ अज हूँ हठ की गढ़नि कठिन तजि है गुनआगरि । सुकबि गँवारिन माहिँ रूस बैठी क्यौं नागरि ॥ ४०२ ॥

अधीन न होय (कौन गरीब निवाजिवो) किस गली में अब अनुग्रह कीजियेगा ॥ शेषस्पष्ट ॥ (रलयो रभेदः) परन्तु इस अर्थ मे गरीब पद की क्लिष्ट कल्पना है । इस लिये यह सीधा अर्थ है कि नेत्र का लावण्य देख इन के आधीन कौन न हो पर नही जानते रतिराज किधर प्रसन्न हुआ है, और इसे कौन से गरीब को निवाजना है॥ (स्वयंवर समय नायिका को देख नायक का संकल्प विकल्प है कि देखें यह किसे मिलती है) हरिप्रसाद ने इस पर यौं आर्या की है ॥ "सुन्दरनयनप्रान्तैरेतैर्दृष्ट्वाद्य सुमुखि दीने त्वम् ॥ कस्मिन् कृपां करिष्यसि कस्मै तुष्टोऽस्ति रतिराजः ॥ " * दुसार तीर पार हो जाता है और नटसाल शरीर के भीतर ही रहजाता है निकालने के समय अँतड़ी घींचता है ॥

† यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मे नहीं है ।

‡ मानवती सखी को उक्ति । तू नागरी हो के विविधविलास छोड़ के (रूसके) गँवारियों में घुस वैठी॥ तिस पर भी तू हठ करती है इस लिये मै तुझे मूर्ख समझती हूं॥ 'गनिवी' उत्तम ब्रजभाषा नहीं है पर विहारीजी ने ऐसा प्रयोग कई ठिकाने किया है । गोस्वामि तुलसीदास जीको भी ऐसा प्रयोग अच्छा लगा था जैसे वालकाण्ड दो० ३३६ छन्द "परिवार पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानवी ॥ तुलसी सुसील सनेह लखि निज किङ्करी करि मानवी " ॥ परन्तु विहारी जीने यहां स्त्री लिङ्ग में प्रयोग किया है और रामायण में पुलिङ्ग है ॥ 'गंवेलिन' भी शुद्ध ब्रजभाषा नहीं है ॥

रही लटू व्है लाल हौं लखि वह बाल अनूप।
कितो मिठास दयौ दई इते सलौंने रूप ॥ ३३२ ॥

इते सलोने रूप इती बिधि दई मिठाई। अधर मधुर मुसकान सुधा मानो बरसाई ॥ तापै मीठे वचन सुनत गई चकित लटू ह्वै। सुकविन हूँ मुख *बन्ध भयो हौं रही लटू ह्वै ॥ ४०३ ॥

तीजपरब सौतिन सजे भूषन बसन सरीर।
सबै मरगजे मुँह करी वहै मरगजे चीर ॥ ३३३ ॥

वहै मरगजे चीर सौतिअंबरछवि नासी। टूटे हार सबै भूषन कौं दई उदासी ॥ बिथुरे बारन हती माँग की कान्ति गरब सौं। सुकवि पियाप्रिय तिया सुहाई तीज परब सौं ॥ ४०४ ॥

सोहति धोती सेत मैं कनकबरन तन बाल।
†सारदबारदबीजुरीभा रद कीजत लाल ॥ ३३४ ॥

भा-रद कीजत लाल धरे सारद‡ सी सोभा। पारद से मुकताहल चमकत लखि मन लोभा ॥ गारद जुवजनजियन करत निरखत मन मोहति। सुकवि लखहु दारद +सो बगरावति तिय सोहति ॥ ४०५ ॥

---

§हौं रीझी लखि रीझिहौ छबि हिँ छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति मिलति मालतीमाल ॥ ३३५ ॥

माल मालती सोनजुही सी हिय हरसावति। कुन्दकली व्है चम्पकली

---

* मुहँ बन्ध होना (भोजन न चलना) मीठे का भी धर्म है। † सारद बारद-बीजुरी-भा, शरद के मेघ की बिजली की कान्ति॥ शरद के श्वेत मेघ में बिजली नहीं होती इस लिये अभूतोपमामूलक प्रतीप समझना॥ ‡सारद = सरस्वती + दारद = विष॥ §उसके अङ्ग में सोने की सी ऐसी चमक है कि मालती के श्वेतफूल पीले हो जाते हैं॥

आनँद बरसावति ॥ सारी सेत हु रँगी जात मानहुँ केसर सौं । सुकबि नेक चलि देखहु हरि बलि जात अहौं हौं ॥ ४०६ ॥

---

*छनक छबीले लाल वह जौ लगि नहिँ बतराय ।
ऊष मयूख पियूष की तौ लगि भूष न जाय ॥ ३३६ ॥

तौ लखि भूख न जाय साँच बिनती सुन लीजै । तौ लगि ही पुनि काव्य सुधाचाखन चित दीजै ॥ मिसरी फिसरी जात कन्द भौ मन्द रसीले । सुकबि सुनहु चलि मधुर बाल वह छनक छबीले ॥ ४०७ ॥

ढोरी लाई सुनन की कहि गोरी मुसुकात ।
थोरी थोरी सकुच सौं भोरी भोरी बात ॥ ३३७ ॥

भोरी भोरी बात सकुच सौं थोरी थोरी । घोरी मनहुँ मिठास मुलकि भाषत मुख मोरी ॥ चोरी राखत डीठ भाल मैं दीने रोरी । सुकबि रम्यौ मन वहै सुनन की लाई ढोरी ॥ ४०८ ॥

---

†नेकौ उहि न जुदी करी हरषि जु दी तुम माल ।
उर तैं बास छुट्यो नहीं बास छुटे हू लाल ॥ ३३८ ॥

बास छुटे हू लाल बास उर कौ नहिँ छूट्यो । टूट्यो फंदा तऊ प्रेम वासौं नहिँ टूट्यो ॥ उहिँ सूखे हूँ सूख्यो नेह न कछू हिये को । सुकबि भई नीरस तऊ नीरस भई न नेको ॥ ४०८ ॥

---

‡मोहि भरोसो रीझि हैं उझकि झाँकि इक बार ।
रूप रिझावनहार वह ये नैना रिझवार ॥ ३३९ ॥

ये नैना रिझवार रहत छबि हित तरसाने । छनक झलक ही देखि होत

---

* यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है ॥ † सुगन्ध जाती रही तो भी उसका उर में निवास बना रहा ॥ ‡ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ।

अतिसै हरसाने ॥ जोवन को उत जोर करत सूखे न हरो सो। वनी ठनी सब वात सुकवि है मोहि भरोसो ॥ ४१० ॥

ल्याई लाल विलोकिये जिय की जीवनमूलि।
रही भौंन के कौंन मैं सोनजुही सी फूलि ॥ ३४० ॥

सोनजुही सी फूलि रही अति प्रेमडहडही। संजीवन की वेलसरिस जगमगत लहलही ॥ लसत केस जनु भृङ्ग रहे चहुँदिस मँड़राई। सुकवि स्याम चलि देखहु मै स्यामा कौं ल्याई ॥ ४११ ॥

---

*नहिँ हरि लौं हियरे धरौ नहिँ हर लौं अरधङ्ग।
एकत ही करि राखिये अङ्ग अङ्ग प्रति अङ्ग ॥ ३४१ ॥

अङ्ग अङ्ग प्रति अङ्ग अङ्ग मिलि एकै ह्वैहैँ। मन मन सौं मति मति सों जिय जिय सौं मिलि जैहैँ ॥ हरि राधा इक निरखि सवै हरसैहैँ सुख लाहि। सुकवि ऐसि ही करो रहै ज्यौं भेद कछू नहिँ ॥ ४१२ ॥

---

†रही पैज कीनी जु मैं दीनी तुम्हैँ मिलाय।
राखो चम्पकमाल सी लाल गरे लपटाय ॥ ३४२ ॥

लाल गरे लपटाय अङ्ग अँग माहिँ रमाओ। नैनन हूँ छवि राखि पुलकि आनँद उमगाओ ॥ वैनन राधा नाम कहो हियरो तजि गिरही‡। सदा सँजोगी सुकवि रहै कव हूँ जिन विरही ॥ ४१३ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मे नहीं है।
† पैज = प्रतिज्ञा। ‡ गिरही = गांठवाला।

*कै बा आवत इहिँ गली रह्यौ चलाय चलै न।
दरसन की साधै रहै सूधे रहत न नैन॥ ३४३॥

सूधे रहत न नैन महल ही के दिस देखत। ग्रीवभङ्ग कै रहत इतै उत कछू न पेखत॥ झुक्यो उतै मुख लख्यो लख्यो उनको हम जै बा। प्यारी ही पै बिक्यो सुकबि आवत ह्याँ कै बा॥ ४१४॥

देखौं जागत वैसियै साँकरि लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जात भाजि को जानै किहिँ बाट॥ ३४४॥

को जानै किहिँ बाट भटू नागर नट आवत। †आँखि लगत ही आँखिन पै जनु आँखि लगावत॥ सुकबि चहत ज्यौं धाइ धरन ता ही छन भागत। नींद टुटे पै साँकर लागी देखौं जागत॥ ४१५॥

पुनः

को जानै किहिँ बाट आइ चट मटका फोरत। पट झटकत मटकाइ भौंह दृग सौं दृग जोरत॥ जैसे चरितन सुनत सोई सोवत नित पेखौं। ह्वैहै वह दिन कबै सुकबि जागत हरि देखौं॥ ४१६॥

---

‡सुख सौँ बीती सब निसा मनु सोये इकसाथ।
मूका मेलि गहे जु छन हाथ न छोड़े हाथ॥ ३४५॥

हाथ न छोड़े हाथ अचानक दै मोखा सौँ। धीमे धीमे धाय धरे हरि नै धोखा सौँ॥ सोई सुपन मैँ लख्यो स्याम बरनौँ का मुख सौँ। सुकबि मिलत बतरावत निसि सब बीती सुख सौँ॥ ४१७॥

---

* यह दोहा संस्कृत टीका हरिप्रकाश और अनवरचन्द्रिका में नहीं है। नायक कई बेर इस गली में आता है पर उसके नेत्र सूधे नहीं रहते चलाने से भी नहीं चलते इस लिये हमें दरस की साध ही रही॥ कैवा = कैवार (टिप्पणी दो० ४५) यह उत्तम भाषा नहीं है॥ † नींद आते ही मानो आखों पर नजर लगाता है॥ ‡ नायिका सखी से॥ मोखे में हाथ डाल के हाथ पकड़ा सो इसीं विषय के स्वप्न में सारी रात ऐसे सुख से बीती मानों एक साथ सोये॥

*दुचिते चित हलति न चलति हसँति न भुकति बिचारि ।
लिखत चित्र पिय लखि चितै रही चित्र लौं नारि ॥ ३४६ ॥

रही चित्र लौं नारि विचित्र हि हियरो कीनैं । अनिमिष नैनन तकति छिपी सी ढूका दीनैं ॥ किहिँ की सूरत होत बनी† मूरत निरखन हित । आधे साँस हि रुकी सुकवि स्यामा दुचिते चित ॥ ४१८ ॥

---

‡करमुँदरी की आरसी प्रतिबिंब्यौ प्यौ आय ।
पीठि दिये निधरक लखै इकटक दीठि लगाय ॥ ३४७ ॥

इकटक दीठि लगाय रही नाहि न इत घूमति । वार वार उर लाय नैन परसावति चूमति ॥ चुँदरी सौं पुनि पोँछि कपोलन छावति सुँदरी । सुकवि पीय सोँहैँ कै पुनि निरखत कर-मुँदरी ॥ ४१६ ॥

ध्यान आनि ढिग प्रानपति मुदित रहति दिनराति ।
पल कंपति पुलकति पलक पलक पसीजत जाति ॥ ३४८ ॥

पलक पसीजतजाति रोमाञ्चित व्है पलपल मैं । पलपल गदगद होइ परति प्यारी हलचल मैं ॥ चित्रलिखी सी होति पलक मैं बैठि कै अडिग । सुकवि विरह संजोग कियो पिय ध्यान आनि ढिग ॥ ४२० ॥

+पिय के ध्यान गही गही रही वही व्है नारि ।
आप आप ही आरसी लखि रीझति रिझवारि ॥ ३४९ ॥

लखि रीझति रिझवारि आपु अपने हिं हरि जानति । निज प्रतिबिम्बहिं

---

*पति चित्र लिखता है छिपी नायिका देखती है कि देखें मेरा चित्र लिखता है कि दूसरी का ॥
† पति जो चित्र लिख रहा है उसमें देखें किसकी तसवीर बनती है यह विचारती हुई मूर्त्ति ऐसी ठठक गई ॥ ‡ यह दोहा अनवरचन्द्रिका और देवकीनन्दन टीका में नहीं है ।
+ पिय के ध्यान गही गही = पिय के ध्यान में लगी लगी ॥ इस पर लल्लूलाल यों प्रश्नोत्तर करते हैं ॥
"प्रश्न दो० गही शब्द इक अधिक है यह इक प्रश्न विख्यात । आप आप पै रीझवो यह असमंजस बात ॥

देखि प्रानप्यारी पुनि मानाति ॥ पुलकि पसीजति पूरित प्रेम जुड़ाइ रही जिय। सुकवि पिया को रूप रह्यो अरु हीय भयो पिय ॥ ४२१ ॥

पुन:

*लखि रीझति रिझवारि आपु अपने हीँ रूपै। कुण्डल कलँगी मुकुट धारि छवि करी अनूपै ॥ दर्पन हीँ कौँ चूमि उमङ्ग निकारति जिय के। राधा बाधा-हरनि सुकबि राची रँग पिय के ॥ ४२२ ॥

लाल तिहारे रूप की कहौ रीति यह कौंन।
जासौँ लागैँ पलक दृग लागैँ पलक पलौ न ॥ ३५० ॥

लागैँ पलक पलौ न सबै निस बीतत जागत। कछु टोना सो करत नींद हू कित धौँ भागत ॥ कबहुँ डहडहे सुकबि बहावत कब हुँ पनारे। नैन नसैले भये रूप लखि लाल तिहारे ॥ ४२३ ॥

अपनी गरजनि बोलियत कहा निहोरो तोहि।
तू प्यारो मो जीय कौं मो जिय प्यारो मोहि ॥ ३५१ ॥

मो जिय प्यारो मोहि चहत मैँ जीय जियावन। या सौँ तुम सौँ बोलि अहै इहिँ सुधा पियावन ॥ बरजनि कीजै नाहिँ मानिये मेरी अरजनि। मरजानि प्यारे सुकबि बोलियतु अपनी गरजनि ॥ ४२४ ॥

---

†तो ही निरमोही लग्यौ मो ही अहै सुभाव।
अनआये आवै नही आये आवे आव ॥ ३५२ ॥

आये आवै आव याहि सौँ मोढिग झटपट। तोबिन हियबिन भई प्रान

नर० पियकै ध्यान गही जु तिहिं गही आरसी बाम। मन करि हरि ह्वै कै लखी तिय छवि आरसि मेँ आ॥ * यह कुण्डलिया इस भाव पर है कि नायिका नायक पर अनुरक्त हो नायक बन बैठी और रही ॥ कैवं (क रूप के) प्रतिविम्ब को आरसी मे देख रीझती है ॥ †तेरा (ही) मन, निर्मोही है (लग्यो पर नजर लगा) तेरा हृदय लगा सो मेरे मन का भी यही स्वभाव हो गया, तुमारे आये बिना मन हमारे स्वप्न मेँ सारो रा(तुमारे आये से आवेगा इस लिये आव॥ (इस दोहे मे न प्रसाद है न उत्तम उक्ति है)।

अब जात अहै चट ॥ मेरो मोकों देइ जाहु मग चाहै जो ही । सुकवि हहा बलि जाउँ पाउँ लागों पिय तोही ॥ ४२५ ॥

---

* छुटन न पैयत छनक बसि नेहनगर यह चाल ।
मार्‍यो फिरि फिरि मारियै खूनी फिरत खुस्याल ॥ ३५३ ॥

खूनी फिरत खुस्याल कपोलन जुलफन झारे । तिरछे तकि मुसकात और हू हीय बिदारे ॥ वाकी सूरत याद करत हू जनु जिय जैयत । सुकवि कहूँ दुखदन्दन सौं पुनि छुटन न पैयत ॥ ४२६ ॥

---

†निरदय नेह नयौ निरखि भयो जगत भयभीत ।
यह अब लौं न कहूँ सुनी मरि मारिये जु मीत ॥ ३५४ ॥

मरि मारिये जु मीत करोर कलेसन परि कै । पग छूए हू रहिय करेर करेजो करि कै ॥ सोँहँ हु भौंहन ऐंठति है कैसो तुअ हिरदय । सुकवि लखी नहिं सुनी बात ऐसी कहुँ निरदय ॥ ४२७ ॥

दुखहायनि चरचा नहीं आनन आनन आन ।
लगी फिरति ढूका दिये कानन कानन कान ॥ ३५५ ॥

कानन कानन कान लगावति ‡कान न धारति । + तानन तानन तान तनत

---

* नेह नगर की यह चाल है कि एक छन रह के भी छुट नहीं सकते ॥ जो मारा गया है (विरह) और खूनी प्रसन्न फिरता है॥ खुस्याल = खुशहाल ॥ †मानवती से सखीवचन ॥ हे निर्दय, तेरा नये ढंग का नेह देख के जगत् भयभीत हुआ ॥ आप भी मरना और मित्र को मारना यह आज तक सुना भी न था ॥ ‡कान = लज्जा ॥ + तानों में (गान में) ताने (व्यङ्ग वचन) तान कर (फैलाकर) तनती है (गर्व करती है, पकड़ती है) ॥ मान (मर्यादा = इज्जत) के न मानने का (किसी की इज्जत बिगाड़ने का, कलङ्क लगाने का) ही मान (अभिमान) मान कर मुह नहीं मोड़ती (बकना नहीं छोड़ती अथवा किसी की ओर नहीं देखती) ॥ जान न ? (क्या तू नहीं जानती ?) जान न जान भगी ? (क्या जान नहीं जाने लगी ?) ॥

जियरो जनु जारति ॥ मान न मानन मान मानि मनु मोराति नहिँ मुख। जान न जान न जान लगी कोउ सुकबि हरहु दुख ॥ ४२८ ॥

बहके सब जियकी कहत ठौर कुठौर गनै न।
छन औरै छन और से ये छबिछाके नैन ॥ ३५६ ॥

ये छबिछाके नैन झुकत झूमत मतवारे। ठठकि २ झिपि अटकि अटकि अरुझत अनिारे ॥ प्रेमबारुनी पिये अरुन ह्वै घूमत गहके। सुकबि सम्हार सम्हरत नहिँ अब नैना बहके ॥ ४२९ ॥

नैक उतै उठि बैठियै कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जात *नहँदी छनक महँदी सूखन देहु ॥ ३४७ ॥

महँदी सूखन देहु होत यह पुनि पुनि गीली। अरुनाई नहिँ चढ़त होत अँग की दुति पीली ॥ सारी सरकी जात धूप हू कँपत अङ्ग सुठि। सुकबि जाउँ बलि टहरहु एजू नेक उतै उठि ॥ ४३० ॥

---

†चितवन रूखे दृगनि की हाँसी बिन मुसकान।
मान जनायौ मानिनी जान लियौ पिय जान‡ ॥ ३५८ ॥

जान लियौ पिय जान सुनत गिनती के बैना। नाहि नेकु समुहात इतै उत अटकत नैना ॥ बैठति त्यौं रुख मोरि ग्रीव फेरनि कै कितवन+। सुकबि पायँ नख लेखनि देखति रुकि रुकि चितवन ॥ ४३१ ॥

---

§पतिऋतु अवगुन गुन बढ़तु मान माह कौ सीत।
जात कठिन व्है अति ¶मृदौ रमनीमननवनीत ॥ ३५९ ॥

रमनीमननवनीत सीत लहि ठिठुरि गयो अति। बिरहनिसा बहु बढ़ी

---

* नहँ पर लगाई। † यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मे नहो है। ‡ जान = सुजान = चतुर। + कितव = कपट। § यह दोहा अनवरचन्द्रिका मे नहीं है। ¶ मृदौ मृदु भी।

घाम लों नरम भयें रति ॥ कोपआँच ही भली लगति चादर नहिं उतराति। सुकवि आज हेमन्त सबै विधि आनि करयो पाति ॥ ४३२ ॥

वा ही निसि तें ना मिट्यो मान कलह को मूल ।
भले पधारे पाहुने व्है गुड़हर को फूल ॥ ३६० ॥

ह्वै *गुड़हर को फूल पुलक सों फूलि पधारे। तेहिं छन प्यारी नैन रङ्ग गुल्लाला धारे ॥ फूल झरति सी वात कही तुम अपनी दिस तें । सुकवि लगी †फुलझरी तिया हिय वाही निस तें ॥ ४३३ ॥

---

‡खरे अदब इठलाहटी उर उपजावति त्रास ।
दुसह संक बिख की करै जैसे सोंठ मिठास ॥ ३६१ ॥

जैसे सोंठ मिठास संक विष को उपजावै । धनुष नये पै प्रानहरन को रूप दिखावै ॥ जिमि निकलंक मयङ्क असुभ दरसावत निखरे × । अदब सुकवि को देखि होस मेरे तिमि बिखरे ॥ ४३४ ॥

दोऊ अधिकाईभरे एकै गौं गहराँय ।
कौन मनावै को मनै मानै मति ठहराय ॥ ३६२ ॥

मानै मति ठहराय तमासा होरी कीनो । प्यारी कहत लाल वरवस अँचरा गहि लीनो ॥ कन्दुक लियो छिपाय स्याम भाषत पुनि सोऊ । खेल खेल ही सुकवि आज रूसे हैं दोऊ ॥ ४३५ ॥

"हँसि हँसाय उर लाय उठि कहि न रुखौंहैं बैन ।
जकित थकित से व्है रहे तकत तिरीछे नैन ॥ ३६३ ॥

तकत तिरीछे नैन दीनताभरे साँवरे । तेरी हाहा खात भोरसों भये

---

*गुड़हर = गुड़हल पोड्रपुष्प ॥ प्रसिद्ध है कि यह झगड़ा कराने वाला फूल है ॥ † फुलझरी = बारूद की बत्ती ॥ ‡ इठलाहटी = हठी । यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मे नहीं है ॥ × निखरे चोखे ॥
" यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ॥

वावरे ॥ फिरि जैहै तो बन्यो बनायो सुख जैहै नसि । अब हूँ सुकबि हँसाय आय उर लाय धाय हँसि ॥ ४३६ ॥

मान करत बरजत न हौं उलटि दिवावत सौंहँ ।
करी रिसौंही जाँहिं गी* सहज हँसौंहीं भौंह ॥ ३६४ ॥

सहज हँसौंही भौंह रिसौं ही होति न तेरी । भरी ठठोली बोलन ह्वैहै नाहिँ करेरी ॥ नैन सलोने मुलुक भरे नहिँ सहैं अनख भर । सुकबि तमासा करत कहा सुन तू न मान कर ॥ ४३७ ॥

---

†जो चाहे चटक न घटै मैलो होय न मित्त ।
रजराजस न छुवाइये नेह चीकने चित्त ॥ ३६५ ॥

नेहचीकने चित्त नाहिँ जोरावरि कीजै । रागरङ्गरस लाइ अधिक आनँद नित लीजै ॥ कलहझोक फटिजात प्रेम सौं बाँधि निबाहै । चीन्ह चीन पट चित्त सुकबि चोखो जो चाहै ॥ ४३८ ॥

---

‡सौंहैं हू चाह्यौ न तैं केती द्याई सौंह ।
एहो क्यौं बैठी किये ऐंठी ग्वैठी भौंह ॥ ३६६ ॥

ऐंठी ग्वैठी भौंह किये अज हूँ है बैठी । कर जोरे उन तऊ हहा हिय दया न पैठी ॥ छन ही मै पछैतैहै करिकै सीस निचौंहैं । सुकबि पाँय परि है दूतिन के सखियन सौंहैं ॥ ४३९ ॥

---

*काकूक्ति ॥ लल्लूलाल तथा और भी कई टीकाकार ऐसे ठिकाने 'काकोक्ति' लिखते हैं। यह संस्कृत न जानने का फल है ॥ †किसी कपड़े मे तेल देके रङ्ग चढ़ाया जाता है सो मित्र का चित्त वैसा ही है॥ इस भाव पर कुण्डलिया है । चीन के कपड़े की चिरकाल से प्रशंसा है जैसे शाकुन्तल मे कालिदास ने कहा है "चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य" लोक मे भी प्रसिद्ध है "अँगिया मोरी री मसकि गई चीन" । ‡ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मैं और देवकीनन्दन टीका मैं नहीं है ॥

*खरी पातरी कान की, कौन बहाऊँ बानि।
आककली न रली करै, अली अली जिय जानि ॥ ३६७ ॥

अली अली जिय जानि भली ही कली निहारै । आक कटेरी कनक सेमरन नाहिँ उर धारै ॥ चटकभरी चम्पा हू की नहिँ करत खातरी। सुकवि न जानत अरी कान की खरी पातरी ॥ ४४० ॥

†तोरस राच्यौ आन बस, कह्यौ कुटिलमति कूर।
जीभ ‡निबौरी क्यौँ लगै, बौरी चाखि अँगूर ॥ ३६८ ॥

बौरी चाखि अँगूर निबौरी कौँ को चाहै। तोनैनन लखि नैन आन नहि करत उछाहै ॥ कैसे चलिहै चित्त भयो है जो तेरे बस। सुकवि हिँ नीरस लगत सबै राच्यो जो तोरस ॥ ४४१ ॥

§गहली गरब न कीजिये, समै सुहागहिँ पाय।
जिय की जीवनि जेठ सो, माह न छाँह सुहाय ॥ ३६९ ॥

माह न छाँह सुहाय ठंढ कछु भली न लागै । ग्रीषम अगिन रु सीत बिजन सौं सुख नाहिँ पागै ॥ या सौँ गरब बिहाइ प्रेम सौँ ह्वै चहपहली। सुकवि छाँडि यह बानि गाँठि गह ली सो गह ली ॥ ४४२ ॥

* तू कान की अति दुबली है, जो सुनै सो ही मान लेती है। तेरी क्या बहकने की बान है। तू निश्चय समझ, भौँरा आक की कली से (रली) रति नहीँ करता ॥ लल्लूलाल लिखते हैँ "यह कौन सुभाव है इसे मैँ बहाऊँ ॥ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मे नहीँ है।

† यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मेँ नहीँ है। ‡ निबौरी = नीम का फल।

§ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ मे नहीँ है। गहली = बौड़ही राजपुतानी 'गैली' ॥ व्रजभाषा मेँ भी यह शब्द मिलता है जैसे प्रसिद्ध होरी "गोरी काहे तेरो आज बदन मैलो। कै तेरो गौनो करत बाप नहिँ कै तेरो पीय निपट गैलो" ॥ संस्कृत "ग्रहिल"।

बहकि बड़ाई आपनी, कत राचत मतिभूल ।
बिन मधु मधुकर के हिये, गड़ै न गुड़हर* फूल ॥ ३७० ॥

गड़ै न गुड़हर फूल नाहिँ चम्पा मन भावै । कर्कस अर्ककली हु नाहिँ कछु जिय तरसावै ॥ करु केते सिंगार तोहि नहिँ चहै कन्हाई । हरिहिय राधा रहति सुकबि माति बहकि बड़ाई ॥ ४४३ ॥

अनियारे दीरघनयन किती न तरुनि समान ।
वह चितवनि औरै कछू जिहिँ बस होत सुजान ॥ ३७१ ॥

जिहिँ बस होत सुजान अहैँ नैना वे औरे । बनत बनाये नाँहि कियेँ नखरे के तौरे ॥ भौँह नचाइ लपेट हु क्योँ नाहिँ काजर कारे । अहैँ सुकाबि बस करन तोऊ कोउ दृग अनियारे ॥ ४४४ ॥

पुनः

जेहिँ बस होत सुजान अहै सो डीठि बसीकर । मदनमन्त्र की सारभरी सी अमीधारझर ॥ धन्य अली तुअ नैन किये बस मुरलीवारे । वारत तन मन सुकावि देखि तुअ दृग अनियारे ॥ ४४५ ॥

हाहा बदन उघार दृग सफल करैँ सब कोइ ।
रोज सरोजन कै परै हँसी ससी की होइ ॥ ३७२ ॥

हँसी ससी की होइ चमक चाँदनी लजावै । सुधाधार सी बरसि बरसि जनहिय हरसावै ॥ रूप भिखारिन कछू भीष दै ठानि उछाहा । सुकबि बदन दिखराउ वारने जाऊँ हाहा ॥ ४४६ ॥

---

* गुड़हर = उड़हुल ॥ जैसे दो० ३६० मेँ ॥

कहा लेहु गे खेल में तजो अटपटी बात ।
नैक हँसौंहीं हैं भई भौंहैं सौंहैं खात ॥ ३७३ ॥

भौंहैं सौंहैं खात भई हैं नैक हँसोंहैं । तुम भटकौंहैं बचन बोलि हरि करत रिसौंहैं ॥ पुनि उभरे पै मान उरहनो हम हिं देहु गे । राधा रूठे सुकवि हहा सुख कहा लेहुगे ॥ ४४७ ॥

चलौ चलैं छुटि जाय गौ हठ रावरे सँकोच ।
खरे चढ़ाये हे ते अब आये लोचन लोच ॥ ३७४ ॥

आये लोचन लोच भौंह हू जुगल सिधानी । व्यङ्ग ढङ्ग तजि वानी हू कछु कछु मधुरानी ॥ हास हु कियो विलास कपोलन भाव रँग रले । अब न कीजिये देर सुकवि मोसँग चलौ चले ॥ ४४८ ॥

अनरस हू रस पाइये रसिक रसीली पास ।
जैसे *साँठे की कठिन गाँठौ भरी मिठास ॥ ३७५ ॥

गाँठौ भरी मिठास और की बात कहा है । गरवीली के गरब हु मैं त्यौं रंग रहा है ॥ टेढ़े सूधे बैन होउ किन कोप प्रेम बस । रसिक रसीली निकट सुकवि कौं कछू न अनरस ॥ ४४९ ॥

---

†क्यो हूँ सह बात न लगै थाके भेद उपाय ।
हठदृढगढ़गढ़वै सु चलि लीजै सुरँग लगाय ॥ ३७६ ॥

---

* सांठा = ऊख । † इस पर लल्लू लाल यों लिखते हैं ॥ गुरु मान सखी का वचन नायक से । किसी भांति सखी बात तुमारी नहीं लगै थके सब भेद औ यत्न । हठ दृढ गढ़ को आप गाढ़े हो चल के सुरंग लगा कर लीजै । रूपक औ सेपालङ्कार स्पष्ट है । हठ औ गढ़ का रूपक औ सुरंग पद श्लेष । सुरंग अच्छा रंग । औ सुरंग कहैं नकब जो गढ़वै गाढ़े को कहते हैं ॥ " अथवा क्यौं हूं सह = किसी के साथ भी । (यह अर्थ दत्त कवि (दुर्गादत्त कवि) कृत टिप्पणी में है)।

लीजै सुरँग लगाय रँगीले ताकि निसानो । अजब मोरचा अहै आजु यह साँची मानो ॥ पंचबान उत तुअ सहायता करि है त्यौं हूँ । सुकबि मान की आन तोरि रन जीतहु क्यौं हूँ ॥ ४५०॥

सकत न तुव ताते बचन मोरस को रस खोय ।
छन छन औंटे छीर लौं खरौ सवादल होय ॥ ३७७ ॥

खरो सवादल होय सुकबि अति गाढ़ो गाढ़ो । अति अनंद को कन्द नेहमय सबसुखबाढ़ो ॥ प्रीति सकैं नाहिँ तोरि नैन तेरे अनखाते । सुकबिन को रस नासि सकत तुअ बैन न ताते ॥ ४५१ ॥

सकुचि न रहिये स्याम सुनि ये सतरौंहैं बैन ।
देत रचौंहैं चित कहे नेहनचौंहैं नैन ॥ ३७८ ॥

नेहनचौंहैं नैन कपोलन पुलक समाई । रोम लखो सगबगे अधर भई मुसुकलुनाई ॥ पटझटकन कम भई भौंह हू सूधी लहिये । सुकबि मनाओ एक बेर पुनि सकुचि न रहिये ॥ ४५२ ॥

आये आप भली करी मेटन मानमरोर ।
दूर करौ यह देखि हैं छला छिगुनियाँछोर ॥ ३७९ ॥

छला छिगुनियाँछोर छुरावहु छैल छबीले । छली छिछोरे बैन छाँडि छन देहु रसीले ॥ पीकलीक हू नीक लगै नाहिँ मुख अलसाये । सुकबि छिपाओ ऐब मान जो मेटन आये ॥ ४५३ ॥

सीरे जतननि सिसिर ऋतु सहि बिरहिनि तनताप ।
बसिबे को ग्रीषमदिननि पर्‍यो परोसिनि पाप ॥ ३८० ॥

परधी परोसिनि पाप सबै तजि गाँव * पराई। सौ सौ करत उपाय सखी ढिग सकत न आई॥ होइ मौत की मौत जाइ जो ताके नीरे। सुकवि कोस पै सूखि जात खस चन्दन सीरे॥ ४५४॥

आड़े दै आले वसन जाड़े हू की राति।
साहस कै कै नेहवस सखी सबै ढिग जाति॥ ३८१॥

सखी सबै ढिग जाति नीर छींटति उसीर के। चरचति चन्दन अङ्ग हरन अति ताप पीर के॥ विरहअगिनसन्ताप सुकवि इमि हलचल पाड़े। रुकि रुकि डरि डरि चलत सखी अम्बर दै आड़े॥ ४५५॥

औंधाई सीसी सु लखि विरह वरति विललात।
वीच हिं सूखि गुलाव गो छींटौ छुई न गात॥ ३८२॥

छींटो छुई न गात सूखि धौं कितै विलानी। सीसी हू भई टूक टूक चट चट चटकानी॥ हाथ फफोले परे चमकि सब सखी * पराई। वजर परो मैं सुकवि आज सीसी औंधाई॥ ४५६॥

जिहिं निदाघ दुपहर रहै भई माह की राति।
तिहिं उसीर की रावटी खरी आवटी जाति॥ ३८३॥

खरी आवटी जाति माघ की आधी रजनी। पच्छिम की हिमवायु लूह सी मानत सजनी॥ हिमजड़जल हु अँगार होत कर राखत ही तिहिं। सुकवि दसा कहि सकै कौन भयो स्यामविरह जिहिं॥ ४५७॥

† विकसत नवबल्लीकुसुम निकसत परिमल पाय।
परसि पजारति विरहिहिय वरसि रहे की वाय॥ ३८४॥

---

* पराई = भागी।

† बरसने के समय की हवा, विकसते हुए नववल्लीकुसुम की पाके निकलती है तो भी विरही के हृदय को जलाती है।

बरसि रहे की बाय बारि मिलि बारि रही अति। धूम घटा दृग दिये जात नाहिँ घबरानी मति॥ सुकबि ताहु पै कालतरज सो लगै गरजरव। * कुन्द करत जनु हीय कुन्दकलिका बिकसत नव॥ ४५८॥

बिरहजरी लखि जीँगननि† कही सु वह कै बार।
अरी आव उठि भीतरैँ बरसत आज अँगार॥ ३८५॥

बरसत आज अँगारभार भय करत भाग री। निरखि नीर बिरहीनरना-सन नवलनागरी॥ † दहकि दहकि दहकाइ दाहदह दहत दीह सखि। सुकबि बीर बाहिर न बैठि बहु बिरहजरी लखि॥ ४५६॥

धुरवा होँहिँ न अलि उठे धुवाँ धरनि चहुँकोद ¶।
जारत आवत जगत कौँ पावस प्रथमपयोद॥ ३८६॥

पावसप्रथमपयोद त्रिलोक हिँ लखहु जरावत। जुगनूँ चिनगी कोटि कोटि हियरो हहरावत॥ यह दुख लखि जनु रोवत गगन पुकारत मुरवा। सुकबि अहैँ घनस्याम नाहिँ ये पापी धुरवा॥ ४६०॥

पावकझर तेँ मेहझर दाहक दुसह बिसेखि।
दहै देह वाके परस याहि दृगन हीँ देखि॥ ३८७॥

याहि दृगन हीँ देखि देह दहदह कै दहकत। धुरवाधूम‖ न धूम सरिस लखि हिय अति बहकत॥ सुकबि स्याम के बिन पतङ्ग सो जीय रह्यो जर। बिजुरी लपकाति निदरि रही है खरपावकझर॥ ४६१॥

---

* कुन्द = कुण्ठ। † जीँगन = ज्योतिरिङ्गण = जुगनूँ‡ "नडति" इ०प्र०का पाठ है॥
† सुलग सुलग के जलन के छन्द को उत्तेजित करके अत्यन्त जलाता है॥ ¶ चारों ओर
‖ मेघों की धूम (भीड़)

मार सु मार करी खरी अरी मरी हि न मारि।
सींचि गुलाव घरी घरी अरी वरी हि न वारि॥ ३८८॥

अरी वरी हि न वार वावरी तू विन काजै। * हरि की कथा सुनाउ दया जो तोहिय राजै॥ सुकवि मिलन की आस एक अवलम्ब उधारक। नाहिँ तो कैसैँ वचती मार्‌यो मार सु मारक॥ ४६२॥

अरे परे न करै हियौ खरे जरे पर जार।
लावत घोरि गुलाव सौं मिलै मिलै घनसार॥ ३८९॥

मिलै मिलै घनसार और चन्दन क्यौं लावत। मरत मरत हू हाय अधिक क्यौं पीर वढ़ावत॥ जीवन है मम मरन जीइहौं साँच हूँ मरे। सुकवि लाउ हालाहल खस कौं करि परे अरे॥ ४६३॥

कौन सुनै कासौं कहौं सुरति विसारी नाह।
वदावदी जिय लेत हैं ये वदरा वदराह॥ ३९०॥

ये वदरा वदराह वदी पै भये उतारू। लेत करेजो काढ़ि अहैं ऐसे वट-पारू॥ विन हरि नाहिं उपाय सुकवि हू सोचि कहै का। घवराई तिय देखि कौन सौं कौन सुनै का॥ ४६४॥

---

† फिरि सुधि दै सुधि द्याय प्यौ इहिं निरदई निरास।
नई नई वहुरौं दई दई उसास उसास ‡॥ ३९१॥

दई उसास उसास वहुरि विरहागी जागी। हती मूरछा सुखमय सी सोऊ जनु भागी॥ फेर वढ़ाई आधि औधि आवन की वुधि दै। सुकवि हहा तैं कहा कियो पिय की फिरि सुधि दै॥ ४६५॥

---

* मरणावस्था ही में हरिकथा भी सुनाई जाती है।

† यह दोहा हरि प्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है॥   ‡ उसास को उकास दिया॥

वनबाटनि पिकबटपरा ताकि बिरहिनमतमैन।
* कुहौ कुहौ कहि कहि उठै करि करि राते नैन ॥ ३९२ ॥

करि करि राते नैन मोरि गरदन मुहँ फारति। छिपि रसालदलजाल काल सी सूरत धारति ॥ पर फरफर फरराय हलाहल सो घालति तन। भागहु भागहु सुकवि कोकिला व्यापी बनवन ॥ ४६६ ॥

दुसह बिरह दारुन दसा रह्यो न और उपाय।
जात जात जिय राखिये पिय की बात सुनाय ॥ ३९३ ॥

पिय की बात सुनाय आइबे की दै आसा। अलप औधि दिखराय किहूँ विधि रखिये साँसा ॥ बैद सबै थाकि गये मन्त्र हू की न जुगति लह। सुकवि पीय तसवीर लखति जीयति दुखदुःसह ॥ ४६७ ॥

कहे जु बचन बियोगिनी बिरहबिकलअकुलाय।
किये न को अँसुवासहित सुवा ते बोल सुनाय ॥ ३९४ ॥

सुआ ते बोल सुनाय कौन धौं नाहिँ रुआये। हाय हाय करि कौन कठिन हिय नहिँ दरकाये ॥ सखिन विलाप उचारि नाँहि जिय कौन के दहे। सुकवि मूरछित भयो बचन सुनि तासु के कहे ॥ ४६८ ॥

पुनः

सुआ ते बोल सुनाय हाय पाथर दरकाये। हरे बिपिन झरसाय नदी नद नीर सुखाये ॥ सुकवि बीचबिच पीयनाम सुनि सुख कछू लहे। नाहि प्रलै है जात बचन सुनि कीर के कहे ॥ ४६९ ॥

---

* कुहौ कुहौ = मारो मारो। (कुश्तन्, फ़ारसी, इसमेँ श से ह हो गया है)

✻ करि राख्यो निर्धार यह मैं लखि नारीज्ञान।
वहै वैद औषधि वहै वह ई रोगनिदान ॥ ३९५ ॥

वह ई रोगनिदान जासु बिनु है बियोगजर। वह ई है पुनि बैद आइ गहिहैं याको कर॥ वह ई औषध अहै मैनधन्वन्तरि भाष्यो। वहै अहै अनुपान सुकवि निहँचै करि राख्यो ॥ ४७० ॥

---

† नेह कियो अति डहडह्यो बिरह सुखाई देह।
जरै जवासो ज्यों जमैं जैसैं बरसे मेह ॥ ३९६ ॥

जैसैं बरसे मेह धान जो अति लहरावैं। तऊ जवासे सूखि सूखि अँग अँग सिकुरावैं॥ मैन बान बरसाय जराई अङ्गलता मति। सुकवि रसाल रसाल डहडह्यो नेह किया अति ॥ ४७१ ॥

---

‡ कहा भयो जो बिछुरे हू मोमन तोमन साथ।
उड़ो जाति कित हूँ गुड़ी तऊ उड़ायकहाथ ॥ ३९७ ॥

तऊ उड़ायकहाथ गुड़ी को एक अधारा। मेरे चित की डोर अहै तुअ कर निरधारा॥ मारहु चहै जियावहु कीजै मन हिं ठयो जो। सुकवि चलै नहिं मोमन बिछुरे कहा भया जो ॥ ४७२ ॥

¶ बिरहाबिथाजलपरस बिन बसियत मोहियताल।
कछु जानत जलथंभबिधि दुर्जोधन लौं लाल ॥ ३९८ ॥

✻ वस्तुतः यह सोरठा है परन्तु कुण्डलिया के लिये उलट के लिखा है॥ इस पर हरिप्रसाद पण्डित ने यह आर्या लिखी है "इहा मारीज्ञाने निश्चित्य स्थापितं मया चैतत्। तदेव रोगनिदानं भवति तदौषधं स एव भिषक्" ॥ इस में विषम मे जगण है तथा सप्तगण विभाग में वैषम्य है अतः छन्दोभङ्ग है ॥

† यह सब दोनों में सोरठा है परन्तु कुण्डलिया के सुभीते के लिये यहां उलट के दोहे के प्रकार में रक्खा है। पानी बरसने से जवासा सूखजाता है सो जो जमता है, ऐसेही बिरह ने देह को सुखाया सो नेह को तरुण किया॥ ‡ प्राय ऐसा रसान्वय। ● यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है।

¶ इस दोहे में व्यथा को जल बनाया सो स्त्रीलिङ्ग को पुंलिङ्ग से रूपक अनुचित है। यदि "बिरह दुःख जल" पाठ होता तो अच्छा होता॥

दुर्जोधन लौं लाल डूबि मोहीय बिराजे । मो अँग अँग बदरङ्ग भयो तुम नव रँग साजे ॥ नीलकमल से बिकसि रहे मुरझात नहीं पल । सुकबि प-रस नहिँ करत तुम्हैं वह बिरहबिथाजल ॥ ४७३ ॥

---

* अबला क्यौं करि सहि सकै पावस कठिन जु पीर ।
+रक्तबीज ‡ सम अवतरे ते ऊ धरत न धीर ॥ ३९९ ॥

ते ऊ धरत न धीर नारि नर सौं जो न्यारे । ¶ नीर गगन अरु कानन हूँ आकुल निरधारे ॥ बड़े बली गिरि हू झरना आँसून रहे झारि । सुकबि कहो सहि सकै पीर पुनि अबला क्यौं करि ॥ ४७४ ॥

---

§ आनि इहाँ बिरहा धरयो स्यौ बिजुरी जनु मेह ।
दृग जु बरत वरषत रहत आठौं जाम अछेह ॥ ४०० ॥

+ आठौं जाम अछेह बरत अरु बरसत नैना । छाती चमकत थरथरात सुनि परैं न बैना ॥ गरत न जरत न अङ्ग पाइ घन आगिन पानी । सुकबि बीजुरी जूहसहित घन राख्यो आनी ॥ ४७५ ॥

‖ करि साँकर बरुनी सजल कौड़ा आँसूबूँद ।
दृग × मलंग डारे रहैं कीने बदनन मूँद ॥ ४०१ ॥

---

* यह सब ग्रन्थों में सोरठा है यहाँ कुण्डलिया के लिये दोहे का आकार रखा है ॥ देवकीनन्दन टीका, हरिप्रसादकृत अनुवाद, हरिप्रकाश और कृष्णदत्त की टीका में यह है ही नहीं ॥

† रक्त और बीज ‡ (रजोवीर्य) के सम होने से जिन का जन्म हुआ है अर्थात् नपुंसक ॥

¶ संस्कृत व्याकरण के अनुसार ये तीनों भी नपुंसक हैं ॥ § यह सब ग्रन्थों में सोरठे के आकार में मिलता है पर कुण्डलिया के लिये उलट के दोहे के आकार से रख लिया है ॥ कृष्णदत्त कविने तो इसे लिखा ही नहीं है विहारीही जी जाने कि 'सो' न कहके "स्यो" क्यों कहा ॥

+ बलने का धर्म चमकना है और बरसने का धर्म थरथराना है। बलता है इस लिये गलता नहीं और बरसता है इस लिये जलता नहीं ॥ ‖ यह अन्य ग्रन्थों में सोरठा है। यहां कुण्डलिया के लिये दोहा रक्खा है। × मलङ्ग = फकीर।

मूँद मूँद ही धोइ चहूँ काजर विथुरायो । निज आसन हित मनहुँ कपोल मसान बनायो ॥ अधिक सुखायो तनहिँ विरह की धूनी सी धारि। *सुकवि मिलन ही मोछ एक अवलम्ब रहे करि ॥ ४७६ ॥

कागद पर लिखत न बनै कहत सँदेस लजात ।
कहिहै सब तेरो हियो मेरे हिय की बात ॥ ४०२ ॥

मेरे हिय की बात सबै कहिहै तेरो हिय । मोमन मोढिग नाहिँ सोऊ जानत है तोजिय ॥ झुर सि रही हूँ अङ्ग अङ्ग मैँ विरहअगिन झर । सुकवि लिखूँ किमि बात बड़ी छोटे कागद पर ॥ ४७७ ॥

तर झरसी ऊपर गरी कज्जलजल छिरकाय ।
पिय पाती बिनहीँ लिखी बाँची विरहबलाय ॥ ४०३ ॥

बाँची विरहबलाय पीय ताकोँ बिन बाँचे । बैन भये थिर अँसुवन के जनु ऊधम माँचे ॥ सुकवि साँस के झोक परी छन हीँ करपरसी । उड़ी उड़ी ही फिरत गरी पाती तर झरसी ॥ ४७८ ॥

विरहाविकल विन हीं लिखी पाती दई पठाय ।
अङ्क विना हू यौँ सुचित सूने बाँचतु जाय ॥ ४०४ ॥

सूने बाँचतु जाय विना आखर हू पाती । जरी गरी तिहिँ देखि दीह दरकत है छाती ॥ मुख तेँ कढ़त न बैन नैन आँसू भये गहगह । चीठी देखत सुकवि और दुःसह भयो विरह ॥ ४७९ ॥

कर लै चूमि चढ़ाय सिर उर लगाय भुज भेटि ।
लहि पाती पिय की लिखी बाँचति धरति समेटि ॥ ४०५ ॥

* प्रेम मार्ग अर्थात् भक्ति मार्ग मेँ परमप्रेमास्पिही मोच है ।

बाँचति धरति समेटि फेर लै लै कै खोलति। उलटि पुलटि कै बाँचि मनहि मन धौं कछु बोलति॥होइ रोमांचित हिय लगाइ कै लगवत है गर। सुकबि डहडही तिया फिराति पाती लीनैं कर॥ ४८०॥

रँगराती राते हिये प्रीतम लिखी बनाय।
पाती * काती बिरह की छाती रही लगाय॥ ४०६॥

छाती रही लगाय हिये कौं मनहुँ पढ़ावति। पियकरआखर छापि किधौं उर तिलक लगावति॥ कुचगिरिगढ़ बिच राखति जनु कछु मुद सौं माँती। सुकवि वियोगविगारी हू भई जिय रँगराती॥ ४८१॥

नाचि अचानक ही उठे बिन पावस बन मोर।
जानति हौं नंदित करी यह दिस नन्दकिसोर॥४०७॥

यह दिस नन्दकिसोर अवसि आये हैं आली। सूखे तरु हू हरे भये उड़ि चली बकाली॥ सुकवि बयारि हु बही सुसीतल लहि वर बानक। बिनु † घनस्याम हिं मोर उठ हिं क्यौं नाँचि अचानक॥ ४८२॥

पुनः

यह दिस नन्दकिसोर बिना क्यौं प्यारी लागै। आजु लखत या ओर आप ही जिय अनुरागै॥ सब तरुवर गये फूलि करत कल्लोल हंसबक। सुकवि मेरे हू बाम अङ्ग उठ नाँचि अचानक॥ ४८३॥

कोटि जतन कोऊ करो तन की तपति न जाय।
जौं लौं भीजे चीर लौं रहै न प्यौ लपटाय॥ ४०८॥

---

* काती = कत्ती, एक प्रकार की तरवार। अथवा जैसे चरखे का काता सूत होता है वैसे ही यह बिरह की काती है। विरह चक्र से निर्मित है॥ † घनश्याम = मेघ औ श्री कृष्ण॥

रहे न प्यौ लपटाय डारि गर माला कर की। हीय हीय सों छाय छाँडि सुधि पीताम्बर की ॥ बिनु पिय प्यारे पीर परेखो जात न मन को। सुकवि गरूर करैं किन कोऊ कोरि जतन को ॥ ४८४ ॥

सोवत सपने स्यामघन हिलिमिलि हरत बियोग।
तब ही टरि कित हू गई नींदौ * नींदन जोग ॥ ४०९ ॥

नींदौ नींदन जोग कत हुँ चलि गई अभागी। बाँह पसारी ज्यौं ही मैं हरिभेंटन लागी ॥ झनकि उठ्यो यह कङ्कन जनु सब रस कौं खोवत। सुकवि हाय हरि मिले नाँहिं सपने हूँ सोवत ॥ ४८५ ॥

जब जब वे सुधि कीजिये तब तब सब सुधि जाहिँ।
आँखन १ आँख लगी रहैं २ आँखै लागति नाहिँ ॥ ४१० ॥

३ आँखे लागति नाहिँ लगी ४ आँखे कछु ऐसी। आँखै जानति ५ आँख लगे सुखसीमा जैसी ॥ भई अबै वहु ६ आँख आँख मैं ७ धूरि परी तब। सुकवि ८ आँख नहिं हती आँख आँखनि लागी जब ॥ ४८६ ॥

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मन्द समीर।
मन व्है जात अजौं वहै + वा जमुना के तीर ॥ ४११ ॥

---

* नींदन जोग = निन्दा करने योग्य ॥

१ आंख से आंख मिली रहती है। २ पलक नहीं पड़ती। ३ नींद नहीं आती।
४ नज़र लगी। ५ कटाक्ष लगी। ६ समझ। ७ अक्ल मारी गई। ८ होश न था ॥

+ "वा जमुना" इस शब्द से कितने हो यह अर्थ निकालते हैं कि 'बिहारी' ब्रजवासी न थे। ब्रजवासी होते तो 'वा जमुना' न कहते किन्तु 'या जमुना' कहते। परन्तु इस में भूल जान पड़ती है। क्योंकि यह 'वा' पददेशभेदसूचक नहीं है किन्तु कालभेदसूचक है। अर्थात् उस समय वाली यमुना के किनारे वही (जैसा ही) मन हो जाता है। जैसे मन के लिये 'यहै' न कहा 'वहै' कहा वैसे जमुना के लिये 'या' न कहा 'वा' कहा ॥

वा जमुना के तीर अजहुँ मुरली जनु बाजत । बंसीवट के ओट अजौं जनु स्याम विराजत ॥ नाथ नाथ कहि फिरत अजहुँ गोपी जनु बन बन । सुकवि हियो हरिलेत कदम तरुवर सबै सघन ॥ ४८७ ॥

पुन:

वा जमुना के तीर गयो जो नाँहि अभागो । धिग जनम्यो जग माहिँ नाहिँ रंच हु सुख पागो ॥ जनम जनम दुख पाइ सुकबि धारयो जो नरतन । लख्यो न सेवाकुञ्ज तमालन वृन्द बन सघन ॥ ४८८ ॥

पुन:

वा जमुना के तीर स्याम जनु बेनु बजावत । मधुरमालतीकुञ्जन तैं निकरे से आवत ॥ कान्ह कान्ह गोहराइ ढूँढिबे सुकबि करत मन । वृन्दावन मैं बरसि रह्यो है अज हूँ रसघन ॥ ४८९ ॥

जहाँ जहाँ ठाढ़ो लख्यो स्याम सुभगसिरमौर ।
उन हूँ बिन छन गहि रहत नैन अजौं वह ठौर ॥ ४१२ ॥

नैन अजौं वह ठौर ठमकि ही जात हठीले । आँसुन झर बरसाय गहत हरिरंग रसीले ॥ डिगत डिगाये नाहिँ रहत तजि पल तहाँ तहाँ । सुकवि सलोनो स्याम लख्यो ठाढ़ो जहाँ जहाँ ॥ ४९० ॥

सोवत जागत सुपनबस रस रिस चैन कुचैन ।
सुरति स्यामघन की सुरत बिसरे हू विसरै न ॥ ४१३ ॥

विसरे हू विसरै न कलँगिया दोऊ दिस लटकी । लकुट पीतपटफहर झुकनि पुनि मोरमुकट की ॥ अधरधरी मुरलिया सुमिरि हिय तँहिँ रँग पागत । सुकवि नैन तैं हटत न सो छबि सोवत जागत ॥ ४९१ ॥

पुन:

विसरे हू विसरै न किते जतनन करि हारी । किते टोटका जन्त्र मन्त्र

की विधि करि डारी ॥ जमुना अरु ब्रज तज्यो नाहिँ कत हूँ जिय लागत । सुकवि तऊ हरि हिय सों हटत न सोवत जागत ॥ ४६२ ॥

पुनः

बिसरे हू बिसरै न कढ़े नहिँ जीय अभागो । भूत हु सों बढ़ि नन्दपूत यह मोकों लागो ॥ देह दूबरी भई कटै निस दिन ही रोवत । सुकवि हटै नहिँ हिय सों कारो जागत सोवत ॥ ४६३ ॥

पुनः

बिसरे नहिँ मैं कितिक मन हिँ इत उत हिँ डुलावत । तउ समुहैँ वह हँसत मनहुँ कुण्डलन झुलावत ॥ जोगीजन के जिय हू ताजि जो छन छन भागत । सुकवि हाय सो गैल परयो मम सोवत जागत ॥ ४६४ ॥

पुनः

बिसरे हू बिसरै न बिसरिबे स्याम तज्यो सब । कारी सारी कालिन्दी अञ्जन न छुअत अब ॥ घन तमाल मीसी लखिबे हु न मोहिय पागत । सुकवि स्याम तऊ छाँडत नहिँ मोहि सोवत जागत ॥ ४६५ ॥

भृकुटी मटकनि पीतपट चटक लटकती चाल ।
चल चख चितवनि चोरि चित लियो विहारीलाल ॥ ४१४ ॥

लियो विहारीलाल चित्त पलटावत नाहीं । सूनो सो जिय भयो कहूँ कछु भावत नाहीं ॥ सुकवि दियो निरदई दुःख हँसि हँसि कै कपटनि । को जानत हो हरि है हिय हरि भृकुटीमटकनि ॥ ४६६ ॥

औरै भाँति * भये व ये चौसर चंदन चंद ।
पतिबिन अति पारत बिपति मारत मारुत मंद ॥ ४१५ ॥

मारत मारुत मन्द सुगंधित सुन्दर सीतल । कोकिलकुहुककलाप क्रूर कसि

---

* भये व ये = भये अब ये । ऐसेही अब के अकार का लोप बिहारी जी ने और भी कई स्थानों में किया है जैसे दो० ४१२ ' रहि अब लों ब दुखी भये ' ॥

हूलत हीतल ॥ गुलगुल गादी गँद गुलाब हु मन हिँ मरोरै । सुकबि सखी संगीत सबै विधि ह्वै गये औरै ॥ ४९७ ॥

हौँ हीँ बौरी बिरहबस कै बौरो सब गाम ।
कहा जानि ये कहत हैँ ससि हिँ सीतकरनाम ॥ ४१६ ॥

ससि हिँ सीतकर नाम कहा धौँ जानि बतावत । मोकौँ तो यह हाय ज्वालमालान जरावत ॥ सुकबि नाहिँ परतच्छ बाधि परमान कह्यौ री । बौरो है सब गाम किधौँ भई हौँ ही बौरी ॥ ४९८ ॥

ह्याँ तैँ ह्वाँ ह्वाँ तैँ यहाँ नैको धरति न धीर ।
निसिदिन * डाढ़ी सी रहै बाढ़ी गाढ़ी पीर ॥ ४१७ ॥

बाढ़ी गाढ़ी पीर किहूँ बिधि जक न परत है । उठि बैठत पुनि बैठि उठत धीरज न धरत है ॥ तरफरात पुनि परी परी लै करवट दुहुँ घाँ । सुकवि कहूँ नहिँ चैन डोलि हारी ह्वाँ ते ह्याँ ॥ ४९९ ॥

---

† इत आवति चलि जाति उत चली छसातिक हाथ ।
चढ़ी हिँडोरे से रहै लगी उसासनिसाथ ॥ ४१८ ॥

लगी उसासनि साथ जाति है फूलछरी सी । सिर घूमत कहि बैठि जात जनु डरी मरी सी ॥ ज़रद हरद सी भई हीय कर धरि घबरावति । सुकवि नई जनु तीय हिँडोरे चढ़ि इत आवति ॥ ५०० ॥

फिरि फिर बूझत कहि कहा कह्यो साँवरेगात ।
कहा करत देखे कहाँ अली चली क्यौँ बात ॥ ४१९ ॥

चली अली क्यौँ बात करी कैसी किहिँ के सँग । कब धौँ कैसैँ भई कौन धौँ

---

* डाढी = दग्ध

† यह दोहा हरि प्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ॥

कियो कहा रँग ॥ चुप ह्वै बैठी कहा मोहि कछु हेतु न सूझत । घरी द्वैक ह्वै गई सुकवि तोहि फिर फिर बूझत ॥ ५०१ ॥

⊛ जोन्ह नहीँ यह तम चहै कियौ जु जगतनिकेत ।
होत उदै ससि के भयौ मानौ † ससिहर सेत ॥ ४२० ॥

मानो ससिहर सेत होइ रसना लपकावत । विधु विषवरखा चाखि चौगुनो जोर जमावत ॥ मलयपवन कै असन सहसमुख विरहि मिलन चह । सुकवि लखो यह सर्पराज है जोन्ह नहीँ यह ॥ ५०२ ॥

⁂ तजी संक सकुचति न चित बोलति बाक कुबाक ।
छिन × छनदा छाकी रहति छुटत न छन छबिछाक ¶ ॥४२१॥

छुटत न छन छबिछाक छबीली छकी रहति है । छला छिगुनियाँ छोर छजावति छलन गहति है ॥ छमछम कै छिति चलति छटी पायल दोऊ छजी । सुकवि हिये ज्यों छाछ मथति तिय सङ्क सब तजी ॥ ५०३ ॥

कर के मीँड़े कुसुम लौँ गई बिरह कुम्हिलाय ।
सदा समीपिनि सखिनि हूँ नीठि पिछानी जाय ॥ ४२२ ॥

नीठि पिछानी जाय गई ऐसी दुबराई । अन्तरङ्गिनी सखीन हूँ की मति बौराई ॥ हनत मदन हूँ चीन्हि कोऊ विधि व्है कै नीड़े । सुकवि अंग अँग भये कुसुम ज्यों कर के मीड़े ॥ ५०४ ॥

⊛ यह दोहा अनवरचन्द्रिका और देवकीनन्दन टीका में नहीं है ॥ † ससिहर = डर के ॥
⁂ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ॥ × छनदा = रात (सं० क्षणदा) ।
¶ छाक = नशा ।

*नेक न जानी परति यौं परयौ बिरह तन छाम।
उठति दिया लौं नादि हरि लियें तिहारो नाम ॥ ४२३ ॥

लियें तिहारो नाम लहरि सी उठति छनहिँ छन। सदा मूरछा माहिँ परी ही रहति दुखिततन ॥ सुकबि थाकि गई जुगुति करति सब सखी सयानी। जीयत है धौं नाहिँ परत है नेक न जानी ॥ ५०५ ॥

पुनः

नाम कोऊ जौ लौं नहिँ ऊँचे सुरसौं भाषै। तौ लौं सजग न होत जतन केतो कोऊ राषै ॥ सुमन सेज पै सुमनमाल सी तिया समानी। कैसी है कित अहै सुकबि हू नेक न जानी ॥ ५०६ ॥

---

† करी बिरह ऐसी तऊ गैल न छाँड़तु नीच।
दीने हू चसमा चखन चाहै लखै न मीच ‡॥ ४२४॥

चाहै लखै न मीच फारि जऊ नैन निहारै। चहूँ टटोरत फिरै तऊ नाहिँ न निरधारै॥ या ही सौं दुख बढ़त सुकबि औरो घरी घरी। + जियै मरै नहिँ हाय बिरह ऐसी कछू करी ॥ ५०७ ॥

पुनः

मीच परयो धोखे कबहुँक सखियन दिस धावत। समुझि फिरत पुनि दिस दिस ढूँढ़त तबहुँ न पावत ॥ घरी घरी जिय जरी जरी तिय जनु मरी मरी। डरी डरी वह सुकबि बिरह दोऊ दृग ढरी करी ॥ ५०८ ॥

---

* यह दोहा सं० ३०१ में एकवेर आचुका है। इस पर यह दूसरी कुण्डलिया है॥ स्वयं लल्लू लाल की छपवाई लाल चन्द्रिका टीका वाली पोथी में यह ऐसेही दो वेर है इसलिये इस ग्रन्थ में भी दो वेर रखा है। लल्लू लाल ने आज़म शाही क्रम रखा है सो यह उसी की भूल है ॥ बुतते हुए दिये का अचानक एक वेर उत्तेजित हो उठना दिये का नाँदना कहलाता है॥

† यह भाव उर्दू में भी है जैसे "ढूंढ़ती फिरती क़ज़ा थी मैं न था" ॥

‡ मीच = मृत्यु। संस्कृत के 'त्य' का प्राकृत में 'च्च' हो जाता है जैसे सत्यम् = सच्चम्, नृत्यम् = णच्चम्, मृत्यु = मिच्चू ॥ इत्यादि ॥ + उर्दू "न मरते हैं न जीते हैं अजब हालत हमारी है" ॥

*नित संसौ हंसौ बचतु मानौं इहिँ अनुमान।
बिरहअगिनलपट न सकै झपट न मीच हिचान॥ ४२५॥

झपट न मीच हिचान/सकै बिरहागिन लपटन। दूर हि सौं दरकाइ रह्यो हिय छन छन डपटन॥ अति सँतापविष पिये भई मृत्युंजय लखु तित। चिरजीवी यह सुकवि जऊ कलपाति है नित नित॥ ५०९॥

पलनि प्रगटि बरुनीनि बढ़ि छन कपोल ठहराय।
अँसुआ परि छतिया छनक छनछनाय छिप जाय॥ ४२६॥

छनछनाय छिपजाय दाग काजर को छोरत। तैसे हिँ पुनि पुनि उमँगि परैं जनु जीय मरोरत॥ कारे परे कपोल नैन कौं रहति न कछु कल। तलफि रही है तीय सुकवि नहिँ परत पलक पल॥ ५१०॥

प्रगट्यौ आग वियोग की बह्यौ बिलोचन नीर।
आठौं जाम हियौ रहै उड्यौ उसाससमीर॥ ४२७॥

उड्यो उसाससमीर रहै धर धर पुनि धरकत। पीरे परे कपोल सीस छन छन मैं भरकत॥ दीह दूबरी देह चित्त चंचल जनु उचट्यो। सूखि गई तऊ सुकबि नेह अँग अङ्गनि प्रगट्यो॥ ५११॥

---

†तच्यो आँच अब बिरह की रह्यो प्रेमरस भीज।
नैननि के मग जल बहै हियौ पसीज पसीज॥ ४२८॥

हियो पसीज पसीज हाय दृगद्वार बहत है। ‡काजर नहिँ जरि गये अधिक रँग स्याम गहत है॥ सुकवि बूँद मिस टूक टूक ह्वै निकरि चल्यो सब। हाय याहि मैं पीतम है यह तच्यो आँच अब॥ ५१२॥

---

* नित संसौ हंसौ = नित्य जीने में संशय रहता है। हंस जीव। † यह दोहा शृङ्गार सप्तशती में नहीं है। ‡ यह काजल नहीं है, हृदय जल गया है इस लिये काला हो गया है।

चकी जकी सी ह्वै रही बूझे बोलति नीठि।
कहूँ दीठ लागी लगी कै काहू कौं दीठि ॥ ४२९ ॥

कै काहू कौं दीठि लगी है नवल तिया की। दीठि लगत है नाहिँ एक हूँ जाम निसा की ॥ घने निहोरे किये तकी सी रहति थकी सी। सुकबि भयो धौं कहा ह्वै गई चकी जकी सी ॥ ५१३ ॥

मरी डरी कि टरी बिथा कहा खरी चलि चाहि।
रही कराहि कराहि अति अब मुख आहि न आहि ॥४३०॥

अब मुख आहि न आहि आहि की स्वारत कोरी। साँस न जाने परत कँपत छाती अति थोरी॥ नारी धरकत नाँहिं सुकबि देखत घरी घरी। जरत देह सौं जानि परत नाहिँ न अहै मरी ॥ ५१४ ॥

गनती गनबे तैं रहै छत हू अछत समान।
अलि अब ये निसि ओस लौं परे रहौ तन प्रान ॥ ४३१ ॥

परे रहो तन प्रान पाहुने चारि दिना के। रहि न सकत राखे हु पै ये घनस्याम बिना के॥ ठानत कहा उपाय रही अब सब बनिबे तैं। सुकबि काज कछु नाहिँ साँस गनती गनिबे तैं ॥ ५१५ ॥

---

*बिरहबिपतिदिन परत ही तजे सुखनि सब अङ्ग।
रहि अब लौं †ऽब दुखौ भये चलाचली जियसङ्ग ॥४३२॥

चलाचली जियसंग भये अब दुख हू आली। सूने से हिय कछू जानि नहिँ परत कुचाली॥ नीच मीच हू मोरत मुख आवत नहिँ या छिन। सुकबि भये सब बिमुख परे यह बिरहबिपति दिन ॥ ५१६ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है। † ब = अब।

मरन भलो वर विरह तेँ यह विचार चित जोइ।
मरन छुटै दुख एक को विरह दुहूँ दुख होइ ॥ ४३३ ॥

विरह दुहूँ दुख होइ मरन है या तेँ नीको। जु पै मीच करि कृपा मनोरथ पुजवै जी को ॥ हाय हाय करि सखियन को लेनो परै सरन। सुकवि सुचितई पैहैं सब व्हैहै कवै मरन ॥ ५१७ ॥

पुनः

विरह दुहूँ दुख होइ मरन सोँ बढ़ि छन छन मैँ। देखि सखिन हूँ के कलेस व्यापत तन मन मैँ ॥ सुकवि हु वरनत याहि वहावत नैन नीर झर। सुनि रोवत सब हाय विरह तेँ मरन भलो वर ॥ ५१८ ॥

मरिवे को साहस कियो वढ़ी विरह की पीर।
दौरति है समुहँ ससी सरसिज सुरभि समीर ॥ ४३४ ॥

सरसिज सुरभि समीर सामुहँ सुन्दरि दौरति। गै वै रागवसन्त सहचरी सखिन निहोरति ॥ गुच्छ गुलावन गहाति ठानि निहँचै जरिवे को। सुकवि कुञ्ज मैँ वैठति तिय पन करि मरिवे को ॥ ५१९ ॥

सुनत पथिक मुहँ माहनिसि लुएँ चलति उहिँ ठाम।
विन बूझे विन ही सुनैँ जियति विचारी वाम ॥ ४३५ ॥

जियति विचारी वाम उन हु निज विरह विचारैँ। होइ दुखी ऐहैँ कोऊ दिन यह निहचै धारैँ ॥ औरो विथा वढ़ै योँही नित मन हिँ मन गुनत। सुन्न सान व्है रहत सुनायेँ सुकवि नहिँ सुनत ॥ ५२० ॥

पुनः

जियति विचारी वाम विरह दुख उन हूँ को गुनि। देत दई कोँ दोस दिखावन दिन अपने पुनि ॥ सुकवि विकल अति होति कान करि कोकिल कुह कुह। औरैँ ठाढ़ी पूछि वात सोई सुनति पथिक मुहँ ॥ ५२१ ॥

*मारयो मनुहारनि भरी गारयो खरी मिठाहि ।
वाकौ अति अनखाहटौ मुसकाहट बिन नाहि ॥ ४३६ ॥

मुसकाहट बिन नाहिँ हटक हू तिय की पेखी । चटकि चटकि हू उठी भौंह मटकनि पुनि देखी ॥ अनबोलो करि लियो तऊ दूनो रस धारयो । मुरि वैठे हू सुकबि मैनबानन मन मारयो ॥ ५२२ ॥

---

†लहि रति सुख लगियै हिये लखी लजौंहीं दीठि ।
खुलति न मोमन बँधि रही वहै अनखुली दीठि ॥ ४३७ ॥

वहै अनखुली दीठि कपोल हु भरे सेदकन । कछु पीरो मुख थके साँस

---

* यह दोहा अनवर चन्द्रिका में नहीं है । उसकी मार भी मनोहरता से भरी हैं, उसकी गाली भी मीठी हैं, उसका क्रोध भी विना मन्दस्मित नहीं ॥

† इस दोहे के तुकान्त में दोनोवेर 'दीठि' शब्द आया है यह ब्रजभाषा के कवियों की परिपाटी के विरुद्ध है ॥ हाँ यह कहा जा सक्ता है कि तुकान्त में चरम भाग की आवृत्ति और उसके पूर्व भाग का सादृश्य होना चाहिये (इसी को फ़ारसी वाले काफ़िया औ रदीफ़ कहते हैं) सो यहां दीठि पद की आवृत्ति है और दीर्घ ईकारान्त होने से लजौंहीं तथा अनखुली पद का सादृश्य है । यदि कोई कहै कि किसी पद का सादृश्य और किसी पद की आवृत्ति तो फ़ारसी उर्दू में होती है (जैसे "मये पुरज़ोर तहकीकं के दरमीना नमी गुञ्जम् । दुरे पुरताव ना आवम् के दर दर्या नमी गुञ्जम्" यहां 'नमी गुञ्जम्' आवृत्ति औ 'मीना' 'दर्या' सादृश्य । इत्यादि) यह चाल हिन्दी की नहीं है, तो सो भी नहीं क्योंकि प्रायः हिन्दी कवियों ने भी ऐसा ही कहा है जैसे देव "आयो सखी सावन न आये प्रान प्यारे यातें मेह न वरज आली गरज मचावें ना । दादुर हटकि बकि बकि कै न फोरैं कान पिकन फटकि मोहि सवद सुनावें ना ॥ विरह विथा तें हों तो व्याकुल भई हों देव जुगनूं चमकि चित चिनगी उड़ावें ना । चातक न गावें मोर सोर ना मचावें घन घुमड़ि न छावें जौलों स्याम घर आवें ना ॥" परन्तु वस्तुः दोहे में पदावृत्ति भाषा कवियों की अङ्गीकृत नहीं है ॥ सच पूछिये तो यह केवल लल्लू लाल की भूल है कि उननें दोनोंवेर 'दीठि' शब्द मान के ही टीका की और अपने स्वयं प्रेस में ऐसा ही छापा पर जो उनसे भी प्राचीन हरिप्रकाश, औ संस्कृत टीकादि हैं उनमे पूर्वार्द्ध के अन्त में 'नीठि' पाठ है ॥

अतिसिथिल सबै तन ॥ अधरराग विथुरयो विथुरी पुनि कुटिल केसतति। सुकवि हीय सों हटति न छवि जो देखी लहि रति ॥ ५२३ ॥

गड़ी कुटुम की भीर मैं रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलक परि जाति उत सलज हँसौंहीं दीठि ॥ ४३७ ॥

सलज हँसौंहीं दीठि रुकत रोकी तउ नाहीं। बिनु मन इत उत हेरि ललचि पुनि उत फिरि जाहीं॥ झीने पट सों रुकै न रोकी अति सै उमड़ी। सुकवि भीर हू का करिहै हिय पीय छविगड़ी ॥ ५२४ ॥

पुनः

सलज हसौंहीं डीठि भौंह दोऊ फरकौंहैं। मुलकत दोऊ कपोल होत छन छन पिय सौंहैं ॥ घोरा लौं मन दौरि रह्यो हरिढिग गति ठुमकी। सुकवि भलैं धसि रहो भीर अति गड़ी कुटुम की ॥ ५२६ ॥

---

*परसत पोंछत लखि रहति लगि कपोल के ध्यान।
कर लै पिय पाटल विमल प्यारी पठये पान ॥ ४३९ ॥

प्यारी पठये पान कपोल हि की द्युति दरसत। सो लखि लखि कै पुलकि पसीजत प्यारो हरसत ॥ हियरे कण्ठ लगाइ चूमि अतिसै हिय सरसत। सुकवि पेखि पुनि पुनि उहि पोंछत पुनि पुनि परसत ॥ ५२६ ॥

सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुरे सुथरे बार ॥ ४४० ॥

बिथुरे सुथरे बार जाल से अहैं पसारे। देखत ही छन माहिं डसत जैसे अहि कारे। चितवन चित हरि लेत उपाय सुकवि कछु बनत न। बाँचे रहियो सबै बुरे कच सहज सचिक्कन ॥ ५२७ ॥

---

* लल्लूलाल अपनी लालचन्द्रिका में इसी दोहे के अन्त में संयोगवियोगशृङ्गारवर्णननामक द्वितीयप्रकरण की समाप्ति मानते हैं।

छुटे छुटावैँ जगत तैँ सटकारे सुकुमार ।
मन बाँधत बेनी बँधे नील छबीले बार ॥ ४४१ ॥

नील छबीले बार अरुझि हियरो अरुझावैँ । घूँघुरवारे घूमि झुकैँ जिय अधिक घुमावैँ ॥ लटकावत जनु लटकि छला परि चित्त छलावैँ ॥ बँधे बँधावै सुकबि केस तुअ छुटे छुटावैँ ॥ ५२८ ॥

---

*कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगो इतो उदोत ।
बंक बिकारी देत ज्यौँ दाम रुपैया होत ॥ ४४२ ॥

दाम रुपैया होत एक ही देत बिकारी । द्वै सौँ होत असरफी जानत दुनिया सारी ॥ तेहरी चौहरी भई भिँगी लट अलग अलग जुटि । छबि करोर गुन करी सुकबि लखु कुटिल अलक छुटि ॥ ५२९ ॥

कच समेटि कर भुज उलटि †खए सीस पट टारि ।
काको मन बाँधै न यह जूरो बाँधनहारि ॥ ४४३ ॥

जूरो बाँधनहारि जकरि बाँधति जन जियरो । हहरि हहरि ही उठत हहा हमरो हू हियरो ॥ पट सौँ झटकि उड़ाइ मुरत मोरति तिय बिनु डर । मन समेटि लै चली सुकबि यह कच समेटि कर ॥ ५३० ॥

नीको लसत लिलाट पर टीको जटित जराय ।
छबि हिँ बढ़ावत रबि मनो ससिमंडल मैँ आय ॥ ४४४ ॥

ससिमंडल मैँ आय सीतसुख रबि हू पावत । रतन ब्याज ग्रह मंडल लै सुकबि हिँ तरसावत ॥ यासु मधुरता लखत जगत सब व्है गयो फीको । हरपावन जी को ती को टीको अति नीको ॥ ५३१ ॥

---

* यह दोहा शृङ्गारशतसती मे नही है । † खए = खवे = कन्धे ।

कहत सबै बैंदी दिये आँक दसगुनौं होत।
तियलिलार बैंदी दिये अगनित बढ़त उदोत ॥ ४४५ ॥

अगनित बढ़त उदोत लखहु इक बैंदी दीने। कह्यो सुन्न को ऐसो गुन को गनित नवीने॥ लाख कोटि गुनि छवि को पुंज करत है लहलह। सुकवि जोत सी नीरस है जो दसगुन ही कह ॥ ५३२ ॥

---

* भाल लाल बैंदी † ललन आखत रहे विराजि।
इन्दुकला कुज मैं बसी मनो राहुभय भाजि ॥ ४४६ ॥

मनौं राहुभय भाजि भौम को सरनो लीनो। तियमुख ग्रहन न होत वहाँ यह निहचै कीनो ॥ वासो सोऊ ह्याँ आइ डर्‌यो तजि सुरपुरलोभा। सुकवि भौंहधनु दृगसर ढिग मेले करि छोभा ॥ ५३३ ॥

सबै सुहाये ही लगैं बसे सुहाये ठाम।
गोरे मुहँ बैंदी लसै अरुन पीत सित स्याम ॥ ४४७ ॥

अरुन पीत सित स्याम गुलाबी हरी बैंगनी। केसरिया चम्पई सुरमई करत छवि घनी॥ सुकवि तिकोने गोल खड़े आड़े हु कढ़ाये। तिलक रसीले बदन लगत हैं सबै सुहाये ॥ ५३४ ॥

---

‡ तियमुख लखि हीराजरी बैंदी बढ़ो विनोद।
सुतसनेह मानौं लिये विधु पूरन बुध गोद ॥ ४४८ ॥

गोद लिये बुध सबै सोक कालिमा मिटाई। नैन खिलौना खञ्जन ले जनु

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है। † हे ललन।

‡ यह अनवरचन्द्रिका में नहीं है। यद्यपि बुध का हरित वर्ण है तथापि गोरे का बेटा गोरा मान गोरे में उपमा है। जैसे कविप्रिया में " मानो गोद चन्द ही की खेलै सुत चन्द को " (यह बुलाक के

रह्यो खिलाई॥ लिये अधर विद्रुम सुतुही मैं हासदूध सखि। जगर मगर व्है रह्यो सुकवि प्यारो तियमुख लखि॥ ५३५॥

भाल लाल बैंदी दिये छुटे बार छबि देत।
गह्यो राहु अति आह करि मनु ससि सूर समेत॥ ४४९॥

मनु ससि सूर समेत आजु राहू धरि पायो। जनु मुकताहल व्याज चहत उडुनिकर छुड़ायो॥ सारी सित चाँदनि हुँ सुकबि मानहुँ इहि काला। घेरि राहु कौं रही सखी लखु ती के भाला॥ ५३६॥

---

*मिलि चंदनबैंदी रही गोरे मुख न लखाय।
ज्यौं ज्यौं मदलाली चढ़ै त्यौं त्यौं उघरति जाय॥ ४५०॥

त्यौं त्यौं उघरति जाय बदन ज्यौं होत गुलाबी। बैंदी के मोतिन की दुति अब दबत न दाबी॥ बेसरमानिक लखि न परत यौं रंग रह्यो रिलि। सुकबि गुलाला बीच वधूटी सरिस गयो मिलि॥ ५३७॥

---

†ससिमुख केसर आड़गुरु मंगल बिंदुरीरंग।
रसमय किय लोचन जगत इक नारी लहि संग॥४५१॥

इक नारी लहि सङ्ग जगत रसमय करि दीनो। देखे अनदेखे हु कपोल

मोती पर कहा है)। अथवा पौराणिक मत से बुध का जो रङ्ग हो परन्तु यदि पूर्णिमा को पूर्ण चन्द्र की गोदी में आवें तो जैसे सूर्य के प्रकाश से सब ग्रह चमकते हैं वैसे बुध भी चमकैहोगा।

* चन्दन की वेंदी = चन्दनविन्दु॥

† यह सोरठा है परन्तु कुण्डलिया के लिये दोहे के क्रम से रख लिया है चन्द्र गुरु मङ्गल का एक राशि पर होना जलयोग है। नारी = राशि अथवा काल का प्रमाण विशेष, एक पक्ष में नारी = स्त्री॥ रस = जल अथवा शृङ्गाररस॥ देखने से आनन्दाश्रु न देखने से शोकाश्रु॥

दृग लखियत भीनो ॥ सारी कारी घटा छटा छहराइ रही लसि । सुकवि कबहुँ यह छिपत कबहुँ प्रगटत है मुखससि ॥ ५३८ ॥

पचरँग रँग बेंदी बनी खरी उठी मुख जोति ।
पहरे चीर *चुनौटिया चटक चौगुनी होति ॥ ४५२ ॥

चटक चौगुनी होति चीर चुनवट को धारे । झीनीअँगियादमक दसगुनी देत सँवारे ॥ सुकवि सौगुनी सोभा साधी अधर मिसी सँग। सहसगुनी दुति करत पुहुप को हार हु पचरँग ॥ ५३६ ॥

---

†खौरिपनिच भृकुटी धनुष बधिक समर तजि कान ।
हनत तरुणमृग तिलकसर सुरक भाल भरि तान ॥ ४५३ ॥

सुरक भाल भरि तान हनत विनु बान चलाये । काढ़ि करेजो लेत दूर ही सों दिखराये ॥ कबरीबन में छिप्यो जीय लूटत बरजोरी। सुकवि लगी हिय चोट कहाँ ते मुख निरखौ री ॥ ५४० ॥

नासा मोरि नचाय दृग करी कका की सौंह ।
काँटे लौं कसकत हिये गड़ी कटीली भौंह ॥ ४५४ ॥

गड़ी कटीली भौंह मनहुँ तरवार काम की। नागिनछौनाजुगलसरिस विष भरी बाम की ॥ सुकवि अजब तुअ बात करत जादू बरजोरी । मदनमन्त्र सो जपत मुलकि मुरि नासा मोरी ॥ ५४१ ॥

पुनः

भौंह कटीली गरबीली ने कछु सतराई । ठोढ़ी पै कर देइ झुलनिया झमकि झुमाई ॥ ग्रीवा कछु लचाइ करत सी कछु कछु हासा । तिरछैं ताकि चलि गई सुकवि के सुधि बुधि नासा ॥ ५४२ ॥

---

* चुनरीवाला। † यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है।

रससिँगार मञ्जन किये कञ्जनभञ्जन दैन।
अञ्जनरञ्जन हू बिना खञ्जनगञ्जन नैन ॥ ४५५ ॥

खञ्जनगञ्जन नैन निरखि छकि गयो निरञ्जन। बरनन करिबे परे सुकबि केते ससपञ्जन। बिधि जनु इनमैँ दियो अहै निज गुन को सरबस। अहैँ हठीले चटकीले सब बिधि पूरे रस ॥ ५४३ ॥

---

*अरतैँ टरत न बर परे दई मरक जनु मैन ॥
होड़ाहोड़ी बढ़ि चले चित चतुराई नैन ॥ ४५६ ॥

चितचतुराई नैन सैन की पुनि चतुराई। दोउन जनु नित नित बढ़िबे की होड़ लगाई ॥ कोटि कोटि ही कला रचत अरुझी नटवर तैँ। सुकबि न पाछे हटत अरि रही दोऊ अर तैँ ॥ ५४४ ॥

जोगजुक्ति सीखहिँ सबै मनौ महामुनि मैन।
चाहत पिय अद्वैतता कानन सेवत नैन ॥ ४५७ ॥

कानन सेवत नैन पलक की सेली धारे। काजर सौँ जनु कृष्णसारमृगचर्म पसारे ॥ भृकुटिकुटी के तरैँ बैठि कर लई मुक्ति सी। सुकबि रसीले नैन करत हैँ ज़ोग जुक्ति सी ॥ ५४५ ॥

---

†खेलन सिखए अलि भले चतुर ‡अहेरी +मार।
काननचारी नैनमृग नागर नरन शिकार ॥ ४५८ ॥

नागर नरन सिकार करत कहुँ पकरि परै ना। चञ्चलता सौँ भरे तऊ डटि

---

* इसका अर्थ लल्लूलाल यों लिखते हैं। सखी का बचन नायक से के सखी सखी से कहै नायकानवयोवना। जिद से टलते नही न बढ़ निकले दिया है सनकार के मानो कामदेव ने। होड़ा होड़ी कर बढ़ चले हैं चित चतुराई औ नैन॥ † यह दोहा हरप्रसाद के ग्रन्थ मे नही है। ‡सिकारी। + काम॥

रहत टरैं ना ॥ झुकि झुकि उझकत सङ्ग लिये जनु जिय अलबेलन । ⊛स-मर सुकवि सौं करत समर के सिखये खेलन ॥ ५४५ ॥

पुनः

नागर नरन सिकार करत ये काननचारी । विनु गुन भौंहकमान वान मारत वटपारी ॥ काजरधारकटार लिये दृग वोरी विष ये। सुकवि हु के हिय कसकत नीके खेलन सिखये ॥ ५४६ ॥

सायकसम घायक नयन रँगे त्रिविध रँग गात ।
झखौ विलखि दुरि जात जल लखि जलजात लजात ॥४५९॥

लखि जलजात लजात बूड़ि जनु गये नीर मैं । कानन भागे हिरन उड़े खञ्जन समीर मैं ॥ वरसत रस की धार सुकवि पिय के सुखदायक । हलके परि गये देखि इन्हैं मनमथ के सायक ॥ ५४७ ॥

---

‡ वर जीते सर मैन के ऐसे देखे मैं न ।
हरिनी के नैनान तें हरि नीके ये नैन ॥ ४६० ॥

हरि नीके ये नैन मैनसर का इहिं आगे । हलके ह्वै ह्वै परे अहैं धौं कहाँ अभागे ॥ कञ्ज सकुचि गड़ि गये मीन तलफत करि फरफर । खञ्जन हूँ उड़ि गये सुकवि लखि इनकी छवि वर ॥ ५४८ ॥

---

‡ झूठे जानि न संग्रहे मनु मुँहनिकसे वैन ।
याही तें मानौ किये वातनि कौं विधि नैन ॥ ४६१ ॥

वातन कौं विधि नैन करी है अजव वनावट। विना सोर ही करत विविध

इसमें मानचन्द्र कुल्टा नायिका कहते हैं। कदाचित् 'नरनि' इस बहुवचन से उनने बहुत पुरुषों की चाहने वाली नायिका समझी हो परन्तु यहां बहुत पुरुषों को चाहना नहीं प्रगट होता यह दूसरी बात है कि उसकी आंखें बहुत पुरुषों के हृदय मे कसकती हों यदि खेलन सिखये इस पद में कुलटा बनाई हो भी कष्ट कल्पना है। ⊛ प्रथम समर का अर्थ युद्ध और दूसरे समर का अर्थ कामदेव है। ‡ वर, सर का विशेषण है। ‡ यह दोहा देवकीनंदन टीका मे नहीं है।

विधि की समुझावट ॥ सबै इसारे रचत खुसी अनखे अरु रूठे। सुकवि सधे हैं सही होत कब हूँ नहिं झूठे ॥ ५४६ ॥

दृगनि लगत बेधत हियौ बिकल करत अँग आन ।
ये तेरे सब तैं विषम ईछन तीछन बान ॥ ४६२ ॥

ईछन तीछन बान बिना गुन भ्रू धनु छूटत । रुकैं न रोके किहूँ लगत ही सुधि बुधि लूटत ॥ अति जहरीले जुलुम करत चञ्चल ज्यौं वनमृग । सुकवि रोम सगवगत मिलत ही छन हूँ दृग दृग ॥ ५५० ॥

फिरि फिरि दौरत देखियत निचले नेक रहैं न ।
ये कजरारे कौन पर करत कजाकी नैन ॥ ४६३ ॥

करत कजाकी नैन कौन पै करि करि छल बल। कोर कटाछन हनत रहे अति सै चञ्चल ॥ देइ सुधा की लालच जनु बिष सौं हिय बोरत । सुकवि किहूँ थिर होइ छनक मैं फिरि फिरि दौरत ॥ ५५१ ॥

सारी डारी नील की ओट अचूक चुकैन ।
मो मनमृग *करबर गहै अहे अहेरीनैन ॥४६४॥

नैनकञ्ज जनु नील नील पुनि सारी डारी। काजर को रँग दियो सकै पुनि कौन निहारी ॥ सङ्गी करयो अनङ्ग अलख पुनि बानकतारी। इनके करतब सुनत सुकबि सुधि सबै बिसारी ॥ ५५२ ॥

---

†नीची यै नीची निपट दीठि कुही लौं दौरि ।
उठि ऊँचे नीचे दियौ मनकुलंग झकझोरि ॥ ४६५ ॥

---

* करवर = हाथों हाथ (लल्लूलाल) ॥ 'सारी टाटी नील की' अच्छा पाठ होता ॥ अहेरो भी नील, टाटी भी नील साथी अनङ्ग, वाण अलच्य सभी अपूर्व हैं इससे सुधि बुधि बिसरी । यह कुण्डलिया का तात्पर्य है । † यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है । कुही = बाज । कुलङ्ग = गौरैया (सं०)कलविङ्क ।

मन कुलङ्ग झकझोरि मूरछित सो करि डास्यो। हिलि मिलि सकत न कछू हाय बेढव इहिँ मास्यो॥ कैसे टोना भरी कौन से विष सोँ सींची। डीठि परी मम गैल सुकवि व्है ऊँची नीची ५५३॥

फूलै फरकत लै फरी पल कटाच्छकरवार।
करत बचावत बिय*नयन†पायक घाय हजार॥ ४६६॥

घाय हजारन करत हाय बचिये धौँ कैसे। कोरि पैंतरा रचत परे हठि बधिकन जैसे॥ अतिसय फुरती भरे करत धीरज निरमूलै। सुकवि रसिक हिय हनत आपु आनँद सोँ फूलै॥ ५५४॥

---

‡तिय कत कमनैती पढ़ी बिन जिह भौंहकमान।
चित चल बेझे चुकत नहिँ बंकबिलोकनबान॥ ४६७॥

बंक बिलोकन बान ऐंचि धौँ कब बरसावति। करत अधमरे जीय पियासन पुनि तरसावति॥ मारि जियावति पुनि मारति बस करनि पीयजिय। सुकवि कौन से गुरू निकट यह रीति पढ़ी तिय॥ ५५५॥

चमचमात चंचल नयन बिच घूँघट पट झीन।
मानहुँ सुरसरिता बिमल जल उछरत जुग मीन॥ ४६८॥

जल उछरत जुग मीन मनहुँ नहिँ ऊपर आवत। पलक परे जनु डूबि डूबि निज देह छिपावत॥ सुकवि कबहुँ थिर रहत कबहुँ चञ्चलता नहिँ कम। फरफरात यह ओट लखें चमकीले चमचम॥ ५५६॥

---

* बिय यह द्वि का अपभ्रंश है। † पायक = सिपाही।

‡ यह दोहा चन्द्रचन्द्रिका में नहीं है। बेझे = बेधे। जिय = ज्या-प्रत्यञ्चा।

वारौं बलि तो दृगन पर अलि खंजन मृग मीन।
आधी डीठि चितौन जिहिँ किये लाल आधीन ॥ ४६९ ॥

किये लाल आधीन छनक मैं देखत देखत। जिनको दोउ दृग भृकुटि मध्य कै जोगी पेखत॥ नैनन पै राखत जिहिँ कौं कमला जुग चारौं। सुकबि तिनहिँ बस करत जगत तुव दृग पै वारौं ॥ ५५७ ॥

पुन:

किये लाल आधीन सहस दृग जिनहिँ न पावै। तीन नैन कौं मूँदि सदा सिव ध्यान लगावै॥ आठ नयन सौं बिधि ढूँढत जै कहि मुख चारौं। कोरि सुकबि की कविता लै तो दृग पै वारौं ॥ ५५८ ॥

---

*जे तब होत दिखादिखी भई अमी इकआँक।
दगै तिरीछी दीठि अब ह्वै बीछी को डाँक ॥ ४७० ॥

ह्वै बीछी को डाँक लगत जऊ नैनन माहीँ। तऊ ज्वाल तन बढ़त अङ्ग अँग सब अकुलाहीँ॥ मन्त्र जन्त्र नहिँ चलत गुनी हारे जे हैं सब। सुकबि नैन भये गरल सुधा सौं साने जे तब ॥ ५५९ ॥

बेधक अनियारे नयन बेधत करन निषेध।
बरबस बेधत मो हियो तो नासा को बेध ॥ ४७१ ॥

तो नासा को बेध आपु बेध्यो है जैसैं। औरन हूँ को बेधि रह्यो है निरदै तैसैं॥ आपु गयो सो औरन खोजत कौन निषेधक। सुकबि याहि सौं मनहुँ वेध हू ह्वै गयो वेधक ॥ ५६० ॥

---

*जो उस समय देखा देखी होते ही 'इक आँक एक अंकी हुई, जाँची हुई अमृत सी (दृष्टि) थी। वही अब तिरछी डीठि विच्छू का डङ्क हो के 'दगै' जलाती है॥ (सं॰) वृश्चिक प्रा॰ विंछुओ,, व्रजभा॰ वींछी॥ (दो॰ ४७३)

जटित नीलमनि जगमगति सींक सुहाई नाँक ।
मनो अली चम्पककली वसि रस लेत निसाँक ॥ ४७२ ॥

वसि रस लेत निसाँक बैर चम्पा सों भूल्यो। मन्द सुगन्धित साँस झकोरन मद सों फूल्यो ॥ अति अद्भुत रस पाइ भयो थिर मौन साधि धनि। फसे सुकविदृग लखत सींक मैं जटित नीलमनि ॥ ५६१ ॥

जदपि लौंग ललितौ तऊ तू न पहिरि इक आँक *।
सदा संक बढियै रहै रहै चढी सी नाँक ॥ ४७३ ॥

रहै चढ़ी सी नाँक होत डर मान करै को। भौंह वंक हैं आप भयैं सक धीर धरै को ॥ रतनारे ये नैन और दुविधा डारत अलि। सुकवि जाँउ वलि पहिरि न नीकी जदपि लौंग ललि ॥ ५६२ ॥

---

†इहिं द्वै ही मोती सुगथ तू नथ गरब निसाँक ।
जिहिं पहिरे जगदृग ग्रसति हँसति लसति सी नाँक ॥४७४॥

हँसाति लसति सी नाँक पहिरि कै द्वै ही मोती। कोटिन मोती वसति लखे विन दृग नहिं सोती ॥ सुकवि लखत पुनि रोम रोम मोती उमगे ही। तऊ सबै वस किये नाँक मोती इहिं द्वै ही ॥ ५६३ ॥

वेसरि मोती धनि तुही को बूझै कुलजाति ।
पीवो कर तियओठ को रस निधरक दिन राति ॥ ४७५ ॥

रस निधरक दिन राति पीउ सीपी के जाये । पानी पानी वहे विके अरु संकु विधाये ॥ सुकवि रह्यो तू सङ्ग सदा कौड़ी अरु घोंघनि । तऊ बड़े तुअ पुन्य तोहि बेसर मोती धनि ॥ ५६४ ॥

---

* एक पाठ निधय करके (दो० ४७३) † यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ।

बरन बास सुकुमारता सब बिधि रही समाय ।
पखुरी लगी गुलाब की गात न जानी जाय ॥ ४७६ ॥

गात न जानी जाय किते ढिग आइ देखिये । चौगुन लेइ प्रकास धारि चसमा हु पेखिये ॥ बिनु सूखे नहिँ होत तासु को कछू अनुसरन । रङ्ग रङ्ग मिलि गये सुकबि दोऊ हैँ सुबरन ॥ ५६५ ॥

पुनः

गात न जानी जाइ नाहिँ जब लौँ कुम्हिलानी। भौँरन हूँ की झपट पाइ जब लौँ न खसानी ॥ तब लौँ को लखि सकै ग्वारि के अँग अति सुन्दर । धन्य धन्य यह सुकवि जासु पै रीझत नटवर ॥ ५६६ ॥

लोने मुख दीठि न लगे यौँ कहि दीनी ईठि ।
दूनी ह्वै लागनि लगी दियेँ दिठौना दीठि ॥ ४७७ ॥

दियेँ दिठौना दीठि लगी दूनी ह्वै लागन । लखि लखि लागे सबै सराहन निज निज भागन ॥ रुकत न घूँघट दिये और बैठे गृहकोने। बरसि रही हैँ डीठि सुकबि प्यारी मुख लोने ॥ ५६७ ॥

पिय तिय सौँ हँसि कै कह्यो लखैँ दिठोना दीन ।
चन्दमुखी मुखचन्द तैँ भलो चन्द सम कीन ॥ ४७८ ॥

भलो चन्दसम कीन सुढङ्ग कलङ्क लगायो । *बिना कलङ्क कलङ्क हुतो सो कलङ्क मिटायो ॥ अब एकै डर अहै राहु जनि कोपै जिय सौँ। या सौँ आधेक ढाँपि सुकबि भाष्यो पिय तिय सौँ ॥ ५६८ ॥

लसत सेतसारी ढक्यो तरल तर्य्योना कान ।
पर्य्यो मनो सुरसरिसलिल मनो रबिबिम्ब बिहान ॥ ४७९ ॥

* कलङ्क का न होनाही कलङ्क था अर्थात् चन्द्र की समता में कसर थी ।

बिम्ब बिहान हिँ पर्‍यो गगन सुरसरि की धारा । मारुतसुत के भ्रासत्रास पावत नहिँ पारा ॥ सुकवि सरम सोँ सीतल है जनु गयो तेज जस । अधर बिम्बसरवरि* के पाप पखारत सो लस ॥ ५६६ ॥

लसै मुरासा† तियस्रवन योँ मुकुतनि दुति पाइ ।
मानो परस कपोल के रहे सेदकन छाइ ॥ ४८० ॥

रहे सेदकन छाइ किधौँ तारन गन आयो । किधौँ सत्वगुन उमगि बाँधि मण्डल छबि छायो ॥ रसिकन के मन बँधे किधौँ आसा के पासा । झूलि रहे हैँ किधौँ सुकवि धौँ लसै मुरासा ॥ ५७० ॥

सालति है नटसाल सी क्योँ हूँ निकसति नाहिँ ।
मनमथनेजानोँक सी खुभी खुभी मन माहिँ ॥ ४८१ ॥

खुभी खुभी मन माहिँ खूब खूबी तरसावति । ऊबी डूबी सुमति अजूबी है घबरावति ॥ धीरजज्ञानविवेक आदि छन हीँ गहि घालति । सुकवि न कछू उपाय सामनो परतै सालति ॥ ५७१ ॥

पुनः

खुभी खुभी मन माँहि करेजे घाव बढ़ायो । दरद हीय मैँ कियो नैन सोँ नीर बहायो ॥ घबरायो सब अङ्ग बैद की कछू न चालति । सुकवि दूर करि ज़ुलुमभरी जादू कै सालति ॥ ५७२ ॥

झीने पट मैँ झुलमुली झलकति ओप अपार ।
सुरतरु की मनु सिन्धु मैँ लसति सपल्लव डार ॥ ४८२ ॥

लसति सपल्लव डार लहर सोँ अति लहराई । ऊपर पूरनचन्द्रबिम्ब झीने

---

*बराबरी । †मुरासा = तरकी (कर्णफूल) ।

छवि छाई ॥ कहूँ सेवार रु कहूँ मीन जुग फसे नवीने । सुकबि लखो झुलमुली झलक झलकत पट झीने ॥ ५७३ ॥

नैंक हँसौंहीँ बानि तजि लख्यो परत मुख नीठि ।
चौका चमकनि चौंध मैं परति चौंध सी दीठि ॥ ४८३ ॥

परत चौंध सी दीठि चमक है ऐसी चमचम। झपकत झुकि झुकि जात झमकि कै दोउ दृग दम दम । चले दूर सौं आवत हैँ लखिबे ललचौंहीँ । सुकबि बीनती मानि बानि तजि नेक हँसौंहीँ ॥ ५७४ ॥

कुचगिरि चढ़ि अतिथकित व्है चली दीठि मुखचाड ।
फिरन टरी परिये रही डरी चिबुक के गाड ॥ ४८४ ॥

डरी चिबुक के गाड़ फेरि नहिँ बाहर आई। निकरत निकरत फिसलि फिसलि पुनि तहाँ समाई ॥ सुकबि उपाय न और रह्यो जासौं सकि है फिरि। साँस झपट्टा लगैं आइ गिरि है पुनि कुचगिरि ॥ ५७५ ॥

डारे ठोढ़ी गाड़ गहि नैन बटोही मारि ।
चिलक चौंध मैं रूप ठग हाँसी फाँसी डारि ॥ ४८५ ॥

हाँसी फाँसी डारि छनक ही मैं गहि मारे। कनकफूल* जनु कनकफूल दै होस बिगारे ॥ सुधि बुधि लूटी अलक कूर कोरा फटकारे। सुकबि किते अधमरे परे इन गाड़नि डारे ॥ ५७६ ॥

तो लखि मो मन जो लही सो गति कही न जाति ।
ठोड़ी गाड़ गड्यो तऊ उड्यो रहै दिन राति ॥४६८॥

उड्यो रहै दिन राति गड्यो हू ठोड़ी गाड़नि। बूड्यो अँसुअन नीर हु भुरसै

---

* कनकफूल = धतूरे का फूल औ सोने का फूल ।

दुख के भाड़नि ॥ अधरअमृताहित ललचि गरल सो घूँटि रह्यो घन। सुकबि सयानी वारो ह्वै गयो तो लखि मो मन ॥ ५७७ ॥

ललित *स्यामलीला ललन चढ़ी चिबुक छबि दून ।
मधुछाक्यो मधुकर परयो मनो गुलाब प्रसून ॥ ४८७ ॥

मनो गुलावप्रसून ठठाकि भौंरा सरसायो । किधौं वालविधुविम्ब सुक को बेध सुहायो ॥ मानिकथारीधरयो फूल अतसी को सो बलि । सुकबि गोदना लसत नेक चालि देखो तो बलि ॥ ५७८ ॥

सूरउदित हू मुदितमन मुखसुखमा की ओर ।
चितै रहत चहुँ ओर तैं निहचलचखनि चकोर ॥ ४८८ ॥

निहचलचखनि चकोर चाहि चौंचन चपलावत । चित दीने रुचि रुचिर अचञ्चल मोद बढ़ावत ॥ ऐसो आनँद लहत लह्यो जो अज हुँ न कित हू। सुकवि रैन ही समुझत है इत सूर उदित हू ॥ ५७९ ॥

---

†पत्रा ही तिथि पाइयत वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यो ई रहै आननओपउजास ॥ ४८९ ॥

आननओपउजास रहत नित ही ह्वाँ पूनौं । झुके चकोरन वृन्द मोद पावत दिन दूनौं ॥ कुमुद हु करत बिकास पाइ चाँदनी उमाही । सुकवि सबै भ्रम परे सु तिथि लखिये पत्रा ही ॥ ५८० ॥

छप्यो छबीलो मुख लसै नीले अंचल चीर ।
मनौ कलानिधि झलमलै कालिन्दी के नीर ॥ ४९० ॥

कालिन्दी के नीर परयो जनु अङ्क धोइवे । तियमुखसमता लहन मलिनता

* गोदना । †यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है ।

मूर खोइबे ॥ कैधौँ लज्जित होइ देत है प्रान हठीलो। सुकवि किधौँ अञ्चल ओटनि मुख छप्यो छबीलो ॥ ५८१ ॥

जरीकोर गोरे बदन बढ़ी खरी छबि देख ।
लसति मनो बिजुरी किये सारदससिपरिवेख ॥ ४९१ ॥

सारदससिपरिवेष किये बिजुरी जुरि राजै। अतिसै थिर ह्वै रही कूरता तजि जनु भ्राजै ॥ मोती तारे जुरे सुकबि सोभा करी खरी। लता ओट सौं लखहु तिया सोहति भरी जरी ॥ ५८२ ॥

खरी लसति गोरे गरे धसति पान की पीक ।
मनौं गुलूबँद लाल की लाल लाल दुति लीक ॥ ४९२ ॥

लाल लाल दुति लीक लसै गुलबन्द लाल की। धौं रोरी को तिलक लसै यह ग्रीव बाल की ॥ गरे परयो अनुराग किधौँ तिहिँ की छटा भरी। सुकवि सुकोमल अङ्ग लुनाई लसति अतिखरी ॥ ५८३ ॥

पहरत ही गोरे गरे यौँ दौरी दुति लाल ।
मनौं परसि पुलकित भई मौलसिरी की माल ॥ ४९३ ॥

मौलसिरी की माल परसि तुमकौं जनु परसी । कञ्चनअङ्ग रोमंचन सोही सेदन सरसी ॥ कछुक कँपी कछु झँपी छटकि छाई छबि छहरत । सुकबि नवेली तिया और ही ह्वै गई पहरत ॥ ५८४ ॥

बड़े कहावत आप हू गरुवे गोपीनाथ ।
तौ बदिहौँ जौ राखिहौ हाथन लखि मन हाथ ॥ ४९४ ॥

हाथन लखि मन हाथ राखिहौ जो मनभावन। चूर न ह्वै हो चूरी लखि

चितचोर सुहावन ॥ रागी ह्वैहो नाहिँ राग मैंहदी जिय आवत। सुकवि जानि हौं मैं हूँ साँचे बड़ कहावत ॥ ५८५ ॥

बेई कर ब्यौरनि वहै ब्यौरो कौन बिचार।
जिन हीं उरझौ मो हियो तिन ही सुरझेवार ॥ ५९५ ॥

तिन हीं सुरझेवार जिन हिं उरझ्यो मो हियरो। तिन हीं छूटे होस जिन हिं बाँध्यो मो जियरो ॥ तिन हीं जोरयो नेह जिन हिं तोरयो धीरज वर। सुकवि समुझि नहिँ परत करत द्वै बिधि बेई कर ॥ ५८६ ॥

गोरी छिगुनी नख अरुन छला स्याम छवि देइ।
लहत मुकति रति छनिक यह नैन त्रिबेनी सेइ ॥ ४९६ ॥

सेइ त्रिबेनी कहत कोऊ दृग मुकती पावैं। हमरे मत तो नैन मुकति चहुँघाँ बगरावैं ॥ आपुन तन्मय होइ प्रीति इक लहत अथोरी। मुक्ति हु सों बढ़ि भक्ति सुकवि जानत नहिँ गोरी ॥ ५८७ ॥

चलन न पावत निगममग जग उपजौ अति त्रास।
कुच उतङ्ग गिरिवर गह्यो मीना मैन *मवास ॥४९७॥

मीना मैन मवास कियो रोमावलि घाटी। नाभिकन्दरा रोकि सबन बीरता उपाटी ॥ दृगसर भ्रूधनु तानि ताहि सों सबन डरावत। †कनकफूल सों हनत सुकवि कोउ चलन न पावत ॥ ५८८ ॥

---

* राजपुताने में 'मीना' एक जाति है। वे लोग बड़े बहादुर बड़े लुटेरू और बड़े विश्वास पात्र होते हैं। प्रसिद्ध है कि महाराज जैपुर का प्राचीन जवाहिरात का खजाना इसी जाति के प्रबन्ध में रक्षित है। मवास = स्थान।

† 'कनकफूल सों हनत' कनकफूल कर्णभूषण, एक पक्ष में कनकफूल धतूरे का फूल। (अर्थात् विष देके मारता है)

*गाढ़े गाढ़े कुचनि ढिलि पियहिय को ठहराइ ।
उकसौंहँ ही तो हिये सबै दई उकसाइ ॥ ४९८ ॥

सबै दई उकसाइ प्रीति प्यारे जिय उकसी । साँसति उकसी सौति साँसताति आवत रुक सी ॥ उकसे चहूँ चवाव रूप उकस्यो रँग बाढ़े । उकसी कविता सुकबिन की पूरी रस गाढ़े ॥ ५८६ ॥

दुरति न कुच बिच कंचुकी चुपरी सारी सेत ।
कबिआँकनि के अर्थ लौं प्रगट दिखाई देत ॥ ४९९ ॥

प्रगट दिखाई देत नाहिँ यह छिपत छिपाई । झीनो आँचर परे दमकि दूनी छबि छाई ॥ रतनन की पुनि चमक हहा काके उर फुरति न । सुकबि दई तू दुरवत कहा दुराई दुरति न ॥ ५६० ॥

भई जु तनछबि सबनमिलि बरनि सकै सु न बैन ॥
आँगओप आँगी दुरी आँगीओप दुरै न ॥ ५०० ॥

आँगीओप दुरै न अंगदुति मिलि भई दूनी । लखतै हिय हरि लेत करत जनु सुधि बुधि सूनी ॥ टारे टरै न नैन रही ऐसी सोभा फबि । सुकबि बरनि नहिँ सकत बसन मिलि भई जु तनछबि ॥ ५६१ ॥

---

*सोनजुही सी जगमगै अँग अँग आननजोति ।
सुरँग कुसुंभी कंचुकी दुरँग देहदुति होति ॥ ५०१ ॥

दुरँग देहदुति होति कुसुंभी सोनजुही मिलि । नौरँगभरि भामिनी दिखावति सो रँग हिय रिलि ॥ बदरँग सौतिन करति लसति तू तीय तु ही सी । सुकबि रँगीली रङ्गरँगी सी सोनजुही सी ॥ ५६२ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रकाश में नहीं है । यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रथ में नहीं है ।

*उर मानिक की उरबसी डटत घटत दृग दाग।
झलकत बाहर कढ़ि मनो पियहिय को अनुराग ॥५०२॥

पियहिय को अनुराग मनो बाहर सरसायो। सात्विकबल तें मनो रजोगुन इत चलि आयो ॥ कुच के मनहुँ प्रताप भयो गाढ़ो सजि बानिक। सुकवि सोहिनी नवल तीय धारे उर मानिक ॥ ५६३ ॥

कर उठाय घूँघट करत उसरति पटगुझरौट।
सुखमोटैं लूटी ललन लखि ललना की लोट† ॥ ५०३ ॥

लखि ललना की लोट भई मति लोट पोट सी। लखि रोमावलि रोम रोम जनु लगी चोट सी ॥ नाभी चाभी ऐंठि चढ़ाई मनहुँ मदनजर। बरबस परबस पर्‌यो सुकवि तिय के उठयें कर ॥ ५६४ ॥

लहलहाति तन तरुनई लचि‡ लग लौं लफि जाइ।
लगै लाँक लोयन भरी लोयन लेति लगाइ ॥ ५०४ ॥

लोयन लेति लगाइ ललकि कै लाल सलोनी। लरभर ललित लुनाई ऐसी भई न होनी ॥ लाल लाल की लर लरकाये लहकाति छन छन। सुकवि लली के यों ललिताई लहलहाति तन ॥ ५६५ ॥

लगी अनलगी सी जु कटि करी खरी बिधि छीन।
किये मनो वाही कसरि कुच नितंब अति पीन ॥ ५०५ ॥

कुच नितंब अति पीन किये कटिकसर निकारी। अति कोमल कै अधर कठिन हिय कीनी नारी ॥ गात गुराई जिती तिती कच स्यामता पगी। सुकवि बिधाता ठीक करी सब लगी अनलगी ॥ ५६६ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रंथ में नहीं है। † लोट = पलोट = त्रिबलि। ‡ बेत की भाँति।

*जंघ जुगल लोयन निरे करे मनो बिधि मैन ।
केलितरुन दुखदैन ये केलि तरुन सुखदैन ॥ ५०६ ॥

केलितरुनसुखदैन होत ये चञ्चल जब जब । नैनन को थिर करत प्रेम बरसावत तब तब ॥ इन कों बरनत सुकवि सबै थकि गये चारि जुग । वे मृग-दृग से ये पुनि हैं गजसुण्ड जंघ जुग ॥ ५६७ ॥

रह्यो ढीठ ढाढ़स गहे ससिहर गयो न सूर ।
मुरयो न मन मुरवान† चुभि चौ चूरन चपि चूर ॥५०७॥

भौं ‡चूरनचपि चूर आरसी +आर लगाई । बाँध्यो ¶बन्धन हार हराये

---

* मानो कामदेवरूपी बिधाता ने जङ्घयुगल को 'निरेलोयन' कोरे लावण्य से ही बनाया है ॥ ये 'केलितरुन' कदली तरुओं को दुख देने वाले हैं (क्योंकि कदलीस्तम्भ की शोभा को दबाये हैं) और केलि में तरुण पुरुषों को सुख देने वाले हैं ॥ इस दोहे मे 'लोयननिरे' प्रसाद को नष्ट करता है॥

† नायक का मन बड़ा ढीठ है औ सूर है इस लिये (ढाढ़स गहे रह्यो) धैर्य को धारण किये रहा (ससिहर गयों न) डरपा नहीं ॥

'मुरवान' का अर्थ कृष्णकवि श्री हरिचरणदास कुछ नहीं लिखते । लल्लूलाल ने मुरवान का अर्थ पाँव की कलाई लिखा है । परन्तु नथ में जड़ाऊ मोर बना रहता है उसे भी मुरवा कहते हैं (-राजपुतानी मोरड़ा) अथवा मुर बान = मुडने की बान, इसका भी मनमें कसकना वर्णित है जैसे दत्त कविकृत समस्यापूर्त्तिप्रकाश में "भूलै नाहिँ भौंह वै कटीली खमदार खासी कीरति नसाई जिन काम के क मान की । हँसत मैं दीसी सो न भूलत बतीसी दत्त भूलत न नैन सैन दैन दधि दान की ॥ भन्तरङ्ग सखातें कहत हरि ही की बातं भूली नहिं जात नारि मोरन गुमान की । भूलत न गूजरी की उजरी गहत भुजा छबि मुसकान की कर्का की सौंह खान की ॥ १ ॥ छूटी लरिकाई आई सबै चतुराई अंग अंग में निकाई कामदेव प्रगटान की । नैन में लुनाई सुघराई सरसाई ताकी कोक की कला सी खासी मूरति बखान की ॥ जोबन जवाँहिर सो चमक्यो सकल देह नेह को लगन हिये माहिँ हुलसान की । थोरे से दिना तें भौंह कों मरोरि लई बानि मुरि मुसुकान की ॥ २ ॥" संस्कृत टीका में तो पाँव का कोई भूषण कहा है जैसे "मुर्वाशब्देन चरणाभरण विशेषः हीनजातौ प्रसिद्धः ।"

‡ चूड़ा = चूरी । + भार = आरस । ¶ बन्ध = कञ्चुकी आदि के बन्धन ।

हार न आई॥ छेयो नासा छेद तऊ नहिं हट्यो रुकि रह्यो। सुकबि नैन सर सर न* भयो अति झोक झुकि रह्यो॥ ५९८॥

पाँय महावर देन कौं नाइन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी एडी मीडति जाय॥ ५०८॥

एड़ी मीड़ति जाय अति हि कोमल कपास सी। अति अरुनता विलोकि बढ़ावति अधिक आस सी॥ नाक सिकोरनि देखि समुझि कछु सुकबि ऐंचि कर। लखि बदरंग लजाय देत नहिं पाय महावर॥ ५९९॥

---

†कोहर सी एडीन की लाली देखि सुभाइ।
पाय महावर देन कौं आप भई बे पाइ॥ ५०९॥

आप भई बेपाइ चटक टकटकैं निहारत। आरत लखि गारत ह्वै आरत हिय जनु हारत॥ पुनि पुनि पट सौं पोंछि पेखि रही छबि को जौंहर। सुकबि बिलोकति नाइनि पाइनि रँग ज्यों कोहर॥ ६००॥

किय हायल‡ चित +चाय लगि बजि पायल तुव पाय।
पुनि सुनि सुनि मुख मधुर धुनि क्यों न लाल ललचाय॥ ५१०॥

क्यों न लाल ललचाय हाय पायल तुअ बाजति। झीने से झनकार सुनत

*सर न भयो = बस न। † कोहर = इन्द्रायन का फल (नामचन्द्रिका) कोहर = 'विलायती तम्बाक' (संस्कृत टीका) हरिप्रसाद ने भी इन्द्रायन का फल ही समझ के अनुवाद किया है। "जैसे इन्द्रवारुणीफलवत् तस्याः पार्ष्णिस्वभावलौहित्यम्। पदयोर्दातुमलक्तकमसमर्थाभूतपरन्यासीत्॥ और कवियों ने भी कोहर से एड़ी की उपमा दी है, जैसे 'कोहर कौंल जपाजल विद्रुम का इतनी जो बँधूक में कोत है। रोचन रोरी रची मेंहदी नृप सम्भु कहै मुकता सम पोत है॥ पांव धरे ढरे है गुर सो तिन में मनि पायन को घनी ओप है। हाथ है तीन सौं चारहु ओर तें चाँदनी चूनरी के रँग होत है॥ ‡ हायल = घायल (नाम चन्द्रिका) + चाय = चाह (इसके अर्थ में बहुत जोड़ तोड़ है प्रमाद नहीं है)॥

*अनहदधुनि लाजति ॥ घरे घालि घुघुरू घरहाइन को घूँटत जिय ॥ छन छन छनन, कै कै सुकबि न कहा गजब किय ॥ ६०१ ॥

सोहत अँगुठा पाँय के अनवँट जटित जराइ ।
जीत्यौ तरिवानिदुति सुढरि पर्‌यो तरनि मनु आइ ॥५११॥

परयो तरनि मनु पाइ कूरकरनिकरन त्यागी । चकाचौंध की चमक छाँड़ि लघु भयो बिरागी ॥ परि नखससि के सङ्ग अधिक मोहनमन मोहत । सुकबि रतन सौं जड्यो पाँय अनवट अति सोहत ॥ ६०२ ॥

† अरुनबरन तरुनीचरन अँगुरी अति सुकुमार ।
चुअति सुरँगरँग सी मनहुँ चँपि बिछियन के भार ॥५१२॥

चँपि बिछियन के भार आँगुरी रंग चुआवत । चलिबे जनु श्रम पाय चरन सोनितन बहावत ॥ फूल चुनन सौं लाल भये वा तिय के दोऊ कर । सुकबि बचन सौं थके अधर हू भये अरुन वर ॥ ६०३ ॥

पग पग मग अगमन परति चरन अरुन दुति झूलि ।
ठौर ठौर लखियत उठे दुपहरिया से फूल ॥ ५१३ ॥

दुपहरिया से फूल ठौर ही ठौर लखाहीं । चुवै चलिहै जनु सोनित यौं जिय अधिक सकाहीं ॥ यह कोमलता लखत होत सखियन हिय दगदग । सुकबि हाय मग अगम बाल चलिहै क्यों पगपग ॥ ६०४ ॥

पग भूषन अंजन दृगनि पगन महाउर रंग ।
नहिं सोभा कौं साजियत कहिबे ही कौं अंग ॥ ५१४ ॥

कहिबे हीं कौं अङ्ग अङ्ग धारति यह प्यारी । सहज सलोनी सोभा कौं इन

---

* अनहद धुनि = अनाहत ध्वनि । † यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है ॥

और बिगारी ॥ अंगराग हू अंग माँहिँ लागत जनु दूषन ॥ सुकवि तऊ बिनु काज कहा धारति तन भूषन ॥ ६०५ ॥

मानहुँ बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबे काज ।
दृगपगपोंछन कों किये भूषन पायन्दाज ॥ ५१५ ॥

भूषन पायन्दाज होत जो नाहिँ तिया अँग । तो ये मैले होत पाइ मैली डीठिन सँग ॥ नजर बजर सब परो इनहिँ पै तिय सुख सानहु । सुकवि याहि सों भूषन बिधि ने कीने मानहु ॥ ६०६ ॥

---

* सहज सेत पचतोरिया पहिरे अति छबि होति ।
जल चादर के दीप ज्यौं जगमगाति तन जोति ॥५१६॥

जगमगाति तन जोति आपु ही सों गतदूषन । ता के बिच बिच झलमलात कछु कछु सित भूषन ॥ लहलहात सोभा चहुँदिस सजि सजि सजधज से । सुकवि नैन नाहिँ ठहरत लखि इमि अंग सहज से ॥६०७॥

देखी सो न जु ही फिरति सोनजुही से अंग ।
दुति लपटनि पट सेत हूँ करति बनौटी रंग ॥ ५१७ ॥

करति घनौटी† रंग पीत मोती अरु हीरन । करत हरे पुनि नील कंचुकी चादर चीरन ॥ केसरचन्दनचूर चहूँ उड़वत सी पेखी । बेली सी वह सुकवि आजु अलबेली देखी ॥ ६०८ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि की टीका में है ॥ "जलचादर के दीप ज्यौं" प्रायः अच्छे अच्छे उद्यानों में ऐसी बनावट की जाती है कि ऊपर से पर्दे की भांति जल ढोकता है और इसके उस पार ताखों में दीपक रखते हैं सो जल के गिरने से झलमलाता प्रकाश शोभित होता है। लाहौर के महाराज रणजीतसिंह के शालमार बाग़ में अभी तक है और अयोध्या में भी वर्तमान अयोध्या नरेश के शृङ्गारवन में जलचादर है। बिहारी जी के समय में भी यह चाल विदित होती है ॥ † बनौटीरङ्ग = कपासीरङ्ग । ये 'बनौटी' लिख कर 'घनौटी' हो गया है ।

पुन:

रङ्गभरे वह गोरे गोरे गाल गुलाबी। सुन्दर सुन्दर दन्त कुन्दकलिकादुति दावी॥ गुलदुपहरिया अधर नैन नरगिसछबि पेखी। सुकबि कुसुम करकमल चुनति नहिँ प्यारी देखी?॥ ६०६॥

वाहि लखैं लोयन लगै कौन जुवति की जोति।
जाके तन की छाँहढिग जोन्ह छाँह सी होति॥ ५१८॥

जोन्ह छाँह सी होति छाँहढिग जाके छन मैँ। परे चाँदनी होत मलिनदुति जाके तन मैँ॥ दरपन से भूषन हु अङ्ग नहिँ सोहत जाही। आँखिन वारो सुकबि होत परबस लखि वाही॥ ६१०॥

कहा कुसुम कहा कौमुदी कितिक आरसी जोति।
जाकी उजराई लखैं आँखि ऊजरी होति॥ ५१९॥

आँखि ऊजरी होति लखैं जाकी उजराई। मूँदे हु पै रसभरी रहति वाही छबि छाई॥ धोये हू नहिँ जात नैन सो ई सोभा रह। सुकबि आरसी कहा कौमुदी कहा कुसुम कह॥ ६११॥

---

*कहि लहि कौन सकै दुरी सोनजुही मैं जाइ।
तन की सहज सुबासना देती जो न बताइ॥ ५२०॥

देती जो न बताइ द्वार लौं फैलि रही अति। कारे कारे अलिकुल की त्यौं रोकि रही गति॥ सुकबि रङ्ग मैं रङ्ग मिल्यो सब सखी रही चहि। अङ्ग सुगन्ध न होती तो लहि कौन सकै कहि॥ ६१२॥

रहि न सक्यो कस करि रह्यो बस करि लीनो मार।
भेद †दुसार कियौ हियौ तनदुति भेदै ‡सार॥ ५२१॥

---

*यह दोहा कृष्णदत्त कवि की टीका के ग्रन्थ में नहीं है। †दुसार = आरपार। ‡सार = लोहा।

तनदुति भेदे सार सरोवर आगि लगावे। वरती झर कोँ तरुन करत जल झर बरसावे ॥ जादू टोना मन्त्र जन्त्र को सार लिये गहि । आँख परे ही धीर बीर* नहिँ सुकवि सकै रहि ॥ ६१३ ॥

कंचनतन धन बरन बर रह्यो रंग मिलि रंग ।
जानी जाति सुवास ही केसर लाई अंग ॥ ५२२ ॥

केसर लाई अङ्ग वास ही सोँ पहिचानी। रङ्ग रङ्ग मिलि गयो किहूँ विधि जात न जानी ॥ विनु काजे यह बानि परी कैसी धौँ सखियन । केसर लावति सुकवि रोज तिय के कञ्चनतन ॥ ६१४ ॥

ह्वै कपूर मनिमय रही मिलि तनदुति मुकतालि ।
छन छन खरी विचच्छनौ लखति छ्वाय तृन आलि † ॥५२३॥

लखति छ्वाय तृन आलि रगरि पुनि पुनि कर माहीँ । गहि न सकत सो जानत तब यह सो मनि नाहीँ॥ एक एक सोँ पूछि रही तऊ लखि न सकत धनि । सुकवि रही मुकताहलमाला ह्वै कपूर मनि ॥ ६१५ ॥

बाल छबीली तियन में बैठी आप छिपाइ ।
‡अरगट ही फानूस सी परगट होति लखाइ ॥ ५२४ ॥

परगट होति लखाइ धधकि रहि छवि कै ज्वाला। चहूँ ओर जनु फैलि रही किरननि की माला ॥ दृगपतङ्ग परि रहे देखि के कान्ति रसीली । छिपे छिपाये नाहिं सुकवि वह बाल छबीली ॥ ६१६ ॥

करत मलिन आछी छवि हिं हरत जु सहज विकास ।
अंगराग अङ्गनि लगौ ज्यौँ आरसी उसास ॥ ५२५ ॥

---

* बीर = हे सखी । † अम्बर मोती तृण का आकर्षक होता है यह किंवदन्ती है ।
‡ अनुमान इसका अर्थ घूँघट लिखते हैं (अरगट = अलग = अलगांट)

ज्यों आरसी उसास राग नहिँ लागत नीको। अतिसै फीको लगत सु तीको केसर टीको ॥ बीरी को नहिँ काज अधर आपु हि है सुन्दर। सुकबि अरुनई छटाकि रही ज्यों अरुनित रबिकर ॥ ६१७ ॥

पहिर न भूषन कनक के कहि आवतु इहिँ हेत।
दर्पन के से मोरचा देह दिखाई देत ॥ ५२६ ॥

देह दिखाई देत सहज ही अधिक रसीली । रपटि परैँ दृग जहाँ नाहिँ फिरि सकै छबीली ॥ टेव परी का समुझत नहिँ ये हैँ अँगदूषन । सुकबि तुही चलि मुकुर देखि तिय पहिर न भूषन ॥ ६१८ ॥

लीने हू साहस सहस कीने जतन हजार।
लोइन *लोइनसिंधुतन पैरि न पावत पार ॥ ५२७ ॥

पार न पावत किहूँ जतन ये करत करोरैँ । छबि के तुङ्गतरङ्गभङ्ग अति ही झकझोरैँ ॥ पलकपाल परि जात सुकबि यह धीरज छीने । कुण्डलमकर भुजङ्गअलक और हु जिय लीने ॥ ६१९ ॥

दीठि न परत समान दुति कनक कनक से गात।
भूषन कर करकस लगत परसि पिछाने जात ॥ ५२८ ॥

परसि पिछाने जात कनक नहिँ परत लखाये। रसमाती के अङ्ग आजु चसमा हुँ हराये ॥ केसरकंचुकिबन्ध बिलोकत जानी नीठिन। सुबरन भूषन सुकबि परत कोऊ बिधि डीठि न ॥ ६२० ॥

अङ्ग अङ्ग नग जगमगति दीपसिखा सी देह।
दिया †बढ़ाये हू रहै बड़ो उजेरो गेह ॥ ५२९ ॥

---

*लावण्य समुद्र तन में। † बढ़ाने का तात्पर्य बुताना है॥प्राय: दिया दुकान, कोठी आदिशब्दों के योग में बुताना औ बन्द करना अर्थ होता है।यदि कहैं कि 'दिया बुताओ' तो यह अशकुन समझा जाता है।

बड़ो उजेरो गेह भयो ही रहत रैन दिन। लखि चमकीले अङ्ग परी हू तोरि रही तिन*॥ सुकवि पियादृग पथिक भये हैं तिया रूपमग। छनक छनक ही चमक उठत हैं अङ्ग अङ्ग नग॥ ६२१॥

अङ्ग अङ्ग प्रतिविम्ब परि दरपन से सब गात।
दुहरे तिहरे चौहरे भूषन जाने जात॥ ५३०॥

भूषन जाने जात चौहरे और पचहरे। मेचक कुंचित केस घने अति सोहत छहरे॥ सूही चादर ओढ़त हीं रँग दमकत हैं अति। सुकवि पिया प्रतिविम्ब परत हैं अङ्ग अङ्ग प्रति॥ ६२२॥

पुनः

भूषन जाने जात विविध इमि अङ्ग सफाई। सखीवसनदुतिपरत रङ्ग रँग होत निकाई॥ फूल भरी सी होत सुकवि फुलवारी के मग। सहसनैन छवि बनत पियादृग परत अङ्ग अँग॥ ६२३॥

अङ्ग अङ्ग छवि की लपट उपजति जाति अछेह।
खरी पातरी ऊ तऊ लगै भरी सी देह॥ ५३१॥

लगै भरी सी देह चलत जनु फूल छरी सी। थाह न दीसी कछू वढ़ी रसरासिनदी सी॥ वरनि सकै इहिं और सुकवि विन कहो कौन कवि। झीने पट हू भेदि फैलि रही अङ्ग अङ्ग छवि॥ ६२४॥

रंच न लखियत पहिरि यों कंचन से तन बाल।
कुम्हिलानी जानी परै उर चम्पे की माल॥ ५३२॥

उर चम्पे की माल परत जानी कुम्हिलाये। के अनुमानी जात कञ्ज के

---

* तिन = तृण। तृण तोड़ना, आपमानना और बलिहारी का चिह्न है।

भौंर भगाये* ॥ झोंका लगि झूमत हू देखी कोउ परपञ्चन। सुकबि सधारन माँहि माल कछु लखियत रंच न ॥ ६२५ ॥

त्यौं त्यौं प्यासे ई रहत ज्यौं ज्यौं पियत अघाइ ।
सगुन सलोने रूप कौं जु न चखतृषा बुझाइ ॥ ५३३ ॥

तृषा बुझाइ न नेक होत दूनी ही दिन दिन। मधुर रूप की बढ़त लालसा सौ गुन छिन छिन ॥ नियरे ह्वै ह्वै ठठाकि ठठाकि जनु करत तमासे। सुकबि पियत ज्यौं रूप अमी हैं त्यौं त्यौं प्यासे ॥ ६२६ ॥

लिखन बैठि जाकी† सबि हिं गहि गहि गरब गरूर ।
भये न केते जगत के चतुर चितेरे कूर ॥ ५३४ ॥

चतुर चितेरे कूर भये चतुराई भूले। गयो सबै वह गरब रहे जासौं अति फूले ॥ रङ्ग रूप कछु बनत नहीं बैठे ह्वै अनिमिष। सुकबि लेखनी हाथ रही कछुहू सकत न लिख ॥ ६२७ ॥

पुनः

चतुर चितेरे कूर आपु भये चित्र लिखे से। महामोहिनी मंत्र मारि मोहित निरखे से ॥ विद्या वहिं गई सूखि गई पाई ही जो सिख। सुकबि बखानि न सकै ताहि सकि है कैसे लिख ॥ ६२८ ॥

केसर कै ‡सर क्यौं सकै चंपक कितिक अनूप ।
गातरूप लखि जात दुरि +जातरूप को रूप ॥ ५३५ ॥

जातरूप को रूप जात लखि ¶जासु लुनाई। कौन केतकी तकी जासु ऐसी

---

* चम्पा के समीप भौंर नहीं रहता यह प्रसिद्ध है जैसे; "चम्पा तो मैं तीनगुन रूप रङ्ग अरु बास। औगुन तो मैं एकही भौंर न आवत पास ॥" "दाख केसे भौंरा झलकति जोति जोबन की खायजाते भौंरा जोनहोती रङ्ग चम्पा के।" † सबी = सचित्र = तसवीर। ‡ सर = सरि = समता = सादृश्य। + जातरूप = सोना ¶ जासु = (यस्या)

छवि छाई ॥ दाव दावदी को न लगै भई दरिद हरिद वर । सुकवि कहो क्यौं सकै यासु अवकेसर के सर ॥ ६२९ ॥

---

*रूप लग्यो सब जगत को तो तन अवधि अनूप ।
दृगनि लगी अति चटपटी मो दृग लागे रूप ॥ ५३६ ॥

मोदृग लागे रूप चटपटी दृग अति लागी । लगी चटपटी माहिँ चाह स उछाह अभागी ॥ चाह माहँ पुनि आह आह भयो दाहप्रचारू । सुकवि लगै नहिँ दाह चाह तो छवि है मारू ॥ ६३० ॥

भूषनभार सँभारिहै क्यौं यह तन सुकुमार ।
सूधे पाय न धर परत सोभा ही के भार ॥ ५३७ ॥

सोभा ही के भार झुकी अति रहत पियारी । तेल फुलेल लगाइ ताहि का चाहत मारी ॥ काजर को नहि काम आपु हैं दृग गत दूपन । सुकवि सँभरिहै नाँहि देत क्यौं या कौं भूपन ॥ ६३१ ॥

न जक धरत हरि हिय धरे नाजुक †कमला बाल ।
भजत भारभय भीत ह्वै घन चन्दन बनमाल ॥ ५३८ ॥

घनचन्दन बनमाल भार सी भीपन मानति । चन्दचाँदनी चमक चण्डकर चपला जानति ॥ कोकिलकलकाकली काल सी कठिन गनति करि । सुकवि साँवरी सिसकि रही किहुँ न जक धरति हरि ॥ ६३२ ॥

---

* यह सोरठा है परन्तु कुण्डलिया के लिये उलट के रक्खा है ॥ † यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है । विरहिणीवर्णन दूती वचन नायक से । हे हरि जिस सुकुमार पद्मिनी (कमला) बाल को आप हृदय में धारण किये हो वह घनचन्दन (घन = घनसार = कपूर) बनमाल से भी जैसे भार का भय हो ऐसे भीत होकर भगाती है धैर्य नहीं धरती । (इसके नाना अर्थ हैं)

छाले परिबे के डरन सकै न हाथ छुवाइ।
झझकति हिये गुलाब के झवा *झँवावति पाइ ॥५३९॥

पाइ निकट लौं लाइ लाइ पुनि दूर हटावति। चहुँ घुमाइ बिलोकि विचारति पग न छुवावति ॥ पुनि पुनि पखुरी लखति लगी बहु संसय करिबे। सुकवि रखाति गहि गहि कर लागैं छाले परिबे ॥ ६३३ ॥

मैं बरजी कै बार तू इत कित लेति करौट।
पखुरी गरैं गुलाब की परि हैं गात खरौट ॥ ५४० ॥

परि है गात खरौट दिनन लौं हा हा कै है। फूलन हूँ मति छूइ कली कोऊ चुभि जैहै ॥ छाले परि है लैन हिंडोरा डोर हाथ मैं। सुकबि तिलक क्यौं देत रेख परि है जु माथ मैं ॥ ६३४ ॥

---

†ज्यौं कर त्यौं चुहँटी चलै ज्यौं चुहँटी त्यौं नारि।
छबि सौं गति सी लै चलति चातुर कातन हारि ॥५४१॥

चातुर कातनहारि चारु चरखाहिँ चलावति। तेहिँ सँग घूँघट नथ झुलनी झुमकान हिलावति ॥ सँग सँग नैन नचावति लरकावति मोती लर। सुकबि खनकि रही चूरी हू डोलत ज्यौं ज्यौं कर ॥ ६३५ ॥

---

‡दृग थिरकौंहे अधखुले देह थकौंहैं ढार।
सुरत सुखित सी देखियत दुखित गर्भ के भार ॥ ५४२ ॥

दुखित गर्भ के भार तऊ अति लगत सुहाती। सुन्दर बगरे बार + सीकरन बिन्द नहाती ॥ कबहुँ लजौंहैं होत कबहुँ तकती पुनि सौंहैं। सुकबि हँसौंहैं होत कब हुँ दोउ दृग थिरकौंहैं ॥ ६३६ ॥

---

* झाँवे से पैर धोना झँवाना कहलाता है। † चरखे कातने का वर्णन कुछ ग्राम्य दोष है ॥

*गोरी गदकारी परे हँसत कपोलनि गाड़ ।
कैसी लसति गँवारि यह सुनकिरवा की आड़ ॥ ५४३ ॥

सुनकिरवा की आड़ धरे मटकति है कैसी । खिलखिलाय कै हँसति कहति बातैं पुनि तैसी ॥ सारी कबहुँ सँवारति ककरेजारँग बोरी । मुरि मुरि सुकवि विलोकि रही है ग्वारिन गोरी ॥ ६३७ ॥

---

†प्रफुलाहार हियें लसै सन की बेंदी भाल ।
राखति खेत खरी खरी खरे उरोजनि बाल ॥ ५४४ ॥

खरे उरोजनि बाल लखति पुनि इत उत जोवति । आममौर श्रुति धरे झमकि जनु धीरज खोवति ॥ कुन्दकली को कै बुलाक धारे छवि अतुला । गुञ्जा झुलनी रचे सुकवि सोहै छवि प्रफुला ॥ ६३८ ॥

चमक तमक हाँसी सिसक मसक झपट लपटानि ।
ये जिहि रति सो रति मुकति और मुकति अतिहानि ॥५४५॥

और मुकति अतिहानि ताहि लै कै का कीजै । निराकार परब्रह्म बने हू का सुख लीजै ॥ स्वर्ग कहा जो देवतिया नहिँ करती झमझम । सार सुरति है सुकवि और देखन के चमचम ॥ ६३९ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका और कृष्णदत्तकवि की टीका में नहीं है ॥ गदकारी = गदके रङ्ग-वाली ॥ सुनकिरवा की आड़ = जुगनू का अथवा जुगनू के रङ्ग का टीका लगाये ॥ यहां 'लगाये' अथवा 'दिये' का अध्याहार माना है सो अनुचित है । ऐसा चाहे जिस शब्द का अध्याहार नहीं होता ॥

† लालचन्द्र लिखते हैं कि "प्रफुला एक वृक्ष है संस्कृत में उसे गण्डुल भी कुलक कहते हैं । पण्डित हरिप्रसाद ने प्रफुला के स्थान में 'पकुला' पाठ रखा है और इसका अर्थ कुमुदिनी समझा है । उनकी आर्या यों है ॥ 'ममितकुमुदिनीहारा ग्रामीणा गण्डकुसुमतिलकभाला । उन्नतपयोधरेयं रक्षति शालीशिखा क्षेत्रम् ॥' " इस आर्या में हारा के स्थान में माला करते तो और अच्छा श्लोक होता ॥

*तनक झूठ निसवादली कौन बात परिजाइ ।
तियमुख रतिआरंभ की नहिँ झूठिये मिठाइ ॥ ५४६ ॥

नहिँ झूठिये मिठाइ मरम जानै सो जानै । बसनगहनि नीवी पकरनि सुख दूनो ठानै । दृग मूँदानि पुनि सुकबि अधिक उमगावति है मन । टरनि मुरनि पाटीपकरनि सरसावति है तन ॥ ६४० ॥

---

†जो न जुक्ति पिय मिलन की धूर मुक्ति मुहँ दीन ।
ज्यौँ लहिये सँग सजन तौ धरक नरक हू कीन ॥५४७॥

धरक नरक हू कीन मिलै जो पै पिय प्यारो । पियहित मारो जारो नाग डसावहु कारो ॥ पीय बिना पुनि लगै पियूष हु जुलम जहर सो । सुकबि मुक्ति मैं आगि लगै नहिँ मिलै पीय जो ॥ ६४१ ॥

कुंजभवन तज भवन कौँ चलिये नन्दकिसोर ।
फूलत कली गुलाब की चटकाहट चहुँ ओर ॥ ५४८ ॥

चटकाहट चहुँ ओर ललकि अलि गन मँडराने । कोकिल कलरव करत तान पञ्चम की ताने ॥ झूमत‡ अम्बाबौर छजी केसर की सजधज । सुकबि न जैये कहुँ बसन्त इहिँ कुंज भवन तज ॥ ६४२ ॥

+हेरि हिँडोरे गगन तैँ परी परी सी टूटि ।
धरी धाय पिय बीच ही करी खरी रस लूटि ॥ ५४९ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है। क्या तनिक झूठ हो तो भी निस्वाद हो होती है ? क्या जाने क्या बात पड़ जाय ! रति के आरम्भ में तिय की झूठी 'नाही' में हीं मिठास रहता है ॥ (इस दोहे का पूर्वार्द्ध अच्छा नहीं है) यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में भी नहीं है ॥ † धरक = स्वीकार (हरिप्रकाश) ॥ यदि की न अलग अलग मानें और यह अर्थ करें कि नरक की भी धड़क (डर) नहीं है तो और अच्छा हो । यह दोहा हरिप्रकाश के ग्रन्थ में नहीं है । ‡ आम के मौर ।

+ देख हिंडोलेरूपी आकाश से ।

करी खरी रस लूटि बड़े पुन्यन जनु पाई । चकी जकी सी रङ्गभरी गहि कण्ठ लगाई ॥ टूटी माल अरु बिथुरि गये कच हू तन गोरे । चुयो परत सुख आज सुकवि तिय हेरि हिंडोरे ॥ ६४३ ॥

---

*बरजे दूनी ह्वै चढ़ै ना सकुचै न सकाइ ।
टूटनि कटि दुमची मचक लचकि लचकि बचि जाइ ॥५५०॥

लचकि लचकि बचि जाय लहकि लहँगा लहरावति । कटि किङ्किनि झमकाइ उचकि अँचरा फहरावति ॥ झूमि झमकि झबियान झुमावति होत न ऊनी । सुकवि डोर नहिँ तजत होत है बरजे दूनी ॥ ६४४ ॥

लै चुभकी चलि जाति जित जित जलकेलि अधीर ।
कीजत केसरनीर से तित तित के सर नीर ॥ ५५१ ॥

तित तित के सर नीर होत केसररँगधारा । बूड़े हु पै नहिँ छिपति अङ्ग इमि जोति अपारा ॥ बलि जाऊँ हरि चलो छिपे से कोउ जुगत कै † । सुकवि नयन निज सफल करहु राधिका दरस लै ॥ ६४५ ॥

बिहँसति सकुचति सी हिये कुचआँचरबिच बाँह ।
भींजे पट घर कौं चली न्हाय सरोवर माँह ॥ ५५२ ॥

न्हाय सरोवर माँह चली बूँदन टपकावति । तिरछैं लखि लखि स्याम अधिक अङ्गन पुलकावति ॥ सारी चिपकानि कछू छुड़ावति रुकि रुकि बिलसति । सुकवि फुरहरी लेइ फिरति तकि तकि कै बिहँसति ॥ ६४६ ॥

पुनः

न्हाय सरोवर माँह समेटत लट लपटानी । केसर सेंदुर चुवत चरन रुकि कछु रपटानी ॥ चूचुक सारी परसि रहे तिहिं निहुरि लखति सी । सुकवि स्याम कौं निरखि निरखि बिहँसति सकुचति सी ॥ ६४७ ॥

---

* यह दोहा देवकीनन्दन टीका में नहीं है । † केवल स्वर में (तुकान्त मिलाया है)।

*मुख पखारि मुड़हर भिजै सीस सजल कर छ्वाइ।
मौरि उँचै घूँटेनि नै नारि सरोवर न्हाइ ॥ ५५३ ॥

न्हाइ आँचरन आड़ किये कुच दोऊ पखारति। चिरुआ लै लै नीर नैन पै छींटन डारति ॥ नाभि रोमावलि कटि नितम्ब मलि अधिक लहति सुख। सुकबि हिँ लखि मुसकाति बसन तैं पोंछि रही मुख ॥ ६४८ ॥

छिरके नाह नवोढ़दृग करपिचकीजलजोर।
रोचनरँग लाली भई बिय तियलोचनकोर ॥ ५५४ ॥

बिय तियलोचनकोर भई जल छींटन लाली। कछु सँदुर बहि आनि अरयौ तेहिँ निकट गुलाली ॥ पियअनुरागीनैन भये प्रतिबिम्बित थिरके। सुकबि और हू प्यास बढ़ी दृग हरिजलछिरके ॥ ६४६ ॥

---

†चलनललितश्रमसेदकनकलित अरुनमुखऐन।
बनबिहारथाकी तरुनि खरे थकाये नैन ॥ ५५५ ॥

खरे थकाये नैन पात लै बात डुलावति। हाँफति सी पुनि बैठि मंच अँग अँग थरकावति ॥ कर कपोल दै रहति उघारति ठमकि नैन पल। भये सकल सुखऐन बखानत सुकबि हु चञ्चल ॥ ६५० ॥

बढ़त निकसि कुचकोररुचि कढ़त गौर भुजमूल।
मन लुट गौ लोटन‡ चढ़त चूँटत ऊँचे फूल ॥ ५५६ ॥

चूँटत ऊँचे फूल उँचै सरकत सिरसारी। दरसत अलक कपोल झूमका बिचकन बारी ॥ त्रिवली नाभि रोमावलि कछु झलकन आनन्दमढ़। सुकबि और आनन्द कहा ह्वै है यासौं बढ़ ॥ ६५१ ॥

---

* मौरिउँचैं घूँटेनि नै = जूड़ा ऊंचा कर घुटनुओं से झुक कर ॥

† यह दोहा हरिप्रकाश के ग्रन्थ में नहीं है। ‡ लोट = त्रिवलि ॥

अपने कर गुहि आप हठि हिय पहिराई लाल।
मौल सिरी औरै चढ़ी मौलसिरी* की माल ॥ ५५७ ॥

मौलसिरी की माल आजु औरै छवि धारति। निरखत नैनन हरति हहा हियरो गहि गारति ॥ कुच केसर मुखवासमिलित सोहति सौरभ वर। सुकवि लखहु यह माल लाल गूँथी अपने कर ॥ ६५२ ॥

---

†जु ज्यों उझकि झाँपति वदन झुकति विहँसि सतराइ।
तु त्यों गुलाल मुठी झुठी झझकावतु प्यौ जाइ ॥५५८॥

झझकावत प्यौ जाइ झुठी मूठी छन छन मैं। सकुचत चिहुँकत जात नारि सिकुरी निज तन मैं ॥ सुकवि सुजान उछाह अधिक उर बाढ़त त्यों त्यों। उझकत हाहाखात तिया झाँपत मुख ज्यों ज्यों ॥ ६५३ ॥

पीठि दिये ही नैक मुरि कर घूँघटपट टारि।
भरि गुलाल की मूठि सो गई मूठि सी मारि‡ ॥ ५५९ ॥

गई मूठि सी मारि झमकि नूपुर झमकावति। हँसि कछु तिरछी लखति झूमि झुलनियाँ झुमावति ॥ केसकुसुम बरसाइ सुकवि मन जात लिये ही। दुरत दुरत दुरिगई दुआरन पीठि दिये ही ॥ ६५४ ॥

पुनः

गई मूठि सी मारि × झूठ ही मूठ छबीली। हिय कसकति है अजहुँ बासु

---

* मौलसिरी = बकुल। † यह दोहा धनवर चन्द्रिका में नहीं है। इस में 'जुज्यों' और 'तुत्यों' भाषाच्युत है। यों ठीक होता। ज्यों ज्यों झाँपति मुख उझकि झुकति विहँसि सतराइ। त्यों त्यों बधिर मुठी झुठी झझकावत पियजाइ'। इस ज्यों ज्यों ही मान के कुण्डलिया का कुण्डल मेलन किया है। कदाचित् 'गुरु हू लघु की रीति सौं पढ़ें सु लघु ही मान' इस नियम पर बिहारी जी ने 'ज्यों त्यों' ही को शीघ्र पढ़ना चलाया हो जो कालान्तर में 'जु ज्यों' लिखा गया हो। पर यहाँ इस नियम से काम ऐसा भी हृदयग्राही नहीं है। ‡ मारणमन्त्र का प्रयोग करना मूँठ मारना कहलाता है अभी तक राजपूताने में यह शब्द प्रसिद्ध है। × झूठमूठ = झूठमूठ का बोलने का प्रकार है।

कंचुकी कसीली ॥ भौंह रसीली मिसी लसीली चञ्चल दीठी । सुकबि न भूलत मोरन मुख चटपट दै पीठी ॥ ६५५ ॥

दियौ जु पिय लखि चखनि मैं खेलत फागु खियाल ।
बाढ़त हू अति पीर सु न काढ़त बनत गुलाल ॥ ५६० ॥

काढ़त बनत गुलाल तऊ नहिँ काढ़त प्यारी । सहत किरकिरी नैन जात हरि पै बलिहारी ॥ रंगनधार कपोल लगी पोँछत नहिँ है सखि । सुकबि न झारत अबरख उर पै दियो जो पिय लखि ॥ ६५६ ॥

---

*छुटत मुठि न सँग हीँ छुटी लोकलाज कुलचाल ।
लगे दुहुनि इकसंग ही चलचित नैन गुलाल ॥ ५६१ ॥

चलचित नैन गुलाल लगे दोउन इक सङ्गै । भीतर को अनुराग निकरि लपट्यो जनु अङ्गै ॥ कौन गौर को स्याम भये दोऊ एक हि रँग । सुकबि भेद छुटि गयो अबिर के छुटत मुठिनसँग ॥ ६५७ ॥

गिरै कंपि कछु कछु रहै करपसीज लपटाइ ।
डारत मुठी गुलाल की छुटत झुठी ह्वै जाइ ॥ ५६२ ॥

छुटत झुठी ह्वै जाइ तऊ सुख देत तैस ही । प्यारी नैननि मूँदि करति सीबी सु वैस ही ॥ पोँछति बार हिँ बार कपोलन उँचयो आँचर । नाहीँ नाहीँ करति सुकबि तिय कछु कम्पित कर ॥ ६५८ ॥

ज्योँ ज्योँ पट झटकति हटति हँसति नचावति नैन ।
त्योँ त्योँ निपट उदार† हू फगुआ देत बनै न ॥ ५६३ ॥

---

*प्राचीन संस्कृत ग्रन्थो मेँ अबिर गुलाल का नाम भी नहीँ मिलता और होरी की भी धूम नहीँ है ॥ रत्नावली नाटिका मेँ पिष्टात और सिन्दूर उड़ाने की चर्चा है और होली के बदले बसन्तोत्सव बर्णित है ॥ † नायक उदार हैँ तो भी उसे शोभा मे ऐसा फसाया है कि फगुआ नहीँ देता ॥

फगुआ देत बनै न चित्त हरि लियो रसीली। गजब गुजाराति गरब गुरेरानि सौं गरबीली ॥ मुरि मुरि मन मुसुकाति मोरि मुख माँती मटकाति। सुकवि हटति तिय हटकि हटाकि ज्यौं ज्यौं पट भकाति ॥ ६५९ ॥

रस भिजये दोऊ दुहुनि तऊ टिक रहे टरै न।
छवि सौं छिरकत प्रेमरँग भरि पिचकारी नैन ॥ ५६४ ॥

भरि पिचकारी नैन औझका भाँकि चलावत। धोखा दै दै झमकि कटाछन झर बरसावत ॥ लखि लखि जुगुलकिसोर सुकवि वारत है सरवस। रुकत न भीने चीर वीर भींगे दोऊ रस ॥ ६६० ॥

छकि रसालसौरभसने मधुरमाधुरी गंध।
ठौर ठौर झौंरत झिपत भौंरझौंर मधुअंध ॥ ५६५ ॥

भौंरभौंर मधुअन्ध बौर बौरन ही बैठत। दौर दौर कै ठौर ठौर गुञ्जत मद ऐंठत ॥ भौंरीसँग भौंरीन विराचि थिर होत ठठकि थकि। विन्दुमरन्द अनन्दकन्द लै रहे सुकवि छकि ॥ ६६१ ॥

दिस दिस कुसुमित देखिये उपवन विपिन समाज।
मनहुँ वियोगिनि कौं कियौ सरपंजर रितुराज ॥ ५६६ ॥

सरपंजर रितुराज कियो वहु साजि समरसर। वघनख विपुलपलास केवरा आर भयङ्कर ॥ सुकवि लतर के पास अहैं लटकाये जित तित। धधकाई पुनि आगि गुलावन दिसि दिसि कुसुमित ॥ ६६२ ॥

---

*फिरि घर कौं नूतन पथिक चले चकिताचित भागि।
फूल्यौ देखि पलासबन समुँहै सँमुझि दवागि ॥ ५६७ ॥

समुँहैं सँमुभि दवागि धधकती अति घवराये। धूमजाल से देखि तमालन

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है।

उलटि पराये ॥ धीरसमीरनझारझुरस झुरसत से घिरि घिरि। निज घर घर मैं घुसे सुकबि नवपथिक सबै फिरि ॥ ६६३ ॥

नाहिन ये *पावकप्रबल लुएँ चलति चहुँ पास ।
मानौ बिरह बसन्त के ग्रीषम लेत उसास ॥ ५६८ ॥

ग्रीषम लेत उसास निरस ह्वै दुख उपजावत । बिरहताप जनु तपैं आप औरन हुँ तपावत ॥ रैन हु मैं नहिँ चैन मित्र हू रिपु भये याही । सुकबि आह की लपट उठत दावागिन नाहीँ ॥ ६६४ ॥

---

†कह लाने एकत रहत अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोबन सो कियो दीरघदाघ निदाघ ॥ ५६९ ॥

दीरघदाघ निदाघ बाघ मृग मीत बनाये । अहिगन केकीपुच्छछाँह सोवत सचु पाये ॥ जग्य अगिन सी दहकि रही दावानल दहदह । कियो तपोबन सरिस जगत यह साँच सुकबि कह ॥ ६६५ ॥

---

‡बैठि रही अति सघबन पैठि सदन तन माँह ।
देखि दुपहरी जेठ की छाँह हु चाहति छाँह ॥ ५७० ॥

छाँह हु चाहति छाँह घुसि गई मालतिकुञ्जन । ठण्ढहु चाहति ठण्ढ करति सरवरतल मज्जन ॥ निसि हू निसि ही माँहि छिपी सी कछु कछु प्रगटाति । सीरी सुकबि बयार निकुञ्जन बैठि रही अति ॥ ६६६ ॥

पावसघनअँधियार मैं रह्यो भेद नहिँ आन ।
रातिद्यौस जान्यो परै लखि चकई चकवान ॥ ५७१ ॥

लखि चकईचकवान परसि कै पुनि मुकुताहल । देखि देखि कीडासरसर-

---

* अग्नि से भी प्रबल ॥ † दुखपाकर (लल्लूलाल) ‡ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है।

सिजपखुरीहलचल ॥ घटीजन्त्र के जोर रैन दिन कहत गुनी जन । सुकवि स्याममय भयो जगत छायो पावसघन ॥ ६६७ ॥

पुनः

लखि चकईचकवान बान मिलिबे बिछुरन की । अटकर कछु कछु परत दिवस अरु रैन दुरन की ॥ झर झर झर के झाँरसंग झिल्ली झनकारन । सुकवि घुमाड़ि घनघटा बाँधि घमकत पावसघन ॥ ६६८ ॥

पुनः।

लखि चकईचकवान भेद कछु जान्यो परतो । जो पुनि कछू प्रकास कोऊ विधि कहूँ उघरतो ॥ सुकवि महातमतोम न दीखत अपनो हू तन । ससि-तारा हू कहा घोर उमडे पावसघन ॥ ६६९ ॥

---

*तिय तरसौंहैं चित किये करि सरसौंहैं नेह ।
घरपरसौंहैं ह्वै रहे झरबरसौंहैं मेह ॥ ५७२ ॥

झरबरसौंहैं मेह आइ कै घेरि लियो अब । बिजुरीचमकन लखत आँखि को तेज गयो सब ॥ घर बाहर नहिं सूझि परत ऐसो अँध्यार किय । सुकवि बिछुरि कै जीय सकै किमि हाय पियातिय ॥ ६७० ॥

कुढँग कोप तजि रँगरली करति जुवति जग जोइ ।
पावस बात न गूढ़ यह बूढ़नि† हूँ रँग होइ ॥ ५७३ ॥

होइ रंग बूढ़न हू पै एक छटकति लाली । भींगत बरषाधार भूमि निरखत हरियाली ॥ देखत राह मनावन की क्यों सुकवि साज सजि । चञ्चल तिय घनस्याम हिं लखि अब कुढँग कोप तजि ॥ ६७१ ॥

---

*इस दोहे में प्रसाद गुण नहीं है पर्य भी उत्तम नहीं है ॥ लालचन्द ने 'झर बर सौ हैं' पाठ रक्खा है इससे और भी अटिल हो जाता है । † बूढ़ इन्द्र गोप ॥

*हठ न हठीली करि सकै इहिँ पावसऋतु पाइ।
आन गाँठि छुटि जाय त्यौं मानगाँठि छुटि जाय ॥ ५७४ ॥

मान गाँठि छुटि जाय आपु ही बिना मनाये । रहि नहिँ सकत इकन्त कन्त बिनु हीय लगाये ॥ सिखवन सखियन की नहिँ सुनत हु सुकबि छबीली । पावसरितु मैं हटकि हटावत हठन हठीली ॥ ६७२ ॥

वे ई चिरजीवी अमर निधरक फिरौ कहाइ ।
छन बिछुरे जिनकी न इहिँ पावस आयु सिराइ ॥ ५७५ ॥

पावस आयु सिराइ नाहिँ चिरजीवी सोई । उन पै कोटि दधीचिहाड़ बारहु सब कोई ॥ उन हीँ पूजहु बरसगाँठदिन बात यहै थिर। लोमस हू सौँ अधिक सुकबि जीहैँ वे ई चिर ॥ ६७३ ॥

पुन: ।

पावस आयु सिराइ गई नहिँ जो बियोग लहि। तो तिहिँ बिष अरु बान आदि हू मारि सकत नहिँ॥ भूष प्यास हिम घाम सहत नहिँ मरिहैँ ते ई । सुकबि बिरह जो जिये अमर निहचै हैँ वे ई ॥ ६७४ ॥

---

†अब तज नाम उपाय को आयो सावन मास ।
खेलन रहिबो छेम सौँ केम‡ कुसुम की बास ॥ ५७६ ॥

केमकुसुम की बास लगे आपुहि चलि ऐहैँ । पिऊ पिऊ धुनि मोरन की करि जोर सुरैहैँ॥ लखत धराधर से धुरवा की धूमभरी × धज । सुकबि लागि हैँ गरे साँवरी चिन्ता अब तज ॥ ६७५ ॥

---

* यह दोहा अनवरचन्द्रिका में नहीं है । †बिरहिणी नायिका से सखी की उक्ति,—अब (नायक के बुलाने के) उपाय का नाम छोड़, सावन आया, कदम के फूल की सुगन्ध उड़ रही है अब (बिदेश में) कुशल से रहना खेल नहीं है ॥ ‡ केम = कदम्ब । × उपद्रव से भरी चाल ।

घनघेरो छुटगौ हरषि चली चहूँदिसि राह ।
कियो सुचैनो आइ जग सरद सूर नर नाह ॥ ५७७ ॥

सरद सूर नरनाह चन्दजस चहुँ दिस छायो । पुण्डरीकसुभछत्र कास को चँवर ढुरायो ॥ नदनारन को महाउपद्रव सबै निवेरो । सुकवि गगन भयो स्वच्छ सबै छुटि गो घनघेरो ॥ ६७६ ॥

---

*अरुन सरोरुह कर चरन दृग खंजन मुख चन्द ।
समै आय सुंदरि सरद काहि न करै अनन्द ॥ ५७८ ॥

काहि न करै अनन्द बतीसी कुन्द दिखावति । † भौंरन के झङ्कार राग भैरव जनुगावति ॥ निर्मलतोयतरङ्ग सुकवि सारी सी फरफरु । जोन्हजरी चादर तारनहारन विलसत अरु ॥ ६७७ ॥

ज्यौं ज्यौं बढ़ति विभावरी त्यौं त्यौं बढ़त अनन्त ।
ओक ओक सब लोकसुख कोकसोक हेमन्त ॥ ५७९ ॥

कोकसोक हेमन्त विरह सों जरैं अभागी । चन्द चाँदनी माहिं चोर ज्यौं चिन्ता लागी ॥ तरनि तरुन ज्यों होत कुमुद मुद खोवत त्योंत्यो । कुकविन त्यौं त्यौं दुःख सुकविजस जागे ज्योंज्यौं ॥ ६७८ ॥

मिलि विहरत विछुरत मरत दंपति अति रसलीन ।
नूतन विधि हेमन्त की जगत ‡जुराफा कीन ॥ ५८० ॥

जगत जुराफा कीन सबै × इकपच्छ बनायो । तियपिय सँग सँग रहत लोग

---

* यह दोहा हरिप्रकाश टीका वाली पुस्तक में नहीं है । † भैरवराग के सुरों का भी भ्रमर झङ्कार साही वर्णन है । जैसे देव 'भैरव की गुञ्ज भौंर गुञ्ज के समान हैं' ॥ ‡ यह प्रसिद्ध है कि जुराफा एक चिड़िया होती है उनमें स्त्री पुरुषों की सृष्टि ही ऐसी विलक्षण होती है कि स्त्री को दहिनीओर और पुरुष को बाईंओर पंख के निकाले केवल पङ्ग मारहता है। जब उड़ना हो तो वे इन पङ्गुओं को आपस में जोड़ अपनी एक एक पंखों के बल से उड़ते हैं ॥ × इकपच्छ = एक श्रृङ्गार रसकी जिका पक्ष है ॥

कौँ लगत सुहायो ॥ छनक वियोग हु याद परे अतिसै हिय सिहरत। सुकबि जोरि जोरी जन जन जुग जुग मिलि बिहरत ॥ ६७६ ॥

---

*कियौ सबै जग कामबस जीते जिते अजेइ।
कुसुमसर हिँ सर धनुष कर अगहन गहन न देइ ॥ ५८१ ॥

अगहन गहन न देइ काम कौँ बान सरासन। † मत्त किये सब गैंदा अरु गुलमैँहदीबासन ॥ बुलबुल की बोलन मन मोलन लेत डग हि डग। सुकबि ‡ समरस्त्रम बिना लखो बस कियो सबै जग ॥ ६८० ॥

आवत जात न जानिये तज तेजहिँ सियरान।
घरहिँ जमाई लौँ घट्यौ खरौ पूस दिनमान ॥ ५८२ ॥

खरो पूस दिनमान मान धौँ कहाँ गँवायो। नरनारिन सब आड़ छाँड़ि हिलिमिलि सुख पायो ॥ तीखी तीखी बान त्यागि ह्वै नरम निभावत। कब आयो कब गयो सुकबि कछु बूझि न आवत ॥ ६८१ ॥

+ तपनतेज तपतातपन तूलतुलाई माँह।
सिसिर सीत क्यौँ हुँ न घटै बिन लपटे तियनाँह ॥ ५८३ ॥

बिनलपटे तियनाह हटै नहिँ सीतकसाला। लहैँ दुसाला और मसाला मिटै न पाला ॥ सुकबि रसीली बिना थरथरी जात न तन तैँ। होत कछू नहिँ मखमल मालिस तूल तपन तैँ ॥ ६८२ ॥

---

* यह दोहा अनरचन्द्रिका में नहीं है ॥ अर्थ,—अगहन ने सब जगत को काम के वश किया सब अजेय को भी जीता अब काम को हाथ में धनुबाण नही (गहन) पकड़ने देता ॥ अर्थात् अगहन ने स्वयं काम के आयुध का काम किया ॥ † अगहन मे गेंदा गुलमेंहदी फूलता है, और बुलबुल बोलतो है ॥ ‡ समरस्त्रम = कामदेव का परिश्रम अथवा युद्ध का परिश्रम ॥ × सूर्य के तेज से, आग के तापने से औ रूई की रजाई में ॥

लगति सुभग सीतल किरन निसि दिन सुख अवगाहि।
माह ससी भ्रम सूर त्यौं रहति चकोरी चाहि ॥५८४॥

रहति चकोरी चाहि सूर कौं ससधर मानी। पुनि लखि जनु निकलंक मनहिं मन जात सकानी ॥ कबहुँक चाहति चपल चंचु चलिबे नभ मग सी। कबहुँ सुकबि पुनि फिरति भ्रमति अति लगति सुभग सी ॥ ६८३ ॥

रहि न सकै सब जगत मैं सिसिर सीत के त्रास।
गरमी भाजि *गढ़वै भई तियकुच अचल मवास ॥५८५॥

तियकुच अचल मवास पाइ गरमी जनु छाई। जाहि लखत ही पीय दीठ दोउ गरमाई ॥ † नाह बिना बिरहागिन ह्वै अँग अङ्ग रहत गहि। सरस सुकबि सँगपेर सकै अब यहै ओट रहि ॥ ६८४ ॥

रनितभृङ्गघण्टावली झरत दानमधुनीर।
मन्द मन्द आवतु चल्यौ कुञ्जर कुञ्ज समीर ॥५८६॥

कुञ्जर कुञ्जसमीर मन्दगति झूमत आवत। द्रुमवल्लीन कँपाय पतँगकुल सोर करावत ॥ कुसुम परागन रँग्यो लसत अति सोभा सारनि। सुकबि सहत सो मदन महावत अंकुस मारनि ॥ ६८५ ॥

•रुक्यो साँकरे कुञ्जमग करतु झाँझ झुकरात।
मन्द मन्द मारुत तुरँग खूँदन आवत जात ॥ ५८७ ॥

खूँदन आवत जात भृङ्ग घुघुरू झनकारत। पातनधुनि के ब्याज मनहुँ मधुरैं हिनकारत ॥ फनसरन्द गिराइ अड़त सो अतिनिसाँक रे। सुकबि परागनगरद उड़ावत रुक्यो साँकरे ॥ ६८६ ॥

---

* गढ़वै – गढ़में रहने वाली। मवास – स्थान। † पतिवियोग हो तो यही अग्नि होकर सर्वाङ्ग में फैलजाती है और सरस नायक का साथ हो तो फिर इतनी ही दूर भागजाती है॥

• यह दोहा हरिप्रकाश के ग्रन्थ में नहीं है।

चुवत सेद मकरन्दकन तरु तरु तर बिरमाय ।
आवत दच्छिन देस तैं थक्यो बटोही बाय ॥ ५८८ ॥

थक्यो बटोही बाय गाँठसौरभ सिर धारे। कुसुमपरागनगरदभरयो अलि कच लटकारे । सिथिल होइ अँग यासु सुकबि सरनीर छुअत से । कदली-दलन डुलाइ सुखावत सेद चुअत से ॥ ६८७ ॥

रह्यो रुक्यो क्यौं हूँ सुचलि आधिक राति पधारि ।
हरतु ताप सब द्यौस को उर लगि यार बयारि ॥५८९॥

उर लगि यार बयारि करत हीतल सीतल अति । कै रोमाञ्चित देह सरस पुनि उपजावत रति ॥ नीवी झटका देत सु आँचर ओट जनु गह्यो । सुकबि सुगन्धित अङ्ग अङ्ग सब रङ्ग दै रह्यो ॥ ६८८ ॥

---

*लपटी पुहुपपरागपट सनी सेदमकरन्द ।
आवति नारि नवोढ़ लौं सुखद वायु गति मन्द ॥ ५९० ॥

सुखद वायु गति मन्द सु कोमल फूलन तोरत। लता बीच ह्वै चलत कबहुँ झुकि अङ्ग मरोरत ॥ अलि किङ्किनि झनकारि चाल जनु करत लटपटी । झारत कबहुँ पराग सुकबि जनु पटतट लपटी ॥ ६८९ ॥

चटक न छाँड़त घटत हू सज्जननेह गँभीर ।
फीको परै न बर† घटै रँग्यो ‡चोलरँग चीर ॥ ५९१ ॥

रँग्यो चोलरँग चीर फटै तऊ परै न फीको। परैं विपत हू होत सुजनहिय नित नित नीको॥ कनक तपे हूँ अधिक अधिक सोभा जिमि माड़त । सुकबि सुजानन प्रीति दुःख हू चटक न छाँड़त ॥ ६९० ॥

---

* लल्लूलाल इसी दोहे के अन्त में ऋतु वर्णन नामक तृतीय प्रकरण की समाप्ति करते हैं ॥

† वल "लोहचूर्ण कृतरङ्गेन रञ्जित वस्त्रम्" संस्कृत टीका ॥ "फीको पर न बरु फटै" ऐसा पाठ होता तो और अच्छा होता ॥ ‡ मञ्जीठ ।

*न ये बिसासियै अतिनए दुरजन दुसहसुभाव ।
आँटे पर प्राननि हरत काँटे लौं लगि पाव ॥ ५९२ ॥

काँटे लौं लगि पाय प्रान संसय मैं नाखैं । दीखत सूधे तऊ कूरता अति-से राखैं ॥ आपु जाँहि तो जाहिँ रहत नहिँ बिना दुख दिये । सुकबि कहै काँटे लौं हैं खल न ये बिससिये ॥ ६६१ ॥

जेती संपति कृपन के तेती तू मत जोर ।
बढ़त जात ज्यौं ज्यौं उरज त्यौं त्यौं होत कठोर ॥ ५९३ ॥

त्यौं त्यौं होत कठोर† चीन कंचुकिहू फारत । आँचर नोक गड़ाइ हार की गुहनि बिगारत ॥ सुकबि सहायक संग करेरी ठानत तेती । अन्त मलिन ह्वै ढरकि जाति तजि सोभा जेती ॥ ६६२ ॥

नीच हिये हुलसे रहैं गहैं गेंद के पोत ।
ज्यौं ज्यौं माथे मारिये त्यौं त्यौं ऊँचे होत ॥ ५९४ ॥

त्यौं त्यौं ऊँचे होत नम्रता नेकु न धारैं । पुनि पुनि पटकैं जाँय तऊ गैरत न गुजारैं ॥ चोट चूकतै करत गिरत पुनि गरदा कीचहिँ । सुकबि समुझि के गेंद और तिमि गहिये नीच हिँ ॥ ६६३ ॥

कोरि जतन कोऊ करै परै न प्रकृतिहिँ बीच ।
नलबल जल ऊँचे चढ़ै अन्त नीच को नीच ॥ ५९५ ॥

अन्त नीच को नीच होइ नीचे ही ढरकत । ऊँचो सुभ थल लहे तऊ उत कहू न सरकत ॥ कल बल कीने सुकबि चाल तिहिँ फिरै न तनको । यातैं खल जल सङ्ग काज नहिँ कोटि जतन को ॥ ६६४ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है। † चीन का कपड़ा = चीनियाँ पोत (बनारसी) ॥ चीन शब्द की प्रशंसा कालिदास ने भी की है (शाकुन्तल) "चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य" ॥ कपड़ों के लिये चीन अति प्रसिद्ध है जैसे गान "पगिया मोरी रे मसकि गई चीन" ॥

गढ़रचना बरुनी अलक चितवन भौंह कमान।
*आधु बँकाई ही बढ़ै तरुनि तुरंगम तान ॥ ५९६ ॥

तरुनि तुरङ्गम तान पैंतरा असि सुठि लागै। कड़ाबीन की मार पाग पुनि जिय अनुरागै ॥ प्रनय कलह के बोल परन अरु †गति आनँदमढ़। बाँकी बाँकी सुकबि भली लागत अति रसगढ़ ॥ ६९५ ॥

तन्त्री नाद कबित्तरस सरसराग रतिरंग।
अनबूड़े बूड़े तरे जे बूड़े सबअंग ॥ ५९७ ॥

जे बूड़े सबअङ्ग अहैं तेई अनबूड़े। इन कौं जानत नाहिँ सोई हैं जग के कूड़े ॥ बिधि ऐसे जनि देहु मित्र दुख के सम्पादक। प्रेमी कबि नहिँ रुचैं सुकबि जेहिँ तन्त्री नादक ॥ ६९६ ॥

पुनः

जे बूड़े सब अङ्ग धारि हिय हरि की प्रीती। कीने भाव पवित्र गेह आरज की रीती ॥ सुकबि धन्य ते लोग धन्य धनि तिन के मन्त्री। जिन के निस दिन रहत राग रस कबिता तन्त्री ॥ ६९७ ॥

पुनः

जे बूड़े सब अङ्ग धारि रति नन्दनँदनपद। पुलकि पसीजत सुकबि होत रोमाञ्चित गद्गद ॥ सुनत तासु की कथा ताहि पै वारत सरबस। ताही रङ्ग रमावत तन्त्रीनाद कबितरस ॥ ६९८ ॥

संपति केस सुदेस नर नवनि दुहुँनि इक बानि।
बिभव ‡सतर कुच नीच नर नरम बिभव की हानि ॥५९८॥

+नरम बिभव की हानि भये कुच नीच बखाने। स्मृति बिडारि ना-

---

* प्रतिष्ठा = आदर। † नाच की। ‡ बाँके कठोर। + इन दो दो का एक एक सा सुभाव हैं! नास्तिक स्मृति को अनादृत कर श्रुति = वेद का भी लङ्घन करता है और दृष्टि औरों की स्मरण शक्ति को हरती है तथा कान का (विशालता से) लङ्घन करना चाहती है। कानन = कानों पर वा बन में॥

स्तिक अरु दृग श्रुति लंघनठाने ॥ कानन राहि लूटत लुण्ठक अरु कुण्डल जनतति । छनक अहे जोवन रु सुकवि सपने की सम्पति ॥ ६९९ ॥

कैसे छोटे नरनि तैं सरत वडनि के काम ।
मढ्यो दमामा* जात क्यौं लै चूहे के चाम ॥५९९॥

लै चूहे के चाम दमामा मढ्यो न जै है। खरहा जोते किहूँ खेत हर नाहिँ वहै है ॥ †चूरा चिखुरी के दाँतनि वनिहै नहिँ तैसे। सुकवि वड़े के काम सरैं छोटे तें कैसे ॥ ७०० ॥

---

‡ओछे वड़े न ह्वै सकैं लगि सतरौहैं वैन ।
दीरघ होंहि न नैक हू फारि निहारे नैन ॥ ६०० ॥

फारि निहारे नैन और भयदायक ह्वै हैं । घोंचे तें नहिं केस वढ़ैं औरो टुटि जै हैं ॥ खरी लगाये गोरे अँग ह्वै हैं कह छोछे । सुकवि चलाकी जोर वड़े ह्वै हैं नहिं ओछे ॥ ७०१ ॥

+प्यासे दुपहर जेठ के थके सवै जल सोधि ।
मरुधर पाय मतीर हू मारू कहत पयोधि ॥ ६०१ ॥

कहत पयोधि मतीर हु कौं जासौं सुख पैयत । होतल सीतल होत विषम ग्रीषमदुख जैयत ॥ पायो सुकवि अहार नाहिं तो परत उपासे । धनि मतीर के नीर जियाये जिन इन प्यासे ॥ ७०२ ॥

---

* दमामा — ऊँट हाथी पर का नगारा। (लालचन्द्रिका) । † स्त्रियों के हाथ में पहरने का चूड़ा ॥ ‡ यह दोहा हरिप्रकाश टीका में नहीं है । + जेठ के दुपहर के प्यासे (पथिक) सर्वत्र जल खोज कर (मरुधर) मरुस्थल में (मतीर) तरबूज पाके भी [मारू] मारवाड़ियों से उसे [पयोधि] क्षीरसमुद्र कहते हैं । इस दोहे में प्रसादगुण नहीं है । यह दोहा हरिप्रकाश में नहीं है ॥

*बिषम बृषादित्त की तृषा जिये मतीरनि सोधि ।
अमित अपार अगाधजल मारौ मूँड़ पयोधि ॥ ६०२ ॥

मारो मूँड़ पयोधि काज काके वह आवत । तुङ्गतरङ्गनभङ्ग करोरन नाव डुबावत ॥ खारो जल भरि मगर मच्छ भय देत जितैतित । सुकबि पियासे फिरत तीर पैं बिषमबृषादित ॥ ७०३ ॥

अति अगाधं अति औथरौ† नदी कूप सर बाय ।
सो ताकौं सागर जहाँ जाकी प्यास बुझाय ॥ ६०३ ॥

जाकी प्यास बुझाय जहाँ सो ई तिहिँ सागर । जियै जासु जल पीइ मतीरा सोइ गुन आगर ॥ झरना ही को नीर भयो जो पुर की सम्पति । सुकबि जलधि बिनु काम तरङ्गित अति अगाध अति ॥ ७०४ ॥

---

‡मीत न नीति गलीति ह्वै जो धरिये धन जोरि ।
खाये खरचे जो जुरे तौ जोरिये करोरि ॥ ६०४ ॥

तौ जोरिये करोरि खाइ खरचे जो बाँचै । धन्य धन्य सो धरम करम करि जो धन साँचै ॥ धिक तिन कौं जो भूख मरैं फाटे पट सीतन । सुकबि सपथ यौं बित्त जोरियो कबहूँ मीत न ॥ ७०५ ॥

पुनः ।

ये करोरि धिक्कार ताहि जो धनधरि गाड़ै । फूटी हाँड़ि हिँ राँधि आपु नित पीयत माँड़ै ॥ +बालन भूखन हनै फटे पट राखै ¶तीतन । सुकबि देव करि दूरि नाहिँ समुझावै मीतन ॥ ७०६ ॥

---

* यह दोहा शृङ्गारसप्तशती और देवकीनन्दन टीका में नहीं है । † थोड़े जल का ।

‡ यह दोहा देवकीनन्दन टीका में नहीं है । गलीत ह्वै = अपनी दुर्दशा करके = लज्जित होके ॥

+ लड़कों को भूखों मारे ॥ ¶ स्त्री के तन पर ॥

दुलह दुराज प्रजान कौं क्यौं न करै अति दंद।
अधिक अँधेरो जग करत मिलि मावस रविचंद ॥६०५॥

मिलि मावस रविचन्द अँधेरो अधिक बढ़ावैं। घृत अरु मधु दोउ मिले गुनन तजि गरल कहावैं॥ द्वै पण्डित के जुरे सुकवि झगरो अति लहलह। द्वै* अभाव तें भाव होत त्यौं नृप द्वै दुःसह॥ ७०७॥

घर घर डोलत दीन ह्वै जन जन जाँचत जाइ।
दिये लोभ चसमा चखनि लघु पुनि बड़ो लखाइ ॥६०६॥

लघु पुनि बड़ो लखाइ मलिन निर्मल अति दीसै। मानि सबै ही बड़ो नवावत सो ऊ सीसै॥ झुक्यो चलै यह आसा की लै सुभग छरी कर। सुकवि हहा विनती की लाल चुवावत घर घर॥ ७०८॥

बसै बुराई जासु तन ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये खोटे ग्रह जप दान ॥ ६०७॥

खोटे ग्रह जप दान दीजिये मानिक मोती। तोरतरङ्गित† तटिनी लहि वहु करिय मनोती॥ सुकवि हिं कोरी वाह वाह करि छाँड़हु भाई। हेम‡ हीर हय कुकवि हिं जेहिं तन बसै बुराई॥ ७०९॥

---

* अभावाभाव प्रतियोगी स्वरूप होता है जैसे घटाभावाभाव घटस्वरूप॥ † तोड़ = वेग॥

‡ इन दिनों तो यह बात बहुत कम हो गई है पर थोड़े ही दिन पहले भाट लोग तीन चरण पाव चरण के कवित्त पढ़ते ज़िमींदारों के यहाँ जाते थे और जो उनकी बिदाई न करै उसका कपड़े का पुतला बना एक लाठी में उसकी टांग बांध उस लट्ठ को लिये फिरते थे और कहते फिरते थे कि यह पुतला अमुक ज़िमींदार है। बस इसी डर से उन कुकवियों को भी हाथी घोड़े ज़िमींदारी मिलती थी। अब भी कहीं कहीं देहात में ऐसी प्रथा देखी जाती है॥

*कहै इहै श्रुति सुम्रति सो यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसँक ही राजा पातक रोग ॥ ६०८ ॥

राजा पातक रोग अचानक आइ दबावत। दया नेक नहिँ करत रूप अनुरूप दिखावत॥ अति जतनन सौँ हटत दीन करि देत अङ्ग दुति। सुकबि पुरानन इहै कह्यो अरु इहै कहै श्रुति ॥ ७१० ॥

इक भीँजे चहले परे बूड़े बहे हजार।
किते न औगुन जग करत नै बै चढ़ती बार ॥ ६०९ ॥

नै बै चढ़ती बार महा अन्धेर मचावत। अधिक जोर कै सीम तोर मरजाद बहावत॥ चक्कर दै परकाज बिगारत दया न रक्खिक। सुकबि लगे इक पार सु गोता खाइ रहे इक ॥ ७११ ॥

गुनी गुनी सब कोउ कहत निगुनी गुनी न होत।
सुन्यौ कहूँ तरु अर्क तैँ अर्कसमान उदोत ॥ ६१० ॥

अर्कसमान उदोत होत को तरु तैँ देख्यो। †बन्धुजीव पुनि कौन बन्धु को जीवन पेख्यो॥ अर्जुन तरु हू कहो करी है बानबृष्टि कब। सुकबि नाम तैँ होत कहा अनगुनी गुनी सब ॥ ७१२ ॥

सङ्गति सुमति न पावहीँ परे कुमति के धंध।
राखो मेलि कपूर मैँ हीँग न होइ सुगंध ॥ ६११ ॥

हीँग न होइ सुगंध मेलि राखहु बहु केसर। मृगमद हू को पुट दीजै पुनि नीचे ऊपर॥ सौ सौ धूपन धूपित हू कीजै किन नितप्रति। सुकबि सहज नहिँ गन्ध जाति लहि सुन्दर सङ्गति ॥ ७१३ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि की टीका में नहीं है ॥ † बन्धुजीव = गुलदुपहरिया ॥ जैसे "अधरोऽयमधीराच्या बन्धुजीवप्रभाहरः। अन्यजीवप्रभां हन्त हरतीति किमद्भुतम् ॥"

सबै हँसत करताल दै नागर ता के नाँव ।
गयो गरब गुन को सबै बसे गँवारे गाँव ॥ ६१२ ॥

बसे गँवारे गाँव गुनन गौरव को पायो । जो कछु जस सँचयो सो ऊ तहाँ आइ गँवायो ॥ झूठो लागन लग्यो भले काजन हूँ कलमस । सुकवि गुनन गति सुनत गँवारे गहकि सबै हँस ॥ ७१४ ॥

---

*सोहत सङ्ग समान सों यहै कहैं सब लोग ।
पान पीक ओठनि बनै नैननि काजरजोग ॥ ६१३ ॥

नैननि काजरजोग तहाँ पीक न कछु राजे । ओठन पै त्यों काजररेखा नहिं छवि छाजे ॥ सुकवि सोई तुम करी हँसी आवत है जोहत । दर्पन लै के लखो तुमहिं तुमरो मुख सोहत ॥ ७१५ ॥

---

† जो सिर धरि महिमा महा लहियत राजा राउ ।
प्रगटत जड़ता आपनी मुकुट सु पहिरत पाउ ॥ ६१४ ॥

मुकुट सु पहिरत पाउ मुकुट को का बिगरै है । सीस धरे हू पनही को पद कहा चढ़े है ॥ अपनी ही पुनि महा मूढ़ता प्रगटै है सो । जथाजोग ब्योहार सुकवि नाहिन कै है जो ॥ ७१६ ॥

---

‡अरे परेखो को करै तुही बिलोकि बिचार ।
किहिं नर किहिं सर राखियो खरै बढ़े पर पार ॥६१५॥

पार न पायो मद को घानासुर जग जानै । निज इष्ट हि कों छोड़ि विपति

---

* धीरा खण्डिता । † यह दोहा हरिप्रकाश के ग्रन्थ में नहीं है ।

‡ यह दोहा अनवरचन्द्रिका और [illegible] में नहीं है । हरिप्रकाश में "किहिं नर" के ठिकाने "किहिं सर" "राखियो" के ठिकाने "राखिये" और "पर पार" के ठिकाने "परिवार" पाठ है । कवि की उक्ति मन से, पूर्वार्ध स्पष्ट है । उत्तरार्ध का तात्पर्य है कि किस मनुष्य को किस जलाशय

बुलवाई वानै ॥ भस्मासुर आदिक की किती कहानी देखो। सुकबि बिलोकि बिचार करै को अरे परेखो ॥ ७१७ ॥

---

*बुरो बुराई जो तजै तो मन खरो सकात।
ज्यौं निकलंक मयंक लखि गनै लोग उतपात ॥ ६१६ ॥

गनैं लोग उतपात उदित बुध कौं जो देखैं । बानि अस्त की तजी सुक्र जो पुनि पुनि लेखैं॥ दिस दिस जोहैं कनकवरन दिन घनअरुनाई । सुकबि होत असगुन जो छाँड़ै बुरो बुराई ॥ ७१८ ॥

पुनः ।

गनैं लोग उतपात होत त्यौं हिय सक मेरे। मृगमदबैंदा भाल आज नहिं सोहत तेरे ॥ कुटिल कटाछ हु देखि परत नहिँ अधर ललाई। सुकबि होइहै कहा तजत है बुरो बुराई ॥ ७१९ ॥

---

†भाँवरि अनभाँवरि भरो करो कोरि बकवाद ।
अपनी अपनी भाँति कौ छुटै न सहज सवाद ॥ ६१७ ॥

छुटै न सहज सवाद आजु परतछ ही देख्यो। साखी हैं सब सखी नाहिं कछु संसै लेख्यो ॥ सुकबि मोहि तो सुमिरि सुमिरि आवत तन तावरि । निघरघटो यह लखो लेत इन दृग दोउ भाँवरि ॥ ७२० ॥

---

‡जाके एकौ एक हू जग व्यौसाय न कोइ ।
सो निदाघ फूलै फलै आक डहडहो होय ॥ ६१८ ॥

ने अति बढ़ने पर [पार] पाढ़ अर्थात् मर्य्यादा रक्खी है ! ! राखियो = राख्यो ॥ (प्रसाद गुण नहीं है भाषाच्युत दोष है । आनन्दजनक न होने से इसके काव्य होने में भी संदेह है)

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है । † यह दोहा कृष्णदत्त की टीका में नहीं है । "भाँवरि अनभाँवरि" = हेराफेरी । ‡ जगत में कोई एक पुरुष भी जिनमें से एक का भी व्यवसाय नहीं करता सो आक (शेषस्पष्ट) ॥

आक डहडहो होइ हाय याकों को चाहै। सौरभ को नहिं लेस नैन लागैं अति दाहै ॥ पात हु में नहिं सुकवि अहै कोमलता नेकौ । एक हु के हित नाहिं अङ्ग हैं जाके एकौ ॥ ७२१ ॥

को कहि सकै बड़ेनि सौं लखैं बड़ी* यौं भूल ।
दीने दई गुलाब कों इन डारनि वे फूल ॥ ६१९ ॥

इन डारनि वे फूल देइ अलिवृन्द लुभायो । कोकिल कारी करी कुहूकानि जग तरसायो ॥ अँग अँग कोमल ठानि तियहिय कियो उपल सो । सुकवि पण्डित हिं अधन कियो विधि भाषि सकै को ॥ २२ ॥

सीतलता रु सुगंध की घटै न महिमामूर ।
†पीनस वारे जो तज्यो सोरा जानि कपूर ॥ ६२० ॥

सोरा जानि कपूर तजै सो मूढ़ कहावै । गुन पहिचानै जोई सोई पुनि चतुरन भावै ॥ नरपति हूँ चन्दन सँग जाकों धारैं हीतल । सुकवि ससि सुर धरैं ताहि लखि सुरभि सुसीतल ॥ ७२३ ॥

चित दै चित्त चकोर ज्यों तीजें भजै न भूख ।
चिनगी चुगै अँगार की पियै कि चन्द मयूख ॥ ६२१ ॥

चन्द मयूख हु ज्वाला सी ओहिं हाय दही है। तुव वियोग की घोर अगिन कों घूँटि रही है। तुअसंयोग पियूष फेरि धौं कब पी है नित। तीजी होइ न दसा सुकवि पिय इत दीजे चित ॥ ७२४ ॥

पुनः ।

पियै कि चन्दमयूख चुगै कै आगि प्रीति सौं। दोउन मैं ये भाव रहत है

---

*बड़ी = भीता तौ घोर बड़ा होता । † पीनस रोग में नासा की गन्धग्राहिणीशक्ति जाती रहती है ।

एक रीति सोँ ॥ ऐसे ही सुख दुःख जासु कोँ होत एक हित । सो ई धनि है सुकबि ताहि को है निर्मल चित ॥ ७२५ ॥

चले जाहु ह्याँ को करै हाथिन को व्यौपार ।
नहिँ जानत इहिँ पुर बसैं धोबी और कुम्हार ॥६२२॥

धोबी और कुम्हार घरै घर गदहा राखैँ । हाथी घोरन बात कौन ह्याँ का सोँ भाषैँ ॥ लखि तुम कोँ तारी दै दै सब हँसि हैँ जुरि ह्वाँ । सुकबि काज नहिँ रहिवे को अब चले जाहु ह्याँ ॥ ७२६ ॥

---

*नर की अरु नलनीर की एकै गति करि जोइ ।
जेतो नीचे ह्वै चलै तेतो ऊँचो होइ ॥ ६२३ ॥

तेतो ऊँचो होइ जिती गति नीची आनै । तेतो ही बल बढ़ै जितो संजम निज ठानै ॥ जेतो थिर ह्वै रहै तितो ही होत सुच्छ वर । सुकबि एक से जानि नीर नल कोँ अरु त्योँ नर ॥ ७२७ ॥

---

†बढ़त बढ़त सम्पतिसलिल मनसरोज बढ़िजाइ ।
घटत घटत सु न पुनि घटै बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ ६२४ ॥

बरु समूल कुम्हिलाइ पात सूखे ह्वै टूटत । केसर सिथिलित होइ सबै झुकि झुकि कैँ छूटत ॥ कर्निकार बदरङ्ग होत सब कान्ति जात कढ़ । सुकबि घटत तऊ नाहिँ गयो जो नीर सङ्ग बढ़ ॥७२८॥

---

‡समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोइ ।
मन की रुचि जेती जितै तितै तिती रुचि+ होइ ॥६२५॥

तितै तिती रुचि होइ मरम रसिकै पहिचानै । बिखरे सिमटे कसे गुहे

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है। † यह दोहा देवकीनन्दन टीका में नहीं है।
‡ यह दोहा हरिप्रकाश टीका में और देवकीनन्दन टीका में नहीं है। + कान्ति ।

कच सब सुठि मानै ॥ बिनु भूषन त्यौं सीसफूल दीने हु जियरमै। सुकवि आँखि अनुराग भये सब सुभग सब समै ॥ ७२९ ॥

---

*गिरि तैं ऊचे रसिकमन बूड़े जहाँ हजार।
वहै सदा पसु नरनि कौं प्रेमपयोधि पगार ॥ ६२६ ॥

प्रेमपयोधि पगार हु सौं घटि उन कौं लागै। विरह मरैं नहिं नहिं संजोग हिय अति अनुरागै ॥ सङ्गम हीं सुख गिनत अहैं ऐसे जिय कूँचे। सो समुझै यह सुकवि सु मन जेहिं गिरि तैं ऊँचे ॥ ७३० ॥

सङ्गतिदोष लगै सबनि कहे ते साँचे बैन।
कुटिलबंकभ्रूसंग भे कुटिलबंकगति नैन ॥ ६२७ ॥

कुटिलबङ्कगति नैन भये हैं भ्रुकुटिसङ्ग मैं। तिन के सँग पुनि अलक छये कुटिलतारङ्ग मैं ॥ इन के ढिग रहि बैन गहो पुनि टेढ़ो रङ्गत। टेढ़ी ग्रीवा भई सुकवि परि टेढ़ी सङ्गत ॥ ७३१ ॥

मोरचन्द्रिका स्यामसिर चढ़ि कत करति गुमान।
†लखबी पायनि पर लुठति सुनियत राधामान ॥ ६२८ ॥

सुनियत राधामान भये तू विलुठति चरनन। रज सौं धूसर होत सकै करि को कवि बरनन ॥ बिखरे जात पखुरी गरूर जनि करि अतन्द्रिका। सुकवि दसा सब है है हरिसिर मोरचन्द्रिका ॥ ७३२ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है। † लखबो व्रजभाषा नहीं है। (दोहा ३३१ की टिप्पणी देखो) ऐसा प्रयोग और कवियों ने भी किया है जैसे बोधा। ॥ सवैया ॥ खरी सासु घरी ना छमा करिहै निसिबासर त्रासन ही मरबो। सदा भौंहें चढ़ाये रहै ननदी यों जिठानी की तीखी सुनी जरबो ॥ कवि बोधा न संग तिहारो चहैं यह नाहक नेह फंदा परबो। बहो पांवें तिहारो लगैं ये ऐसा लगि छांड कहूं तो कहा करबो ॥

*गोधन तू हरष्यो हिये घरि इक लेहु पुजाइ।
समुझ परैगी सीस पर परत पसुन के पाइ ॥ ६२९ ॥

परत पसुन के पाइ केस से घास उपारत। गोधन हूँ के खोदि सुरँग बहु धातु निकारत ॥ बृषभहु दैहैं टक्कर तोहि चोखे कै सींगन। सुकबि निकरि है तबै सबै यह पूजा गोधन ॥ ७३३ ॥

---

†नहिँ पराग नहिँ मधुर मधु नहिँ बिकास इहिँ काल।
अली कली ही तैँ बँध्यो आगे कौन हवाल ॥ ६३० ॥

आगे कौन हवाल जबै अँग अँग मधुरैहै। खिलिहै सुन्दर रूप लखत नैनन बस कैहै ॥ निज सौरभ कोँ व्यापित कैहै भूमि गगन महिँ। केसर दुति नहिँ अबै सुकबि मधु नहिँ पराग नहिँ ॥ ७३४ ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम गई सो बीन बहार।
अब अलि रही गुलाब मैं अपत कँटीली डार ॥ ६३१ ॥

अपत कँटीली डार रही अब महाभयङ्कर। सूखी कहुँ कहुँ टूटि लटकि हू गई अधिकतर ॥ सुकबि दसा यह देखि हाय दुख पावत छिन छिन। हवा भये वे दिवस छटा तुम देखी जिन दिन ॥ ७३५ ॥

इहीँ आस अटक्यौ रहै अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैँ फेरि बसन्त ऋतु इन डारनि वे फूल ॥ ६३२ ॥

इन डारनि वे फूल होइहैँ फेर कोऊ दिन। सीतल मन्द सुगन्ध बयारि हू चलिहै दच्छिन ॥ त्यौँ मकरन्द पराग हु झरि है पूरि सुबासा। सुकबि दिलासा भरयो अली अटक्यो एहिँ आसा ॥ ७३६ ॥

---

* गोधन = गोवर्द्धन ॥ तू के साथ लेहु नहीं हो सक्ता लेहु का कर्त्ता तुम होता है (यह दोष है)
† ऐसी प्रसिद्धि है कि विहारी का यही दोहा प्रथम जयसाह के आगे पहुँचाया ॥

*सरस कुसुम मँड़रात अलि न झुकि झपट लपटात।
दरसत अति सुकुमार तन परसत मन न पत्यात॥ ६३३॥

परसत मन न पत्यात देत परदच्छिन चहुँदिस। मधुरे वचन सुनाइ आइ ढिग करत किते मिस॥ तजि दूर हु नहिँ जात मोहि गयो मधुर गन्ध पर। सुकवि सुभगता देखि भूलि गयो मधुकर वनसर॥ ७३७॥

---

†पट पाँखैं भख काँकरे सफर परेई सँग।
सुखी परेवा जगत मैं एकै तु ही विहङ्ग॥ ६३४॥

तुही विहँग है सुखी कछू परवाह न राखत। गिरि वन कुञ्जन रमत विमल झरनाजल चाखत॥ साँचे तेरे पुन्य को ऊ कछु हू किन भाखै। सुकवि क्यों न तू नचै सदा ओढ़े पट पाँखै॥ ७३८॥

पुनः

एकै तु ही विहङ्ग तिया सँग दिस दिस डोलत। रमत खात तियसङ्ग बैठि मधुरे सुर बोलत॥ सब जग तेरो ई राज तोहि नाही कछु खटपट। सुकवि चोंच चपलाइ बैठि उड़ि तिय सँग चटपट॥ ७३९॥

दिन दस आदर पाइ कै करि लै आप बखान।
जौं लगि काग सराधपछ तौं लगि तो समान॥ ६३५॥

तौं लगि तो सनमान अहे पितरनपछ जौं लौं। फूल्यो फूल्यो फैलि कागबलि पावत तौ लौं॥ कानी आँखिन ताकि करत पुनि पाँखन फरफर। सुकवि यहाँ मन राखि अहे तुअ दिन दस आदर॥ ७४०॥

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के पद्य में नहीं है। संस्कृत टीका में "सिरिस कुसुम पाठ है"।

† यह दोहा अमरचन्द्रिका में नहीं है। परेवा = पारावत॥

स्वारथ सुकृत न स्रम बृथा देखि बिहङ्ग बिचारि ।
बाज पराये पानि परि तू पंछी हि न मारि ॥ ६३६ ॥

तू पंछी हि न मारि पाप को फल तू पैहै । क्रूर कुटिल कहवाइ कोटि गारी पुनि खैहै ॥ दूध दही किन खाइ नाम रटि करि परमारथ । सुकवि हाय हिंसा सों ह्वैहै का तुम्र स्वारथ ॥ ७४१ ॥

मरतु प्यास पिँजरा पर्यौ सुआ समै के फेर ।
आदर दै दै बोलियत बायस बलि की बेर ॥ ६३७ ॥

बायस बलि की बेर बोलियतु आदर दै दै । दूध दही दीजतु है पुनि बहु जतनन कै कै ॥ सुकबि कितिक हैरान होइयतु ग्रास लिये कर । लखियतु नहिँ यह हाय नीर बिनु सुआ रह्यो मर ॥ ७४२ ॥

को छूट्यौ इहिं जाल परि मति कुरङ्ग अकुलाय ।
ज्यौं ज्यौं सुराझि भज्यो चहै त्यौं त्यौं उरझत जाय ॥६३८॥

त्यौं त्यौं उरझत जाय *भजन क्यौं जतन करत है । भजन करत क्यौं नाहिँ साँस क्यौं बृथा भरत है ॥ सो ई परत इहिं माहिँ भाग है जा को फूट्यो । सुकबि आस अब छाँड़ि जाल इहिँ परि को छूट्यो ॥ ७४३ ॥

नहिँ पावस ऋतुराज यह तज तरवर मति भूल ।
अपत भये बिन पायहै क्यौं नव दल फल फूल ॥ ६३९ ॥

दल फल फूल जु चहै सु कोमल सुभग अन्यारे । तो तजि सर्वस एक बेर तू बिना बिचारे ॥ राखि अपनो दृढ़ मूल उखरि मत कछु झपेट लहि । सुकबि तबै पैहै सब सम्पति और भाँति नहिँ ॥ ७४४ ॥

---

* भजन = भागने का ।

* अजौं तरयो नाहीं रह्यो स्रुति सेवत इक अङ्ग।
नाकवास बेसर लह्यो बसि मुक्तनि के संग ॥ ६४० ॥

संग सुभग जो होइ तासु फल कहत न आवै। केवल पोथी बेद काज नहिं कछू बनावै ॥ जो सज्जनसँग रह्यो तासु सुभ कहा भयो ना। बकबकवारो सुकवि कोऊ पुनि अजौं तरयो ना ॥ ७४५ ॥

पुनः

मुक्तन के सँग बेसर कैसो सुभ फल पायो। अधरामृत कौं पीइ चिबुक-चुम्बन सरसायो ॥ साँससमीरन सुरभित ह्वै सुख कौन लह्यो ना। सुकवि भूल ही रह्यो तरयोना अजौं तरयो ना ॥ ७४६ ॥

---

† जनम जलधि पानिप अमल भो जग आवु अपार।
रहै गुनी ह्वै गर पर्‌यो भलो न मुकताहार ॥ ६४१ ॥

भलो न मुक्ताहार गुनी ह्वै गरे परत है। झूलत झटका खाइ तऊ पुनि नाहिं टरत है ॥ सरकाय हू हाय परत पछि तिहिं तजत न। चहिय नाहिं परवाह सुकवि जो भयो गुनीजन ॥ ७४७ ॥

---

‡ गहै न एकौ गुन गरब हँसै सकल संसार।
कुचउचपदलालच रहै गरे परे हू हार ॥ ६४२ ॥

गरे परेहू हार चहत कुच ऊपर ठहरन। लरकि जात पुनि लगत झपटि आँचर की फहरन ॥ इत उत फिसलो परत बीच अन्तर नहिं नेको। सुकवि भूल ही रह्यो हार गति गहै न एको ॥ ७४८ ॥

मूँड़ चढ़ाये नउ रहै परे पीठि कचभार।
रह्यो गरे परि राखिये तऊ हिये पर हार ॥ ६४३ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रकाश के ग्रन्थ में नहीं है। † यह दोहा हरिप्रकाश में नहीं है।
‡ यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है।

तऊ हिये पर हार रहै गुन की गरुआई। बिन गुन कारे कुटिल केस पाछे लहराई ॥ गरे परे हू हार सुकबि अति आदर पाये । ये फटकारे गये बार जो ऊ मूड़ चढ़ाये ॥ ७४९ ॥

पाइ तरुनिकुचउच्चपद चिरमि ठग्यो सब गाउँ ।
छुटे ठौर रहिहै वहै जु है मोल छबि नाउँ ॥ ६४४ ॥

नाउँ सुनत तेरो बालक खेलनाहित लैहैं। छोरि उछारि पछारि मीँजि पुनि धूरि मिलैहैं॥ पंछि हु पूछत नाहिँ करयो कैसो हिय असकुच॥ क्यौं तरसावत हाय सुकबि छन पाइ तरुनिकुच ॥ ७५० ॥

वे न इहाँ नागर बड़े जिन आदर तो आब ।
फूल्यो अनफूल्यो भयो *गँवई गाँव गुलाब ॥ ६४५ ॥

गँवई गाँव गुलाब कौन तो कौं ह्याँ जानै । रूप रंग अरु गमक मरन्दन को पहिचानै ॥ बड़ आदरन तोहि सिँचावत निज बागन जे । गरे लगावत सीस धरत ह्याँ नाहिँ सुकबि वे ॥ ७५१ ॥

कर लै सूँघि सराहि कै सबै रहे गहि मौन ।
गन्धी अन्ध गुलाब को गँवई गाहक कौन ॥ ६४६ ॥

गँवई गाहक कौन केवरा अरु गुलाब को। हिना पानड़ी बेला की बूझि है आब को ॥ ह्याँ कपूर अरु हींग एक ही भाव देत धर। सुकबि कहा तू अतर जुही को काढ़ि देत कर ॥ ७५२ ॥

करि फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि ।
†चुप रहि रे गन्धी सुघर अतर दिखावत ताहि ॥६४७॥

---

* गवँई गाँव = "गँवारों के गाँव में" (लालचन्द्रिका) ॥ गवँई = दिहात ॥

† "रे गन्धी मति अन्ध तू" ऐसा भी अनेक पुस्तकों में पाठ है ॥

अतर दिखावत ताहि लेइ रोटी सँग खेहै । जूसी सो नहिं मधुर भाषि नासा सिकुरैहै ॥ क्यों याके ढिग भाव ताव भाषत उलेल को । सुकबि देखु यह हँसत आचमन करि फुलेल को ॥ ७५३ ॥

पुनः ।

अतर दिखावत ताहि न चीन्हत जो फुलेल कों। नोन मिलाय भात सँग गपकत नित्त तेल कों॥ सुकबि मिल्यो रिझवार यहै तोहि मूरख हिय धरि। फूटे तेरे भाग जात नहिं क्यों अधमुख करि ॥ ७५४ ॥

कनक कनक तें सौगुनी मादकता अधिकाइ ।
उहिं खायें बौराइ जग इहिं पायें बौराइ ॥ ६४८ ॥ ॥

इहिं पायें बौराइ सबै सुधि होय बिसारत । सुनत निहारत नाहिं नाहिं सुठि बैन उचारत ॥ मदमातो सो रहत सुकबि झूठी बक बक तें । यातें साँची कही सौगुनो कनक कनक तें ॥ ७५५ ॥

पुनः ।

एहिं पायें बौराय कितेक हु धीरज राखे। कछू न थिरता लहै छनक रीझै छन माखे ॥ सुकबि मत्त सो होत जगत सब यासु भनक तें । यामें तनक न झूठ सौगुनो कनक कनक तें ॥ ७५६ ॥

बड़े न हूजे गुननि बिन बिरद बड़ाई पाइ ।
कहत धतूरे सों कनक गहनो गढ्यो न जाइ ॥ ६४९ ॥

गहनो गढ्यो न जाइ धतूरे सों किंहुँ भाँता । *पुष्कर जल सों कहत सुरभि नहिं गन्ध सुहाता ॥ †चन्द कपूर न कान्ति जात उड़ि त्यों दिन दूजे । सुकबि नाम तें कहा गुननि बिन बड़े न हूजे ॥ ७५७ ॥

---

* पुष्कर = जल (पुष्करं सर्वतोमुखम्) अमर और दूसरा अर्थ कमल। † चन्द्र = कपूर (घनसार: चन्द्रसंज्ञः अमर) और दूसरा चन्द्रमा ॥

*रवि बन्दौ कर जोरि कै सुनत स्याम के बैन।
भये हँसौहैं सबनि के अति अनखौहैं नैन ॥ ६५० ॥

अति अनखौहैं नैन एक दूजी कौं देखति। फरकत ओठन दाबति सी पुनि हरि कौं पेखति ॥ सुकबि कान्ह डीट निरखि रहे हैं कोप भरी छवि। गूजरि परबस परी लखति पुनि धरनी पुनि रवि ॥ ७५८ ॥

पुनः।

अति अनखौहैं नैन कदम दिस पुनि पुनि देखति। पट फहरन फूली सी फुनगिन फिरि फिरि पेखति ॥ हिय बहु भायन भरयौ कम्प रोमञ्च अमन्दौ। सुकबि स्याम हँसि कहत फेर प्यारी रवि बन्दौ ॥ ७५९ ॥

---

†कन दैबो सौंप्यौ ससुर बहू थुरहथी जानि।
रूप रहँचटे लगि लग्यो माँगन सब जग आनि ॥ ६५१ ॥

माँगन सब जग आनि लग्यो करि भीर कतारी। धनी दरिद सब ललचि चलि परे रूप भिखारी ॥ टरत न टारे ठठकि गये भूले घर जैबो। ह्वै गयो सुकबि जवाल थुरहथी को कन दैबो ॥ ७६० ॥

---

‡परतियदोष पुरान सुनि हँसि मुलकी सुखदानि।
कसि करि राखी मिस्र हू मुखआई मुसकानि ॥ ६५२ ॥

मुखआई मुसकानि मिसर हू कसि करि राखी। सर्बदोषहर रामनाम की कीरति भाषी ॥ बातन हीं बहराय और की और कथा किय। सुकबि चतुर सब समझि गये लखि मुलकति परतिय ॥ ७६१ ॥

---

* चीरहरण का प्रकरण ॥ †यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है। थुरहथी = छोटे हाथवाली = रहँचटेलालच। ‡ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है ॥ मुलकी = प्रसन्न हुई ॥

चितु पितुघातक जोग लखि भयो भयें सुत सोग ।
फिर हुलस्यो जिय *जोयसी समझ्यो जारज जोग ॥६५३॥

जारज जोग बिलोकि जोतसी हिय अति फूल्यो । पुनि तिय की गति सुमिरि दुखित ह्वै आनँद भूल्यो ॥ सुकबि बार हीं बार बार तिथि निरखत जित तित । चितलिख्यो सो ठठकि गयो चिन्तत चञ्चल चित ॥ ७६२ ॥

---

†बहु धन लै अहसान कै पारो देत सराहि ।
बैदबधू हँसि भेद सौं रही नाहमुख चाहि ॥ ६५४ ॥

रही नाहमुख चाहि फेर पियमुख कौं चाहति । सुत की आसा पाइ अधिक पुनि हीय उमाहति ॥ सोऊ लखि लखि दुहुन सुकबि हँसि रह्यो मन हिं मन । बैद बापुरो समुझि सकै नहिँ फूल्यो बहुधन ॥ ७६३ ॥

---

‡गोपिन के अँसुवनिभरी सदा असोस अपार ।
डगर डगर नै+ ह्वै रही बगर बगर के बार ॥ ६५५॥

बगर बगर के बार बार ही बारि निहार्‍यो । डरि डरि हिय अकुलाइ किहूँ पगजात न धार्‍यो ॥ बापी कूप तड़ाग एक ह्वै गये अनगिन के । गाढ़ बाढ़ सी रहत सुकबि अँसुवन गोपिन के ॥ ७६४ ॥

स्यामसुरति करि राधिका तकति तरनिजा तीर ।
अँसुवनि करति ॥तरेस कौं खिनक ‖खरौंहौं नीर ॥ ६५६ ॥

---

* जोयसी = ज्योतिषी † यह दोहा संस्कृत टीका में नहीं है ॥ वैद ने इस से पुत्र होगा यह कह पारा दिया । जिसे दिया वह वैद की स्त्री का प्रिय था सो इस भेद को वैद नहीं समझता सो वैदबधू हँस के उस की ओर औ फिर पिय की ओर देखती है । (गूढ़ स्फुट) ‡ यह दोहा हरिप्रकाश के पक्ष में नहीं है । + नै = नदी । ॥तरेस = तरीस (ह० प्र०) तट । ‖खरौंहों खारा ।

खिनक खरौं हौं नीर कियो सोइ मनहुँ बहायो । गंगादिक के झोक ढार ढुरि सागर आयो ॥ सो बिन लहैं प्रवाह आजु लौं खार रह्यो धरि । सुकवि कियो इमि उलट पुलट उन स्याम सुरति करि ॥ ७६५ ॥

पुनः

नीर किये बहु कूप तड़ाग हु छिति रमि खारे । बचे अंस बहि जाइ उदधि के स्वाद बिगारे ॥ तेहिँ चिरसङ्गति भू* भूधर† तरु रहे खार धरि । लोनी लीनो कियो सुकबि सब स्याम सुरति करि ॥ ७६६ ॥

पुनः ।

नीर माँहि जनु धोइ बहाई सहज लुनाई । काजरमिस बगरावति जनु हिय हरि छबि छाई ॥ तजति ‡जीवनाधारसक्ति जनु तापव्याज धरि । सुकबि स्वामिनी सिसकति छन छन स्यामसुरति करि ॥ ७६७ ॥

पुनः ।

नीर तकत ही आइ परी सुधि कालिय केरी । हरि की कूदन डूबन हूँ की सुधि बुधि घेरी ॥ कालियबाँधे कृष्ण सुमिरि लागी अँग थरथरि । सुकवि स्वामिनी गिरी मूरछित स्यामसुरति करि ॥ ७६८ ॥

पुनः ।

नीर खरोहौं करति छनक मैं जमुना जू को । छटपटात सब कच्छ मच्छ हिय ह्वै धुकधूको ॥ बककारण्डवआदि भजत अतिसै संसै परि । सुकबि सबन घबरावति प्यारी स्यामसुराति करि ॥ ७६९ ॥

पुनः ।

खिनक खरोहौं नीर कराति मानहुँ औटायो । बिरहज्वाल की जरनि चहूँ-दिसि जनु उफनायो ॥ बूझि परत मनु कालिय पुनि पैठ्यो लहि औसरि । सुकवि कलिन्दी औरै कीन्ही स्यामसुराति करि ॥ ७७० ॥

---

* ऊपरभूमि । † सिन्ध पञ्जाब में लवण का पहाड़ प्रसिद्ध है ॥ ‡ उष्णता ही जीवनाधारशक्ति है सो आँसुओं की उष्णता के बहानेमानो उस शक्ति का त्याग कर रही है ॥

*लोपे कोपे इन्द्र लौं रोपे प्रलै अकाल ।
गिरिधारी राखे सबै गोगोपीगोपाल ॥ ६५७ ॥

गोगोपीगोपाल दीन रट जबै पुकारी । तिहिँ छन राखे सबै नाथ गिरिधर गिरिधारी ॥ सुकवि पुकारत आरत ह्वै अतिसै चित चोपे । सुनत नाहिँ कछु हहा कहा तुमरे गुन लोपे ॥ ७७१ ॥

हम हारी कै कै हहा पायनपार्यो प्यौरु† ।
लेहु कहा अज हूँ किये तेहतरेरे त्यौरु ॥ ६५८ ॥

तेहतरेरे त्यौरु नाहिँ अब हूँ नरमाने। पुनि पछितैहो कलपि कलपि रहियो जिय जाने ॥ मति झूठे अनखाहु पीय हैँ आसाकारी । मानत नाहिँन हाय सुकवि कहि कहि हम हारी ॥ ७७२ ॥

---

‡अनी बड़ी उमड़ी लखैं असिवाहक भट भूप ।
मङ्गल करि मान्यो हिये भो मुख मङ्गलरूप ॥ ६५९ ॥

भो मुख मङ्गलरूप कुसुम्भी रङ्ग रमायो । नैनन हू जनु अति उछाह को रस सरसायो ॥ असि करमर कै उठी आपु ही परतले पड़ी । फरकि रही दोउ भुजा सुकवि लखि कै अनी बड़ी ॥ ७७३ ॥

+नाहगरज नाहरगरज वचन सुनायो टेरि ।
फसी फौज मैं बन्दबिच हँसी सबनि मुख हेरि ॥ ६६० ॥

हँसी सबनमुख हेरि कान्ह को बल हिय मानी। करि न सकत कोउ कछू

---

* यह दोहा हरिप्रकाश के ग्रन्थ में नहीं है । † 'हम हहा कै कै हारी र पायन प्यौ पार्यो' ।
र — यह 'प्यौरु' एक शब्द मान के बहुनाम नायक अर्थ करते हैं सो समझने वाले समझ लें ॥
‡ वीररस । + हास्यरस ।

यहै निहचै जिय जानी ॥ लगत तमासे सरिस रिपुन की घोर तरजना। ढाढ़स जिय अति देत सुकबि सुठि नाहगरजना ॥ ७७४ ॥

---

*डिगत पानि डिगलात गिरि लखि सब ब्रज बेहाल।
कम्प किसोरी दरस कै खरे लजाने लाल ॥ ६६१ ॥

खरे लजाने लाल रोमाञ्चित देह सुहायो। दोऊ कपोलन सेदबिन्दु को जाल हु छायो ॥ हो हो करि कर उचै गोप हू ठाढ़ भये ढिग। सुकबि कम्प सौं पानि डिगैं गिरिराज गयो डिग ॥ ७७५ ॥

---

†प्रयलकरन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपतिगर्ब हरयो हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥६६२॥

गिरिधर गिरि धरि हाथकँगुरिया सब दुख मट्यो। तासु तरे गोगोप गोपिकनवृन्द समेट्यो ॥ सूखि गई जलधार कहाँ धौं परि गिरिवर पर। सुकबि भये सब ब्यर्थ मेघ जो जुरे ‡प्रलय कर ॥ ७७६ ॥

+ यौं दल काढ़े बलख तैं तैं जयसाह भुवाल।
उदर अघासुर के परे ज्यौं हरि गाय गुवाल ॥ ६६३ ॥

ज्यौं हरि गाय गुवाल अघासुरघात बचाये। जरासन्ध के कैदो नृप ज्यौं पुनि बहराये ॥ भौमगहे नृपकन्यागन कीने सुखबाढ़े। सुकबि भूप जयसाह बलख तैं यो दल काढ़े ॥ ७७७ ॥

मोहनमूरति स्याम की अति अद्भुत गति जोइ।
बसत सु चितअंतर तऊ प्रतिबिम्बित जग होइ ॥६६४॥

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है। † यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है।
‡ प्रलय के करने वाले ॥ × यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है। जयसाह की प्रशंसा के सब दोहे अन्त में हैं पर इसे यहाँ आजमशाह ने क्या जाने क्यों रखवाया ॥

प्रतिबिम्बित जग होय तऊ तेहिँ कोउ न देखत । खोजि खोजि थकि किते ताहि अलखे पुनि लेखत ॥ सुकवि ज्ञानदृग फारे जैहै अपनि हु सूरति। प्रेमाञ्जन दै लखहु चहूँ दिसि मोहन मूरति ॥ ७७८ ॥

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिँ कोइ ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग त्यौं त्यौं उज्जल होय ॥६६५॥

त्यौं त्यौं उज्जल होइ स्याम रँग ज्यौं ज्यौं डूबै । आनँदरस सरसात नाहिँ पुनि कछु हू ऊबै ॥ और रङ्ग नहिँ चढ़ै स्याम लहि सो बड़भागी । सुकवि समुझि को सकै भयो चित या अनुरागी ॥ ७७९ ॥

---

* यह जग काँचो काँच सो मैँ समझ्यो निरधार ।
प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ एकै रूप अपार ॥ ६६६ ॥

एकै रूप अपार सबन मैँ व्यापि रह्यो है । कर्त्ता भर्त्ता हर्त्ता सोई वेद कह्यो है ॥ सुकवि तेहिँ उर धारि सोई है साहब साँचो। भंगुर झूठी चमक भर्यो है यह जग काँचो ॥ ७८० ॥

कोऊ कोटिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार ।
मो संपति जदुपति सदा बिपति बिदारन हार ॥ ६६७ ॥

बिपतिबिदारनहार महामुदमङ्गलदाता। पातकघातक भक्तचित्तचातकजल-दाता ॥ निरधन के धन अहैं स्याम अरु स्यामा दोऊ । सुकवि तिनहिँ हम गह्यो और कौं संचहु कोऊ ॥ ७८१ ॥

पुनः

बिपतिबिदारनहार छाँड़ि नर कौड़ी संचहु । गाड़ि गाड़ि के रखहु भोग भोगौ जनि रंचहु ॥ चिन्ता दुख सौं भरे लोक हैँ तिनके दोऊ । सुकवि बखानत भार परो ऐसे सब कोऊ ॥ ७८२ ॥

---

* यह सोरठा है पर कुण्डलिया के लिये उलट के रक्खा है ।

जमकरिमुह तरहर परयो इहिँ धरि हरि चितलाइ ।
विषयतृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुनगाइ ॥ ६६८ ॥

नरहरि के गुन गाइ प्रीति करि राधाबर सौं । गिरिधर कौं उर धारि विहरु नित नन्दकुँवर सौं ॥ रोम रोम मैं रमैं सुकबि रहिहैं तेरे हरि । होइ मुदित सब संसय तजि कै है का जम करि ॥ ७८३ ॥

जप माला छापा तिलक सरै न एकौ काम ।
मन काँचे नाँचे वृथा साँचे राचे राम ॥ ६६९ ॥

साँचे राचे राम नाम जपि जनम गँवावत । पुलकि पसीजत आनँदअँसुवन देह भिँगावत ॥ सोई साँचे सुकबि लई तिन हीँ मृगछाला । मन हरि सौं नहिँ लग्यो वृथा तब जप तप माला ॥ ७८४ ॥

---

*जगत जनायो जिहिँ सकल सो हरि जान्यो नाहिँ ।
ज्यौं आँखिन सब देखिये आँखि न देखी जाहिँ ॥ ६७० ॥

आँखि न देखी जाहिँ तिन हिँ सौं सब जग देखहु । कोउ बिधि दर्पन आदि माँहि तिन हूँ कौं पेखहु ॥ हिय प्रतिबिम्बित होइ हरि हु त्यौं परत लखायो । सुकबि कछुक तौ जानि जो ई तोहि जगत जनायो ॥ ७८५ ॥

भजन कह्यो ता तैं भज्यो भज्यो न एकौ बार ।
दूर भजन जा तैं कह्यो सो तैं भज्यो गँवार ॥ ६७१ ॥

सो तैं भज्यो गँवार सजन जेहिँ भजन बतायो । सजन छजन हीँ देखि लजन तजि तहँ मँड़रायो ॥ सुकबि अजहुँ तो नाथचरन की सीस धारि रज । एकौ बार हु पागि प्रेम मैं नन्दनँदन भज ॥ ७८६ ॥

---

* यह दोहा शृङ्गारसप्तशती में नहीं है श्री लालचन्द्र ने सं० ७२६ में भी लिखा है वहा दूसरी कुण्डलिया बनी है ।

*पतवारी माला पकरि और न कछू उपाव ।
तरि संसारपयोध कौं हरिनावँ करि नाव ॥ ६७२ ॥

हरिनावँ करि नाव धारि डाँडा जम नेमा । पुनि अनुकूल बयार पाइ निज निर्मल प्रेमा ॥ धीरज को पुनि तानि गहकि कै गाढ़ो पाला । सुकवि सम्हारत हेरफेर पतवारी माला ॥ ७८७ ॥

यह बिरियाँ नहिँ और की तू †किरिया उहिँ सोधि ।
पाहननाव चढ़ाय जिन कीनो पार पयोधि ॥ ६७३ ॥

कीनो पार पयोधि कोरि कपिसँग तिहिँ नावै । तारि दई है सिला अहल्या परसत पावै ॥ ताही कौं भजि सुकवि तोहि तेरी है किरिया । दुर्लभ नरतनु पाइ भूलि मत तू यह बिरिया ॥ ७८८ ॥

---

‡दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन बिस्तारन काल ।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि चङ्गरङ्ग भूपाल ॥ ६७४ ॥

चङ्गरङ्ग भूपाल जोर गुन ही के पैयत । निजगुन ताकौं दिये दूरता तासु चढैयत ॥ तिहिं गुन अपनी घाँ एँचें दूरता जात सभु । ढीलो दीने सुकवि सुगुन लैं दूरि भजत प्रभु ॥ ७८९ ॥

+लटुआ लौं प्रभु कर गहे निगुनी गुनलपटाइ ।
वहै गुनी कर तैं छुटै निगुनी यै ह्वै जाइ ॥ ६७५ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है। † किरिया = कर्णधार ॥

‡ चङ्ग = भारी गुड्डी, राजपूताने में प्रसिद्ध ॥ जो सत्व रज तम के विस्तार में पड़ा रहता है उससे भगवान् दूर रहते हैं और जो निर्गुण अर्थात् निस्त्रैगुण्य ('निस्त्रैगुण्योभवार्जुन') होता है उसके निकट ही प्रगट होते हैं जैसे चङ्ग ॥ भुपाल भगवान् । कहीं कहीं गोपाल भी पाठ है ।

+ यह दोहा कृष्णदत्त की टीका और शृङ्गारसप्तशती में नहीं है । लल्लूलाल इस पर यह भाव नि

जाइ परैँ कर परै न तो निगुनी दरसावै । परे सरस के हाथ सुभग गुन सौं लपटावै ॥ थिरचरढिग अरु दूर सोई आनँद को बटुआ। खेल खिलावत सबहिँ सुकबि नँदनन्दन लटुआ ॥ ७६० ॥

जात जात बित होतु है ज्योँ जिय मैँ सन्तोष ।
होत होत जो होय तौ होय घरी मैँ मोष ॥ ६७६ ॥

होय घरी मैँ मोष सँतोष जु साँचो होवै। जल सरोज ज्योँ रहै विषयविष दिस नहिँ जोवै ॥ सब कछु प्रभु को अहै यहै निहचै ठानै चित । सुकबि रहत हू रहै रहत ज्योँ जात जात वित ॥ ८६१ ॥

ब्रजबासिन को उचित धन सो धन रुचित न कोइ ।
*सु चित न आयो सुचितई कहौ कहाँ ते होइ॥६७७॥

कहो कहाँ ते होइ सुचितई जग जालन सौँ। जो अरुझान्यो रहै सदा सुत वित बालन सौँ ॥ संग्रह सब दिन करत हहा विष की रासिन को।बिसरत मूढ़ गँवार सुकबि धन ब्रजबासिन को ॥ ७६२ ॥

मनमोहन सौँ मोह करि तू घनस्याम सँभारि।
कुंजबिहारी सौँ बिहरि गिरधारी उर धारि ॥ ६७८ ॥

कालते हैं कि राजा जयसाह जिस निगुनी को भी अपने पास रखें तो वह गुणी कहावै औ अपने पास से छुट जाय तो गुणहीन कहावै ॥ प्रायः अब भी दरबारों में देखा जाता है कि जब कोई नया पुरुष बहाल हुआ तो विद्वान् हो तब तो यश होना उचितही है पर मूर्ख हो तो भी चुटकी बजाने वाले उसे बढ़ा देते हैं और कुछ दिन उसकी प्रतिष्ठा रहती है परन्तु जब वह कोई अपबाद लगा कर निकाल दिया जाय तब दर्बार में उस पर दोषों ही की कल्पना होती रहती है ॥ यह बात उनी दर्बारों की है जहां प्रभु मुसाहबों के हाथ में रहते हैं। बिहारी कवि जयसाह की गुणग्राहिता से अतिप्रसन्न न थे यह आगे के दोहों से भी प्रगट होगा ॥ * सो चित्त में न आया तो ।

गिरिधारी उर धारि सुरति करि मुरलीधर पै। माधव की करि साध वारि मन राधावर पै ॥ आनँदवृन्दन उमागि मुकुन्द हि के जोहन सौं। सुकवि छबीले छोह मोह करि मनमोहन सौं ॥ ७६३ ॥

तौ लगि या मनसदन मैं हरि आवहिँ किहिँ बाट।
निपट विकट जब लगि जुटे खुटे न कपट कपाट ॥६७९॥

खुटे न कपटकपाट मोह को गढ़ नहिँ टूट्यो। विषयवासनामहानदी को बाँध न फूट्यो ॥ काम कोह के कण्टक हू नहिँ टारे जौ लगि। सुकवि सलोने स्याम कहो किमि आवैँ तौ लगि ॥ ७६४ ॥

---

*बुधिअनुमान प्रमान श्रुति किये नीठि ठहराइ।
सूछम गति परब्रह्म की अलख लखी नहिँ जाइ ॥ ६८० ॥

अलख लखी नहिँ जाइ कोऊ किमि ताहि लखावै। कहत कहत थकि नेति नेति काहि वेद हु गावै ॥ कपिलादिक की राय सुनत पुनि और जात सुधि। सुकवि सर्बगुन जानि फेर धीरज धारत बुधि ॥ ७६५ ॥

या भवपारावार कौं उलँघि पार को जाय।
तियछविछायाग्राहिनी गहै बीच ही आय ॥ ६८१ ॥

गहै बीच ही आय कहूँ छूटत नहिँ छोड़ी। सबै बिगारत काम मरोरत हीय निगोड़ी ॥ सुकवि जहाज हिँ गहहु मुरलियावारे माधव। तौ पुनि करिहैं कहा कलोलानि कपटी या भव ॥ ७६६ ॥

तजि तीरथ हरिराधिका तनदुति करि अनुराग।
जिहिँ ब्रजकेलिनिकुंजमग पग पग होत प्रयाग ॥ ६८२ ॥

---

* इसमें अनुमान आदि का खंडन हुआ है।

पग पग होत प्रयाग कहो कोऊ किन कवि जन। कोटि प्रयागन वारि फेकिये ब्रजबारूकन ॥ हरिराधा के चरन रहे जहँ सुकबि केलिसजि। तेहिं वृन्दावन की रज कौं भजि और सबै तजि ॥ ७९७ ॥

अपने अपने मत लगे बादि मचावत सोर।
ज्यौं त्यौं सब कौं सेइबो एकै नन्दकिसोर ॥ ६८३ ॥

एकै नन्दकिसोर भजनहित बाट अनेकन। अधिकारिन के भेद देखि विरचे पण्डितगन ॥ ताही कौं मन लाइ सुकवि जागत अरु सपने। देखु तेहीं लगि सोर करत सब अपने अपने ॥ ७९८ ॥

पुनः।

नन्दकिसोर हिं कोऊ राम कोऊ सिव भाषत। कोऊ काली कहत नाम कोऊ गनपति राषत ॥ निराकार कोऊ सुकवि करत आकारकलपने। स्याम हिं लखि पुनि बिसरि जात सब बक बक अपने ॥ ७९९ ॥

पुनः।

नन्दकिसोर हिं कोऊ हाथ धनुबान गहावत। कोऊ कर दै खड्ग सिंह की पीठ चढ़ावत ॥ कोऊ बजावत डमरु अगडवं बोलि होत नत। सुकवि स्याम पै सबै कहत अपने अपने मत ॥ ८०० ॥

पुनः।

एकै नन्दकिसोर सेइबो कोऊ बहाने। परमत मैं को मतवारे जेहिं मारत ताने ॥ अल्ला ईसा राम अहैं तेहिं नाम कलपने। सुकबि तेहीं लगि गीतन गावत अपने अपने ॥ ८०१ ॥

पुनः

एकै नन्दकिसोर हमारे हैं रखवारे। नन्ददुलारे गोपनप्यारे नैननतारे ॥ सुकवि ताहि भजि जगतजाल जानत ज्यौं सपने। सुनिहैं नहिं सब सोर करहु किन अपने अपने ॥ ८०२ ॥

*तौ अनेक अवगुनभरी चाहै याहि बलाय।
जो पति सम्पति हू बिना जदुपति राखैं जाय ॥ ६८४ ॥

जाय भले हीं सम्पति पति जो जदुपति राखैं। को छनभंगुर वैभव कौं हरि तजि अभिलाखैं॥ सुकवि समै पै सब हि काम हरि ही पूरहिं जौ। क्यौं हम भूपतिचोरलुटेरुनभीति परहिं तौ ॥ ८०३ ॥

दीरघ साँस न लेहि दुख सुख साईं हिं न भूल।
दई दई क्यौं करतुहै दई दई सु कबूल ॥ ६८५ ॥

दई दई सु कबूल भूल करि कै का सोचत। अपनी चिन्ता आपु दहत तेहिं क्यौं नहिं मोचत ॥ दुख सुख मिथ्या अहैं वेद को है अनुसासन। सुकवि सत्य तिहिं समझि लेत का दीरघ साँसन ॥ ८०४ ॥

दियो सो सीस चढ़ाय लै आछी भाँति अयेरि।
जापै चाहत सुख लयो ताके दुख हिं न फेरि ॥ ६८६ ॥

ताके दुखहिं न फेरि जाहि सौं चाहत है सुख। हेराफेरी करत कदाचित बिगारि जाय रुख ॥ सुख दुख दोऊ लहत जगत मैं जोई जियो सो। सुकवि तु हू धरि सीस दई करि दया दियो सो ॥ ८०५ ॥

†नीकी दई अनाकनी फीकी परी गुहारि।
मनो तज्यो तारनबिरद बारक ‡बारन तारि ॥ ६८७ ॥

बारक बारन तारि तज्यो तारन को बानौं। अधम उधारन नाम पाइ जिय अति गरबानौं ॥ सुकविसरिस अधमन पै डीठि न देत अमी की। तौ लखि हो गेहैं सब तुमरी कीरति नीकी ॥ ८०६ ॥

---

* जो सम्पति के बिना भी यदुपति जाय के पति राखैं तो औगुनों से भरी सम्पति को बलाय चाहै।
† धमा अनंत ॰ आनाकानी = बहलाना। ‡ बारन = हाथी।

*कौन भाँति रहि है बिरद अब देखवी मुरारि।
†बीधे मोसौं आय कै गीधे गीध हिँ तारि ॥ ६८८ ॥

गीधे गीध हिँ तारि आइ मोसौँ अब बीधे। पसु पंछिन से औगुन नहिँ मेरे हैँ सीधे ॥ मैँ नटखट हूँ महा करत नहिँ बिनती एकौ। सुकबि लखत हौँ लाज रखत किमि बिरद बड़े कौ ॥ ८०७ ॥

बन्धु भये को दीन के को तार्‌यो रघुराय।
तूठे तूठे फिरत हो झूठे बिरद कहाय ॥ ६८९ ॥

झूठे बिरद कहाय फिरत हो तूठे तूठे। साँची कहि हौँ बात होइ हो तो पुनि रूठे ॥ करत गरब हो कहा गीध गज तारि दिये को। सुकबि तरे हैँ मोसे पापी बन्धु भये को ॥ ८०८ ॥

---

‡थोरे ई गुनरीझ तेँ बिसराई वह बानि।
तुम हूँ कान्ह मनो भये आज काल के दानि ॥ ६९० ॥

आज काल के दानि दानभय रीझ पचावैँ। पचि न सकै तो वाह वाह कहि कै मुँह बावैँ ॥ जो देनौं ही परै देत तब सरे पिछोरे+। सुकबि कहा तुम हूँ भये ऐसे जिय के थोरे ॥ ८०९ ॥

कब को टेरत दीन रट होत न स्याम सहाय।
तुम हूँ लागी जगतगुरु जयनायक जगबाय¶ ॥ ६९१ ॥

जगनायक जगबाय कहा तुम हू कहँ लागी। आरत रव के सुनत सुनत हू दया न पागी ॥ कहाँ सुनत गज टेर चले हरि रुके न छन तब। कहाँ सुकवि रह्यो रोइ तऊ दृग दैहो धौं कब ॥ ८१० ॥

---

* टिप्पणी दो० ३३१ और ६२८ पर देखिये। †बीधे = अटके। गीधे = अभिमान से फूले। ‡जयसाह पर आक्षेप तो नहीं है !! + पिछोर = दोहर "न बची बछिया छछिया न पिछोरी" ¶बाय = बायु ॥

ज्यों ह्वैहौं त्यों होंहु गो हौं हरि अपनी चाल ।
हठ न करौ अति कठिन है मोतारिबौ गोपाल ॥ ६९२ ॥

मोतारिबो गोपाल अहै अतिकठिन निहारो । गज अरु गीधसमान मोहि प्रभु मति निरधारो ॥ पैहौं सुख अरु दुःख इहाँ जैसो कछु कैहौं । चिन्ता मेरी तजहु सुकवि ह्वैहौं ज्यों ह्वैहौं ॥ ८११ ॥

करौ *कुवत जग कुटिलता तजौं न दीनदयाल ।
दुखी होहु गे सरल हिय बसत त्रिभङ्गी लाल ॥ ६९३ ॥

बसत त्रिभङ्गी लाल हीय हू चहिय त्रिभङ्गी । वाके सूधे भयें होइहै तुम कों तङ्गी ॥ तीन गुनन की चोट देइ टेढ़ो कीनो रँग । सुकवि कुटिलता तजौं नाहिं किन करौ कुवत जग ॥ ८१२ ॥

मोहि तुम्हैं वाढ़ी वहस को जीतै जदुराज ।
अपने अपने विरद की दुहुन निबाहन लाज ॥ ६९४ ॥

दुहुन निबाहन लाज पड़ी है अड़ अति भारी । मैं अधमनसिरताज सुकवि तुम अधमउधारी ॥ जऊ किते तारे तुम कलुषी कामी कोही । छोटो मोटो पापी तउ गनियो मति मोही ॥ ८१३ ॥

समै पलट पलटै प्रकृति को न तजै निजचाल ।
भो अकरुन करुना करौ यह कपूत कलिकाल ॥ ६९५ ॥

यह कपूत कलिकाल कृपा करुनाकर खोई । करत नाहिं कछु कान रह्यो कय सौं हौं रोई ॥ गज की दसा विलोकि सुकवि तुम कों न परी कल । वा जुग की सी मो कों दीजै स्याम समै पल ॥ ८१४ ॥

* निन्दा ।

*तौ बलि यै भलियै बनी नागर नन्दकिसोर ।
जौ तुम नीकै कै लखौ मोकरनी की ओर ॥ ६९६ ॥

मोकरनी की ओर लखैं औगुन ही पैहौ । गनवे की मन धरे नाथ औरो घबरैहौ ॥ सुकबि हिसाबन तजहु पतितपावन तुम हो जौ । छमहु सबै अपराध उधारहु मो हू कौं तौ ॥ ८१५ ॥

हरि कीजतु तुम सौँ यहै बिनती बार हजार ।
जिहिँ तिहिँ भाँति डर्‌यौ रहौँ पर्‌यौ रहौँ दरबार ॥६९७॥

पर्‌यौ रहौं दरबार चरनरज सिर पै धारौँ। होइ रोमाञ्चित पुलकित तुमरो नाम उचारौँ॥ चँवर ढुराइ प्रनाम करौँ साष्टाङ्ग भूमि परि । सुकबि कछू नहिँ चहौं भीष यह मोहि दीजै हरि ॥ ८१६ ॥

पुनः

पर्‌यो रहौँ दरबार द्वार झारू सौँ झारौँ। कालिन्दीजल आनि नित्त मन्दिर हिँ पखारौँ ॥ सन्तन के पग दाबि रहौँ कोऊ कोने परि । सुकबि जियौँ जौ लौँ तौ लौँ भाषौँ हरि हरि हरि ॥ ८१७ ॥

पुनः

पर्‌यो रहौँ दरबार एक तुमरे रँग राचौँ । छन छन तुम को सुमिरि होइ पुलकित पुनि नाचौँ॥ नित हरिजनसँग रहौं नाम अम्मृत जहँ पीजतु । सुकबि गरूरहिँ तजौँ यहै बिनती हरि कीजतु ॥ ८१८ ॥

निज करनी सकुचौँहि कत सकुचावत इहिँ चाल ।
मो हू से अति बिमुख सौँ सम्मुख रहि गोपाल ॥६९८॥

सम्मुख रहि गोपाल मोहि अति क्यौँ सकुचावत । मोसे अधम कृतघ्न हू कौँ सुख दरसावत ॥ मो सौँ मेरे पापन की गति जाति न बरनी । दया भरी तुम सुकबि करत तोऊ निजकरनी ॥ ८१९ ॥

---

*यह दोहा कृष्णदत्तकवि के ग्रन्थ मे नहीँ है। बलियै भलियै बनी = बलिहारी ही है बनी रही के लिये ये कई ठिकाने बिहारी ने लिखाहै जैसे ‘ वैसी यै जानी परत झगा ऊजरे माँह ’ ॥

कीजै चित सोई तरौं जिहिँ पतितन के साथ ।
मेरे गुन अवगुनगननि गनो न गोपीनाथ ॥ ६९९ ॥

गनो न गोपीनाथ हहा गुन औगुन मेरे। कैसँ गनिहो एक सुन्न इक अन्त न हेरे ॥ नाम पतितपावन अपनो साँचो करि लीजै । सुकवि करोरन तरे दया मोहू पै कीजै ॥ ८२० ॥

---

*प्रगट भये द्विजराजकुल वसे सुवस व्रज आय ।
मेरे हरौ कलेस सब केसव केसवराय ॥ ७०० ॥

केसव केसवराय दई जिन मो कौं सतमति। बालकाल सौं अहैं जोई इक मेरे पति गति ॥ सुकवि रुचत है जिन्हे कलिन्दीतट वंसीवट । जिन हीं की लहि कृपा ग्रन्थ यह हू भयो प्रगट ॥८२१॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ में नहीं है। केशव विहारी के पिता श्री केशवराय भगवान् यह लालचन्द्रिका श्री हरिप्रकाश आदि में हैं पर इन ने कोई प्रमाण नहीं दिया कि केशव विहारी के पिता थे, गुरु थे, अथवा और कोई पूज्य थे ॥ कोई पिताही के लिये "केशवराय" पद कहते हैं ॥ हरि प्रकाश में दूसरा भी अर्थ यों है ॥ हे केशवराय, कृष्ण, मेरे, सब के सौं, गज गीध आदि की भांति, क्लेश हरौ। काशिराज महाराज चेतसिंह के दरबार के पण्डितहरिप्रसाद ने आर्य्यामय संस्कृतानुवाद में 'सबकेसौ' का अर्थ 'सब की भांति' ही समझ कर अनुवाद किया है। यथा " प्रादुरभवोद्विजाधिप कुले व्रजे वससि चागत्य । सर्वस्येव ममापि क्लेशं हरकेशवोपेन्द्र"॥ किसी ने यह भी अर्थ किया है कि 'सबकेसव' = निःशेष ॥ भगवान् के लिये भी रायपद प्रयुक्त है। जैसे दो॰ १८५ 'हरिराय' कृष्ण के राय होने से राधा को राई कहना चाहिये सो सारे बङ्गाल में राधा के लिये राई पद प्रसिद्ध है॥ राजपूताने में भी कहीं कहीं राधा को राई सुन पड़ता है । जैसे गीत " कान्ह कुँवर सो बीरो मांगा राई सी भोआर " भगवान के नाम के साथ रायपद तुलसीदासजी ने भी दिया है ॥ जैसे विनयपत्रिका 'सुमिरि सनेह सो तू नाम राम राय को' । यह राय पद राजपद का अपभ्रंश है अतएव रघुराज यदुराज आदि शब्दों के लिये रघुराय यदुराय आदि पद जगत प्रसिद्ध हैं ॥ (श्री चन्द्रवंश में प्रगटे व्रज में बसे वह केशवराय कृष्ण मेरे 'सब के सब' क्लेश हरो) इस अर्थ को ने के कुण्डलिया है ॥

*ज्यौं अनेक अधमनि दियो मोहू दीजै मोष।
तौ बाँधौ अपने गुननि जौ बाँधे हीँ तोष ॥ ७०१ ॥

जो बाँधे हीँ तोष इहाँ नाहीँ कब कीनी। जो ई नचायो नाँच मैहुँ सोई गति लीनी॥ खुसी भये तो सुखी करत नाहिन मो कौं क्यौं। नहिँ राजी तो सुकबि जान दीजै आयो ज्यौं ॥ ८२३ ॥

---

† चलत पाय निगुनी गुनी धन मनिमोतीमाल।
भेट भये जयसाह सौँ भाग चाहियत भाल ॥ ७०२॥

भाग चाहियत भाल भले जैसाहदुआरे। आप अभागेजन हु किये अति सम्पतिवारे॥ कोसलदेसनरेस सुकीरत लसहु धरातल। जौ लौँ कबिता सुकबि लसत रवि चन्द हिमाचल ॥ ८२४ ॥

पुन:

भाल भाग ही जहाँ मान को मान्यो कारन। गुन औगुन पुनि गन्यो जात नहिँ जिन दरबारन ॥ दूर हि सौँ डण्डोत करत हम तिन कौँ तजि छल। सुकबि गुनगहन कौसलेस जस रहहु अति अचल ॥ ८२५ ॥

---

‡रहत न रन जयसाहमुख लखि लाखन की फौज।
जाँचि निराखर हू चलैं लै लाखन की मौज ॥ ७०३ ॥

---

*यह और ग्रन्थों में सोरठा है परन्तु यहां कुण्डलिया के लिये दोहे के आकार से रक्खा है॥ हरिप्रकाश में दोहा ही माना है। † यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नही है। ‡ इस दोहे में तो जयसाह का वर्णन है और आर्य्यानुवादकार पण्डित हरिप्रसाद ने अपने गुणग्राही काशिराज महाराज चेतसिंह का नाम दे के अनुवाद किया है जैसे "तिष्ठति न चेतसिंहं दृष्ट्वा रिपु सैन्यमधिकमपिलक्षात्। याचित्वाऽक्षर रहितोऽप्यमितधनंयंव्रजति लब्ध्वा" ॥ ऐसे ही दोहा संख्या ७०४,७०६,७०७, के अनुवाद में भी जयसाह का अनुवाद चेतसिंह किया है जैसे " श्रीचेतसिंहदेहः प्रतिफलितोभाति दर्पणागारे। मन्ये जगज्जयार्थं कामेनाकृततनुव्यूहः"॥ "कवचाद्यैः सन्नाहैः सन्नद्धाः सन्तु सैनिकाः सर्वे। श्रीचेतसिंहनृपते विजयो हस्ते

ले लाखन की मौज चले उनको जो जाँचै। ये विन जाँचे देत हेम हीरा हय साँचे॥ भागत रिपु दे पीठि सुनत धौंसा धुनि गहगह। तुअ प्रताप अवधेस सुकवि छायो चहुँदिस रह॥ ८२६॥

पुनः

मौज निराखर हू साखर लौं जा घर पावैं। साँचे गुनिजन प्रान गये हू तहाँ न जावैं॥ कोसलेस दरबार गुनी का सम्पद लहत न। सुकवि और धूरत की ह्याँ धूरतता रहत न॥ ८२७॥

---

*प्रतिविम्बित जयसाहद्युति दीपति दर्प्पनधाम।
सब जग जीतन कौं कियौ कायव्यूह मनु काम॥ ७०४॥

कायव्यूह मनु काम कियो निज अँग छवि निरखन। फूल्यो फूल्यो फिर्‍यो घमण्डन भरि बहु बरपन॥ श्रीप्रतापनारायनसिंह हिँ लखि लाज्यो अति। सुकवि अतनु भयो आप वारि इहिँ अङ्ग अङ्ग प्रति॥ ८२८॥

+घर घर हिंदुनि तुरकिनी देति असीस सराह।
पतिन राखि चादर चुरी तैं राखी ‡जयसाह॥ ७०५॥

तैं राखी जयसाह साँच पति+ दोऊ दल की। मार काट सब मिटी

तर्कवाक्ते"॥ "श्रीचेतसिंहवचनैरकारि भाषानुसारिसुखवचनैः। आर्याभिरेष गुम्फो मुनिगुणवसुचन्द्रमितवर्षे"॥ परन्तु कुण्डलिया में जयसाह शब्द का त्याग विना किये श्रीअवधेश की प्रशंसा की गई है॥ और बिहारी जी ने जो यह कहा है कि 'गुनी हो चाहै मूर्ख भाग के बल से जयसाह से धन मिलता है और मांगै तो मूर्ख भी लाखों रुपये ले सकते' सो स्तुति के बहाने निन्दा है। पं॰ हरिप्रसाद ने इन आर्यों में भी केवल चेतसिंह पद लगा दिया सो वे धोखे से पड़ गये हैं॥ परन्तु कुण्डलिया में निर्दोष जयसाह पर और प्रशंसा अवधेश की रक्खी गई है॥

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में नहीं है औ शृङ्गारसप्तशती में नहीं है।

+ यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में भी नहीं है॥ यह दोहा हरिप्रकाश और अनवरचन्द्रिका में नहीं है। ‡ कुण्डलिया में जयसाह = हे विजयलक्ष्मीगर्वी अवधेश का सम्बोधन। + पति = प्रतिष्ठा॥

अकिल कछु चलै न खल की॥ मन्दिर मसजिद माहिँ रहत पण्डित सय्यद तर। राज ऐसो ही रहहु सुकबि जै जै भई घर घर॥ ८२९॥

पुनः

तैँ राखी जयसाह नाह कोशलधरती के। खिल्लत जिल्लत न्याय करत भाषत सब नीके॥ ऐसो तुव जसचन्द सुकबि परकासत दिन दिन। बाल सुआवत गावत घर घर हिन्दुनि तुरकिनि॥ ८३०॥

---

*सामा सैन सयान की सबै साह के साथ।
बाहुबली जयसाह जू फते तिहारे हाथ॥ ७०६॥

फते तिहारे हाथ और नहिँ पूरै कामा। जोरि जूह के जूह सजै किन बखतर जामा॥ तुमरो श्रीअवधेस अहै ऐसो कछु धामा। सुकबि नाम कहि फते करैँ सेना की सामा॥ ८३१॥

---

†हुकुम पाय जयसाह को हरिराधिकाप्रसाद।
करी बिहारी सतसई भरी अनेक सवाद॥ ७०७॥

भरी अनेक सवाद देखि सतसईबिहारी। रुकि न सक्यो कुण्डलिया सब पै मैँ रचि डारी॥ मुहर दई जयसाह दोहरा के तुक तुक मैँ। कोसलदेसनरेस मोहि अब कीजै हुकमैँ॥ ८३२॥

पुनः

भरी अनेक सवाद सतसई उदधि सात सी। नवरसतुङ्गतरङ्ग गगन सौँ करत वात सी॥ सुकबि अगाध अपार अर्थ पायो तुक तुक मैँ। कुण्डलिया पुल रची लहत कोसलपति हुकमैँ॥ ८३३॥

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में तथा अनवरचन्द्रिका और शृङ्गारसप्तशती में नहीं है॥

† यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में अनवरचन्द्रिका और कृष्णदत्त कवि की टीका में नहीं है॥

पुनः

भरी अनेक सवाद निरखि कुण्डलिया कीनी । कोउ खल सो हरि लई देखि कविता रसभीनी ॥ पुनि मैं कठिन करेजो कै विरची सौ सात हु । कोसलेस के हाथ दई जिन मान कियो वहु ॥ ८३४ ॥

---

*संवत ग्रह ससि जलधि छिति छठ तिथि वासर चन्द ।
चैत्रमास पछकृश्न मैं पूरन आँनँदकन्द ॥ ७०८ ॥

पूरन आँनँदकन्द कियो यह ग्रन्थ विहारी । हम हू या पै कुण्डलिया वहु-विधि रचि डारी ॥ चैत सुक्ल नवमी कौं पूरो कियो ठानि व्रत । सुकवि जुगल सर निधि ससधर के विक्रम संवत१९५२ ॥ ८३५ ॥

---

†गुरुजन दूजे व्याह कौं नित उठि रहत रिसाय ।
पति की पति राखति वहू आपुन बाँझ कहाय ॥ ७०९ ॥

आपुन बाँझ कहाय पीय की आस पुरावै । सन्तति को फल भाषि और हू जिय उकसावै ॥ सुकवि सौतिदुख विसरि पिय हिं अर्प्यो तन मन धन । धन्य धन्य वह तिया सबै तोषत निज गुरुजन ॥ ८३६ ॥

---

‡अन्त मरैंगे चलि जरैं चढ़ि पलास की डार ।
फिर न मरैं मिलिहैं अली ये निर्धूम अँगार ॥ ७१० ॥

ये निर्धूम अँगार नाहिं आधार जरावत । फूलडारपातन कौं नाँहिन कछू सतावत ॥ दिव्यअगिन विधि रची याहि नहिं व्यर्थ करैंगे । सुकवि चलो चलि जरैं जिये हू अन्त मरैंगे ॥ ८३७ ॥

---

*यह दोहा संस्कृत टीका, हरिप्रकाश, हरिप्रसाद के ग्रंथ कृष्णदत्त कवि की टीका, श्री शृङ्गारसप्तशती देवकीनन्दन टीका में नहीं है कोई ज्योतिर्विद् ऐसा भी कहते हैं कि उस छठ को सोमवार नहीं था॥ †यह दोहा हरिप्रकाशटीका, अनवरचन्द्रिका कृष्णदत्तटीका और रसकौमुदी में नहीं है। ‡यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ, अनवरचन्द्रिका कृष्णदत्त टीका, शृङ्गारसप्तशती और देवकीनन्दन टीका में नहीं है।

*अरे हंस या नगर मैँ जैयो आप बिचार ।
कागन सौँ जिनि प्रीति करि कोयल दई बिडारि ॥ ७११ ॥

कोयल दई बिडारि बिना अपराध विचारी । मधुर बचन कों सुनत चोट चोँचन सौँ मारी ॥ तन मन कारे मलभोजिन को अहै बंस या। सुकबि भागि तू बुरो अहै अति अरे हंस या ॥ ८३८ ॥

---

†जदपि पुराने बक तऊ सरबर निपट कुचाल ।
नये भये तौ कहा भयो ये मनहरन मराल ॥ ७१२ ॥

ये मनहरन मराल छीर नीरहिँ अलगावत । निर्मल मोती भषत चलत अति छबि हिँ दिखावत ॥ मान सरोवर सौँ हमरे भागन हीँ आने । सुकबि हमैँ नहिँ भले लगैं बक जदपि पुराने ॥ ८३६ ॥

---

‡सखी सिखावति मान बिधि सैँननि बरजति बाल ।
+ हरयैँ कहि मो-हिय बसत सदा बिहारीलाल ॥ ७१३ ॥

सदा बिहारीलाल भये मो हृदयबिहारी । उनहित मेरे नैन बहावत आँसुनधारी ॥ जागत सोवत उन हिँ दीठि दोउ मेरी धावति। सुकबि कौन कौँ कहा मान तू सखी सिखावति ॥ ८४० ॥

¶ठाढ़ी मन्दिर पै लखै मोहनदुति सुकुमारि ।
तन थाके हू ना थकैं चखचित चतुर निहारि ॥ ७१४ ॥

---

*यह दोहा संस्कृत टीका, अनवरचन्द्रिका, कृष्णदत्त टीका हरिप्रसाद के ग्रन्थ शृङ्गारसप्तशती और देवकीनन्दन टीका में नहीं है । † यह दोहा हरिप्रसादकृत अनुवाद अनवरचन्द्रिका, शृङ्गारसप्तशतिका और देवकीनन्दन टीका मेँ नहीँ है । ‡ यह दोहा हरिप्रसाद ग्रन्थ. सं०टी० अनवरचन्द्रिका कृष्णदत्तटीका और शृङ्गारशप्तशतिका मेँ नहीँ है ॥ + हरयैँ धीरे । ¶ यह दोहा हरिप्रसाद कृत अनुवाद अनवरचन्द्रिका, कृष्णदत्तटीका शृङ्गारसप्तशती औ देवकीनन्दन टीका मेँ नहीँ है ॥

चखचित चतुर निहारि और हू प्यास बढ़ावत। थिर ह्वै जड़ से होत भाव तन्मय को लावत॥ सुनै सुकवि की कौन प्रीत तिय की अति बाढ़ी । चलै हिलै नहिं नेकु नारि पुतरी सी ठाढ़ी ॥ ८३८ ॥

---

* ससिवदनी मो सौं कहत सो यह साँची बात ।
नैननलिन ये रावरे न्याय निरखि नै जात ॥ ७१५ ॥

न्याय निरखि नै जात नैन अरु वदन कमल हू । कज्जल मलिन अधर हू सिकुरत ज्यौं तमदल हू ॥ वचन पखेरू रहत जाइ आनन खोता वसि । सुकवि कहत तुम साँच याहि सौं मोमुख कौं ससि ॥ ८३९ ॥

---

† जा मृगनयनी के सदा बेनी परसत पाय ।
ताहि देखि मन तीरथनि ‡ विकटनि जाय बलाय ॥७१६॥

विकटनि जाय बलाय लखैं काञ्ची कटि झूलत । रोम रोम मानस मोहे लखि कविता भूलत॥ बात बात सुरधुनी मिलैं सु कटाच्छ विराजा । सुकवि सरस्वति वसीकरन तिय भजि तजि लाजा ॥ ८४२ ॥

+ तजत अठान न हठ परयौ सठमति आठौं जाम ।
रहै वाम वा वाम कौ भयौ काम बेकाम ॥ ७१७ ॥

भयो काम बेकाम वाम को सहजसनेही । आदर दमदम करत तऊ मम दाहत देही ॥ बान न छाँड़त वाम बहकि छाँड़त है बानन । ठान अठान न लखत सुकवि यह तजत अठान न ॥ ८४३ ॥

---

* यह दोहा कृष्णदत्तटीका शृङ्गारसप्तशती और देवकीनन्दन टीका में नहीं है ॥

† यह दोहा अमरचन्द्रिका, हरिप्रसाद पन्य कृष्णदत्तकवि को टीका शृङ्गारसप्तशती औ देवकीनन्दन टीका में नहीं है ॥ ‡ जिन शब्दों के नीचे रेखा हैं वे तीर्थों के भी नाम हैं ॥

+ यह दोहा अमरचन्द्रिका, शृङ्गारसप्तशतिका और देवकीनन्दन टीका में नहीं है ।

पायल पाय लगी रहै लगे अमोलक लाल।
भोडर हू की भासि है बेंदी भामिनिभाल ॥ ७१८ ॥

बेंदी भामिनिभाल लगी अति सोभा पैहै। पाँय महावर रहै नैन काजर सरसैहै ॥ गुंजा हू नासा चढ़ि सुकबिन कैहै घायल। पाय लगी ही कायल है जनु झनकति पायल ॥ ८४४ ॥

बाम तमासे करि रही बिवस बारुनी सेइ।
झुकति हँसति हँसि हँसि झुकति झुकि झुकि हँसि हँसि देइ ७१९

झुकि झुकि हँसि हँसि देइ तकति एकटकी लगायँ। बोलत रुकि रुकि अनमिलबचनन कों दुहरायँ ॥ सरकति सारी लखति डीठि रँग अरुन बिकासे ॥ सुकवि कपोलन मुलकि करत है बाम तमासे ॥ ८४५ ॥

---

*भौ यह ऐसो ई समै जहाँ सुखद दुख देत।
चैतचाँद की चाँदनी डारति किये अचेत ॥ ७२० ॥

डारति किये अचेत दहति जनु दीह दवागी। सुरभि समीर झपट्टन सौं औरो जनु जागी ॥ किते मूरछित परे किते जनु हाय हाय कह। पिय बियोग मैं सुकबि समै सब औरै भो यह ॥ ८४६ ॥

---

*जदपि नाहिँ नाहीँ नहीँ बदन लगी जक जाति।
तदपि भौंह हाँसी भरि नु हाँसी यै ठहराति ॥ ७२१ ॥

हाँसी यै ठहराति करै किन नाहीँ नाहीँ। लसत रोमञ्चन कञ्चन अँग झटके हू बाँहीँ ॥ मोरे हू मुख होत सामुहैँ डीठ रस झपी। मन न रुखाई गहत सुकवि ठानत है जदपी ॥ ८४७ ॥

---

* यह दोहा देवकीनन्दन टीका में नहीं है।

*रूख रूखे मिस रोखमुख कहति रुखौंहै बैन।
रूखे कैसैं होत ये नेहचीकने नैन॥ ७२२॥

नेहचीकने नैन होइ हैं कैसैं रूखे। रससिंगार सों सने सदा पियदरसन-भूखे॥ किती भौंह सतराय किती किन फेरै तू मुख। सुकबि तऊ छबिछाके दृग को बदलै नहिं रुख॥ ८४८॥

---

*लग्यो सुमन ह्वैहै सु फल आतपरोस निवार।
बारी बारी आपनी सींचि सुहृदताबार॥ ७२३॥

सींचिसुहृदताबार बाय जनि रोकु उछाहू। सङ्काकण्टक काटु पल्लवित राखि उमाहू॥ घरहाँइन की घेर घास जिय मैं न दै जमन। सुकबि सरस रहु रूखी होइ न है लग्यो सुमन॥ ८४९॥

ललनचलन सुनि चुप रही बोली आपन ईठ।
राख्यौ गहि गाढ़ैं गरौ मनौ गलगली दीठ॥ ७२४॥

मनौं गलगली दीठ ललकि गर सौं लपटानी। कसि कै गहिरे ऐंचि लियो ढिग पुनि पिय आनी॥ आँसुन की बरषा कै बोरे डगर जनु जलन। सुकबि पलटि ठाढ़ो ह्वै भूल्यो चलन हू ललन॥ ८५०॥

---

†सकै सताय न तम बिरह निसिदिन सरस सनेह।
वहै सहै लागी दृगनि दीपसिखा सी देह॥ ७२५॥

दीप सिखा सी देह दमक दमकति अनियारी। बदनचन्द्रचान्द्रिका चिलक उर मैं उँजियारी॥ भूषनमोतीनखतचमक अजहूँ जिय जाय न। एते हु सुकवि प्रकास बिरह तम सकै सतायन॥ ८५१॥

---

* यह ऊपर के तीन दोहे शृङ्गारसप्तशतिका और देवकीनन्दन टीका में नहीं हैं।

† यह दोहा अनवरचन्द्रिका, शृङ्गारसप्तशतिका और देवकीनन्दन टीका में नहीं है।

जगत जनायो जिन सकल सो हरि जान्यो नाहिँ।
ज्यों आँखिन सब देखियत आँखि न देखी जाँहिँ ॥ ७२६ ॥

आँखि न देखी जाँहिँ जात अनुभव सों जानी। इन बिन कोउ न होत सितासित रँग को ज्ञानी ॥ ज्ञानरूप हरि बिना कहो किमि अनुभव आयो। या सों सोई गहहु सुकबि सोइ जगत जनायो ॥ ८५२ ॥

लालचन्द ने इतने ही दोहे रखे हैँ।

हरिप्रसाद के स्वीकृत दोहे।

ए री दे री स्रवन सुनि तेरी अलक बटोरि।
चढ़ि न सकत है चितनटी निपटचीकनी डोरि ॥ ७२७ ॥

निपटचीकनी डोरि आपु ही चित बहकायो। ता पै और फुलेल अतर तैं चरचि लगायो ॥ ता हू पै इहिँ झूलि और हू मोमति घेरी। अलक हिँ सुकबि बटोरि जाउँ बलि तेरी ए री ॥ ८५३ ॥

जुरत सुरत के सुरत कै, खिन खिन खरी डेरात।
ज्यों ज्यों नायक कमल को, कमलाइत ह्वै जात ॥ ७२८ ॥

(अर्थ अस्पष्ट औ अमधुर है)

जे हरि खगपति सीस धर, हर ध्यावत धरि ध्यान।
ते हरि जेहरितर किये, तू राधे करि मान ॥ ७२९ ॥

मान समै ते हरि जेहरितर राधे कीने। जिन नरकेहरि दनुज देहरि हिँ दरसन दीने ॥ * हरि हरि कै हहरात सुमिरि जेहिँ असुरन मेहरि। बस करि लीने सुकबि जगत जाहिर हैँ जे हरि ॥ ८५४ ॥

---

* 'हरि हरि' = हा हा, जैसे जयदेव "हरि हरि हतादरतया सा गता कुपितेव"।

नैन किरकिरी जो परै कर मींजत जिय जाय ।
देखहु प्रेमसुभाव रसमूरत नैन समाय ॥ ७३० ॥

मूरत नैन समाय धुपै कहूँ नहिं धोयें । कोटि उपायन करो हटै नहिं जागे सोयें ॥ जोई समाई ताही के विन बढ़ै तिरमिरी । सुकवि भली यह भली लगै नहिं नैन किरकिरी ॥ ८५५ ॥

परी परी लौं चढ़ि अटा निपट बढ़ि परी जोति ।
फिरती दीठ दई छिनक दीठ बिचल चल होति ॥ ७३१ ॥

दीठ बिचल चल होति लखी जब सौं वह प्यारी । झमकावत झबिया रु झुमावत झुननी वारी ॥ तेहीं ध्यान मैं अरी रही दृग भरी घरी लौं । सुकवि छरी सी जब सौं वह लखि परी परी लौं ॥ ८५६ ॥

बधूअधर की मधुरता बरनत मधु न तुलाइ ।
लिखत लिखक के हाथ की किलिक* ऊख है जाइ ॥ ७३२ ॥

किलक ऊख है जाइ मसी हू होत सुधासी । खाजा के परतन की सी छबि पत्र प्रकासी ॥ सुबचन की बारू हु तहाँ चीनी सी ढरकी । सुकवि करै किमि कबिता मधुर बधूअधर की ॥ ८५७ ॥

मारे काहू मीत के भूलि गये सब जेब ।
आप कहूँ आसा कहूँ तसबी† कहूँ कितेब ॥ ७३३ ॥

कहूँ किताब छरी कहूँ कहुँ पर्यो दुपट्टा । कहुँ टोपी कहुँ कलम कहूँ पटी कहुँ पट्टा ॥ बबराये से फिरत ढरे मुख कच बिथुरारे । सुकबि मरदई बिसरि गये काहू के मारे ॥ ८५८ ॥

* मकंट   † तसबी = माला ।

हँसि हँसि रस बस करि लयो लँगर छोहरी दीठ।
निपट कपट उर देखियत आँखिन हू मैं पीठ ॥ ७३४ ॥

आँखिन हू मैं पीठि और दोउ बगल निहारी। याही सौं है फिरन मुरन समुहावन सारी॥ कोह छोह अरु मोह सोह इनहीं मैं सरबस। सुकबि करत ये मान करत कबहुँक हँसि हँसि रस ॥ ८५६ ॥

संस्कृत टीका के अनुसार।

औगुन अगनित देखिये फल को देहिँ न नाखि।
नीचे नीचे कर्म्म सब ऊँची ऊँची आँखि ॥ ७३५ ॥

(माधुर्य नहीं है)

---

*कालि दसहरा बीति है धरिमूरख जिय लाज।
दुर्‍यो फिरत कत द्रुमनि पर नीलकंठ बिन काज ॥ ७३६ ॥

नीलकण्ठ बिन काज दुरत क्यौं कुञ्ज निकुञ्जन। ज्यौं हम दरसन चहत छिपत त्यौं तरुदलपुञ्जन ॥ भयो कहा अभिमान उठत क्यौं मद के लहरा। सुकबि फेर पछितैहै जै है कालि दसहरा ॥ ८६० ॥

कुचढापन यातें बनै दुति सुमेर हरि लीन।
बदन दुरावन क्यौं बनै चन्द कियो जिहिँ दीन ॥ ७३७ ॥

चन्द कियो जिहिँ दीन बीर सो बदन दुरावत। बिम्बबिजेता अधरहु कौं पट ऐंचि छिपावत ॥ सुकबि उचित नहिँ तोहि बहादुर कौं इमि झाँपन। हैं ये जनमनचोर भले ही करु कुचढाँपन ॥ ८६१ ॥

---

* यह दोहा हरिप्रसाद के ग्रन्थ में भी है। दसहरे के दिन नीलकण्ठ का दर्शन विहित है।

गति दै मति दै हेत दै रस दै जस दै दान।
तन दै मन दै सीस दै नेह न दीजै जान ॥ ७३८ ॥

नेह न दीजै जान जान दीजै वरु छन मैं। कैसेहु परैं कलेस विकार न कीजै मन मैं ॥ लगी लगन सो लगी न छाँड़िय वरु निज पति दै। सुकवि राखिये प्रीति रीति दै गति दै मति दै ॥ ८६२ ॥

चलित ललित स्रमसेदकन कलित अरुन मुख ऐन।
वनविहार थाकी तरुनि खरे थकाये नैन ॥ ७३९ ॥

खरे थकाये नैन अलक जुग छिपी कपोलन। कुच जुग कछु थररात कहत पुनि रुकि रुकि बोलन ॥ गिरत वसन कर धरत होत तेहिँ लखत मत्त भ्रम। सुकवि हीय हहराइ हरत तिय चलित ललित स्रम ॥ ८६३ ॥

विनु वरजैं धौं का कहै वरज्यो कापैं जाइ।
जो जिय मैं ठाढ़ो रहै तासौं कहा वसाइ ॥ ७४० ॥

तासौं कहा वसाइ वसै जो हिय नैननि मैं। जाकी चरचा वात वात विच विच वैननि मैं ॥ जाके गातन के अलम्ब सौं कटत रैन दिनु। सुकवि रहै जो जिय मैं जिय नहिँ रहै जासु विनु ॥ ८६४ ॥

मोहि करत कत वावरी नागरनेह दुरै न।
कहे देत चित चीकने नेहचीकने नैन ॥ ७४१ ॥

यह दोहा किंचित् अक्षर भेद से ११ संख्या पर आचुका है।

सपत वड़े फूलत सकुच सव सुख केलि निवास।
अपत केर फूलत अतन मन मे मानि हुलास ॥ ७४२ ॥

(क्षेपारम्भ है)

सतसैया के दोहरा ज्यौं नावक के तीर ।
*देखत अति छोटे लगैं घावकरैं गम्भीर ॥ ७४३ ॥

घाव करैं गम्भीर गड़े पै कढ़ैं न काढ़े । हिये उरझि से जात पैठि नस नस रस बाढ़े ॥ सुकवि बिहारी रचे भरे गुन बलभैया के । सिर घूमत जब लगत दोहरा सतसैया के ॥ ८६५ ॥

मुदित खलित दृग तीय के हौं रीझी इहिं भाय ।
भ्रमित भये पिय जानि के मानो हेरत बाय ॥ ७४४ ॥

(साधारण है)

कवि ठाकुर के अनुसार ।

बारन को †बुरका कियो सब अँग लियो छपाइ ।
अँगुठा देखि परयो नहीं अँगुठा गई दिखाइ ॥ ७४५ ॥

अँगुठा गई दिखाइ आपने समुझ लजीली । पै अँगदुति की दमक रुकै किहुँ नाहिं सजीली ॥ पटछानी वह रूप सुधा चाखी सुखसारन । सुकबि मधुरई ऐसी देखी हम कोऊ बार न ॥ ८६६ ॥

---

* लागत वड़ो गँभीर । † "वुरका" सर्वाङ्ग ढाँप के ओढ़ने का एक सियाहुआ वस्त्र रहता है उसमे आखों के ठिकाने जालो रहतो है । जैसे वावू हरिश्चन्द्र ने लिखा है "वेगम वुरका वेग उठाओ" (कविवचनसुधा) उस वुरका से सर्वाङ्ग ऐसा ढंपा कि पादांगुष्ठ तक न देख पड़ा यो वह देखनेवालों को (अँगुठा दिखा गई) ठग गई अर्थात् लज्जित कर गई ।

ये दोहे संस्कृत टीका के अन्त में हैं इन पर टीका नहीं है,
इति लगाने के बाद हैं (हमें ये दोहे विहारी कृत नहीं
विदित होते इसलिये कुण्डलिया नहीं रची)

छपि छपि देखत कुचनितन कर सों अँगिया टारि।
नैननि मैं निरखत रहै भई अनोखी नारि ॥ १ ॥
सखियन में बैठी रहे पूछै प्रीति-प्रकार।
हँसि हँसि आपुस में कहै प्रगट भयो है भार ॥ २ ॥
चित मैं तो कछु चोप सी निपटन लाग्यो नेह।
कहूँ दुरै देखै कहूँ कहूँ देखावै देह ॥ ३ ॥
लटू भयो वासों रहत वा ही सों भुकि रङ्ग।
मन मोसों मानी भई वा ही तिय के सङ्ग ॥ ४ ॥
होत कहा कहि हो सखी दंपति की रसरीति।
वा समये की देखि छवि गयो मदन मुहँ जीति ॥ ५ ॥
नैन परचो पियरूप में रूप परचो हिय माँहि।
बात परी सब कान में मोहि परै कल नाहिं ॥ ६ ॥
घूँघटपट के ओट तैं निडर रहैं मति कोय।
कुही बाज कुलही दियें अधिक सिकारी होय ॥ ७ ॥
सूख्यो वारिज कुसुमवन पुहुप मालतीवृन्द।
मधुप कहा जीवन जिये मूली के मकरन्द ॥ ८ ॥
मन मरकट के पग खुल्यो निपट निरादर खोभ।
तदपि नचावत सठ हठी नीच कलन्दर लोभ ॥ ९ ॥

रहे न काहू काम के सैंत न कोऊ लेत।
बाजूटूटे बाज कों साहब चारा देत ॥ १० ॥
तीन बार लाला तुम्हैं पठैदई अलिहाथ।
चोरी प्रेमसुगन्ध की उघरि गई तिहिं हाथ ॥ ११ ॥
फूल आगि दै गोद लै पतरी दै घर आव।
लाल कही बारी नहीं करनफूल पहिराव ॥ १२ ॥
गायन ये गायन बड़े लैकर बैठी बीन।
ये गाहक कर बीन के रागो राग नवीन ॥ १३ ॥
बिनग फुही लपटे छटा घटाघूम बिस्तार।
पावसरितु प्रानेस बिनु होत सकार ककार ॥ १४ ॥
गुंजत अंगुलि दै दसन लखि कंजन सकुचाय।
मूँदति पतिदृग दाहिने रति बिपरीत लखाय ॥ १५ ॥

सतसई के कठिन शब्दों की विवृति।

शब्द।	दोहाङ्क	अर्थ।
अकस	२	ईर्षा
अनखुली	१८०	कोपना, क्रोध के स्वभाव वाली।
अनाकनी	६८०	अनाकर्णन आनाकानी। न सुनना, टालना॥
अहेरी	४५८	शिकारी = व्याध।
अंगेटि	८०	छिपा के अङ्गीकार करके,
आड़	५४३	टीका (आड़ा टीका) बिंदुली, टिकुली,
आबु	५८६	प्रतिष्ठा, आदर।
आलबाल	२८४	बावला, गमला।
आसव	२१०	मद
औघरो	६०३	थोड़े जल का
इठलाहटी	२६१	हठी
ईठि	१११	इष्ट
उझकै	१०८	उतरै
उपैजाय	९८०	उड़ जाय
उमदात	८६	मस्त होता है।
उरबसी	५०२	धुकधुकी एक प्रकार का भूषण जो गले में पहिरा जाता है।
कजाकी	४९१	क्रूरता हत्यारापन।
कनक	६४८	धतूरा और सोना
कनखियन	६२०	तिरछी आँखों से (कान अँखियन)
कनोड़ो	११८	कान की ओर मुड़ी, झिपी
कपटयत	८७	कपट की बात
काकगोलक	२९९	कौए की आँख का कोया
काती	४०६	कती (छूरीपतली तलवार)
कारपूत	१२१	मद्दराय का भराव।
किडकुमा	५६	कान की ओर रहनेवाली सुई अथवा उत्तर पानी सुई जिनके प्यास करते हैं।
किरिया	६०३	कर्णधार, मांझी।
कुडगति	३१५	डगमगाती
कुवत	६८३	निन्दा (कुत्सित बात)
कुही	४६५	एक छोटी चिड़िया।
कुही	६८२	मारो।
केम	५०६	कदम्ब।
कोहर	५०९	इन्द्रायन का फल वा विलायती भण्टा।
खुए	४४३	कन्धे
खुभी	४८१	नाक की सीक।
गढ़वै	५८५, ३७६	गढ़ में स्थित, गाढ़ा,
गदकारी	५४३	गदली
गलीत	६०४	शोणित
गहली	३६८	पगली
गाड़	४८४	गड्ढा (गाल या दाढ़ी पर का)
गीधे	६८८	अभिमान से फूले,
गुड़हर	६६०	गुड़हुल
गुढ़ी	१०	आशय
गुरडरी	३६६	गुड़ की डली
गोंद	२१२	गेंद वा छिपा के
गोरटी	३१५	गोरी।
चहुँकोद	३८६	चारों ओर।
चाड़	४८४	चाह, चाहना।
चारी	८५	चुगली।
चालै	९८	गौने।
चिरमि	६४४	घुंघची, गुञ्जा।
चुचायनै	११२	टपकने, चूने
चोरमिहीचनी	२१६	आँखमुँदौअल।
चोरटी	३११	चुराने वाली, चोटी
चोल	५८१	मंजीठ।
चौका	८३।४८६	दांत

शब्द ।	दोहाङ्क	अर्थ ।
छनदा	४२१	रात
छाक	२७८	नशा
छिगुनी	२२५	छोटी अँगुरी । कनिष्ठिका
जवासो	३९६	जवासा (एक वृक्ष)
जातरूप	५३५	सोना
जामन	३१९	जोरन, जिससे दही जमाया जाता है ।
जींगन	३८५	ज्योतिरिङ्गण, जुगनू ।
जोयसी	६५३	ज्योतिषी
ज्यौ	२९९	जीव
झालरति	२९३	फूलती है
डाढ़ो	४१७	दग्ध
डौंडी	१६९	डुगडुगी
ढूका	३४२	कान लगाना
ढोरी	३३७	बान, आदत
तूठे	६८९	तुष्ट
तेह	६५९	कोप
तरैस,तरौस	६९६	तट
तखोना	६४०	तरकौ
त्योनार	१२२	रीति, प्रकार
थुरहथी	६५१	छोटे हाथ वाली
दमामा	५९९	नगारा
दुराज	६०५	दो राजा का राज्य
दुसार	३३१	वह तीर जो पार होजाय
धरक	५४७	खौकार, डर
धुरवा	३८६	मेघ
नटसाल	३२४	वह तीर जो गड़ के भीतर ही रह जाय
नतरक	२६४	नहीं तो
नांदि	३०१, ४२३	चिहुंकि, विकसि
नाहर	६५८	सिंह
नै	६०९, ६५५, २६३	नदी, झुक कर
प्रफुला	५४४	पुष्पविशेष (पाकर का फूल)
परेवा	६३४	पारावत
पायक	४६६	पदग, सिपाही
पार	६१५	पाढ़, किनारा ।
पैज	३४२	प्रतिज्ञा
बतरस	२५४	बात का रस
बनतन कौं	२७२	बन की ओर
बसीठ	११७	दूत सनेसा
बारन	६८७	हाथी
बहाऊ	३६७	बहकनी
बिय	२९४, ५१४	द्वय दो
बिससिये	५९२	बिश्वसनीय,
बिहरत	१९५	बिदारत
बौधे	६८८	घटके
बूढ़	१९८, ५७३	इन्द्रगोप
वृषादित	६०१	जेठ (वृषादित्य) जिस में वृष पर सूर्य रहैं ।
बै	६०९	उमिर
ब्यौरति	४९५	सँवारती है, सुलझाती है, बिरवालती है ।
भटभेरो	२२१	भेट
भौडर	७१८	अबरख
मतीर	६०१, ६०२	तरबूज
मरगजे	३३२	मलीन
मवास	४९७	अड़ा, डेरा

शब्द।	दोहाङ्क	अर्थ।	शब्द।	दोहाङ्क	अर्थ।
मारु	६०१	मरु देश के	सवि	५६४	छवि = (तसवीर)
मीना	४६७	एक प्रकार की राजपुताने के लुटेरुओं की वन्यजाति,	स्यामलीला	४८७ } ५४३ }	अञ्जन
मुकुतई	८७	मुक्तता	सरि	५३५	सादृश्य, बराबरी
मुरामा	४८०	तरकी	सटक	२१४	बेत, पतली छड़ी
मुलकी	६५२	प्रसन्न हुई	साट	२६१	सट्टा
रली	३६७	रत, रति, प्रीति।	सांमा	७०६	व्यूह, संघट्ट
रलचटे	६५१	लालच	सोनकिरया	५४३	जुगनूं, सुवर्णकीट
लघाछेष	१०	लघुद्रुत	हई	२७४	ओहो, हाय
लाय	१११	ज्वाला	हमाम	१८३	गरमपानी का हौज
लाव	२८१	रस्सी, गून।	हरये	७१३	धीरे
लोट	५५६	सलोट, त्रिवली।	हरकी	२८८	हाँकी
लोने	५८६	लावण्य	हायल	५१०	स्थगित
सनर	२१० } ५६८ }	वक्र	हुल	३१०	एक प्रकार की पटे की मार, सामने से पेट में घोंपना।
स्यों	४००	सी			
सद	१८५	आदत	हूठो } हठ्यो }	३३१	नटखट पन, धृष्टता

बिहारीजी के दोहों के क्रम की सूची ॥

दोहे	१ लालचंद्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचंद्रिका के अनुसार ।	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार ॥	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार ॥	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद के अनुवाद के अनुसार	९ रसचंद्रिका के अनुसार	१० अमरचंद्रिका के अनुसार ॥
अगरिनउन	२०६	३१८	४३८	५११	३८१	३१८	२०२	२३९	३५	३२२
अगअंगछवि	५२१	१५४	११८	८२	१०१	१०७	४४७	४५३	४१	१५५
अगअंगनग	५२९	१४७	११३	६६	१००	१०६	४४५	४४६	११	१४७
अगअंगप्रति	५३०	१५३	११७	८३	१०४	१०५	४४६	४४०	१०	१५४
अजौंलरूौना	६४०	१२३	६८१	६५८	६८१	७०७	६३६	X	५	१२१
अजौंनआर्य	१३०	४८१	२५३	४१६	३०५	४११	१२२	१०९	३३६	४८५
अतिअगाध	६०३	६४५	६८७	५१७	६२७	६७६	५९५	६१५	२७	६५१
अधरभरत	६	२३	३४१	१५७	८	६७	७	६२५	३	२२
अनतबसे	१८८	४०१	१७६	३११	३६३	४८६	१८४	९३	२३	४०६
अनरसहू	३७५	४४६	२९४	४००	३७३	४००	३६६	५४३	३७	४५०
अनियारे	३७१	८१	६३५	६५९	२२७	४२१	३६३	५५४	२८	७८०
अनीबड़ी	६५९	६३१	५२१	६२५	७०४	५७४	६५४	२८२	३९	६३७
अंतमरैंगे	७१०	५६३	X	X	X	X	X	X	X	X
अपनीगरज	३५१	२१०	१४३	३१	३६०	४९१	३४२	३५६	२४	२१२
अपनेअंगके	२०	२९	१२३	९	१२६	१३१	३१	५३	२	२८
अपनेअपनेमत	६८३	७१०	५७४	६७५	७०१	६०१	६७७	२९	१	७७७
अपनेकार	५५७	३६५	१४३	३१५	५६३	६६	५४८	१२५	७	३६८

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार ॥	२ हरिप्रकाशटीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णदत्तकवि की टीका के अनुसार ॥	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार ॥	६ संस्कृतटीका के अनुसार ॥	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसादकृत अनुवाद के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
अवतजिनाम	५७६	५७५	६२३	५४३	५९०	६४१	५६९	३१८	२५	५७९
अरतैंदरतन	४५६	५२	१२७	९०	१२८	१३२	४६७	४९	४	५२
अरीखरीनकरे	X	X	२०३	X	X	X	X	X	X	
अरीखरीसटपट	१६२	३२४	१५०	३४०	२८५	४४५	१५९	२४४	१५	३२७
अरुनसरो	५७८		१०१	५४८	५९५	६४३	५२६	३२१	२६	५८३
अरुनबरन	५१२	१५८	X	२३७	८९	८९	X	५०९	६	१६१
अरेपरेखौ	६१५	६५०	X	६८८	६३९	६८७	X	६११	४०	६५७
अरेपरेन	६८९	४९६	६६१	४७८	५१३	२४४	३८०	३९१	१६	४९८
अरेहंसया	७११	६६०								
अलिइनलोयन	२५९	१७८	३९४	१२०	१७३	२०८	२५७	३३७	१८२	
अलिइनलोइनसर	२६०	२२९	४०८	१०८	४८०	२१४	२५६	४७९	१९	२३१
अहेकहेन	१५०	२९२	२६८	३९६	२२२	४१६	१४७	५११	१३	२९४
अहेदहेंडी	२२३	६०८	३१		३९७	५६५	२२१	३०७	३४	२५९
इतिअकारादि । अथ आकारादि ।										
आजकछू	१८७	४१५	१८६	३०२	१५३	४८२	१८९	१०४	२२	४११
आडेदैआले	३८१	४९७	२०७	४३८	५२५	५२३	३७२	४०६	२०	५०२

आनआव	३१९	४४९	२९८	३११	२५२	४१३	३७०	५३९	२१	५५२
आगोर्मत	१५९	५४६	२४४	४८८	३५६	५४२	१४६	१२२	३२	५५१
आनतजात	५८२	५८३	६३०	५५२	५९९	६४७	५७५	३२५	३१	५८७
			इतिआकारादि । अथ इकारादि ।							
इकभीजेचत	६०९	२८	६७६	६९२	६६३	६८६	६०२	६०८	४२	२७
इतआवति	४२८	४९९	२९९	४४३	५२४	२८१	४०८		४५	५०३
इततेउत	२८६	१९८	३७०	१३०	४९८	२८०	२८३	२५६	४४	२००
इनदुखिपा	२७०	२४८	४२६	११८	४७९	२२७	२६७	३६१	४३	२४९
इहिकांरे	४७	२३५	४१३	३३	१७६	३५०	८७	२०४	४९	२३७
इहिंहैही	४७४	८९	७०८	२०९ ५८८	५०	४५	५८७	✕	४८	८८
इहींआस	६३२	६५६	६८९	६०३	६४९	६९५	६२६	५९२	४७	६६३
			इतिइकारादि। अथउकारादि।							
उविठकठक	१५६	५७७		३४२	२८२	४४४	१५४	१४७	५१	५८०
उनकीहित	२८९	२१४	२६३	३२३	२६१	३४५	२८६	३४७	५२	२१६
उनहरकी	२८८	१८१	३५६	१६१	×	३५९	२८५	६४९	५६	१८३
उपोसरद	२३७	३११	२७१	२६२	४५७	४२५		३२२	५७	३१४
उरउरकया	२८७	२०५	३७६	२४	४९९	२८५	२८४	३७०	५४	
उरमानिक	५०२	१३०	८१	२२४	७८	७७	५१६	५३०	५०	१२९
उवलीन्हे	३१०	२०८	३७७	१६०	५०१	१९२	×	३०४	५३	२०९
			इतिउकारादि । अथऊकारादि ।							
ऊंचेचिते	७३	६१३	४९५	२७३	१९७	३६७	६६	१८७	५५	६१६
			इतिऊकारादि। अथएकारादि।							

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसादकृत अनुवाद के अनुसार।	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
एरीयह	९०	४३८	२८६	३१८	२३८	५४६	७०	×	५८	४४४
इति एकारादि। अथ ऐकारादि।										
ऐंचतसी	६३	७१	५५ ३५५	१०२	३७६	३९	४७९	१६६	९	७२
इति ऐकारादि। अथ ओकारादि।										
ओछेबडेन	६००	×	६५१	६१९	६२०	६६१	५९३	५९८	२९	६२९
ओठउचैहाँ	२८२	६५२	×	५१०	×	२३०	२७९	६२८	३३	२४३
इति ओकारादि। अथ औकारादि।										
औधाईसीसी	३८२	५२९	२२६	४३३	५२६	५१२	३७३	४७१	१८	५२५
औगुनअगिनित	×	×	×	×	×	७१६	×	×	३०	×
औरसवैहर	७६	६१५	४५४	६२३	३०३	३७२	६८	१८१	३८	६१८
औरैओपक	८८	३८०	५९	४३	२०६	४३	७८	४८३	८	३८५
औरैगतिऔ	८१	×	×	३१७	२३९	३७०	७२	५७२	१२	३८०
औरैभांति	४१५	५१२	२२० ४८३	४६०	५११	२४०	४०५	१७३	१७	५१८
इति औकारादि। अथ ककारादि।										
कचसमेटि	४४३	३५	३७	१७५	३९१	१२	४५५	४८१		३४
कंचनतन	५२२	१४६	११२	७३	९६	१०१	४३९	४९९	७४	१४६
कंजनयनि	६०	६४	३४६	४०	५६०	५५८	५३	१९१		६४

कनककदिपत	११९	४०७	२८१	३४७	२५०	४६८	१७५	२०३	२२५	४१२
कन रँकाग	१६८	३१७	२७३	३४	२९६	४७७	१६५	२००	२२४	४०२
कत च्पटेपत	२९३	४११	१८४	३४६	२५४	४८५	१७७	१०२	२१३	४१६
कन मकुचन	२९०	४०३	X	३७०	१६१	४५१	१८५	९९	२२२	४०८
कनक कनक	६४८	६५१	६६८	६९१	६६८	६६८	६४३	५६७	९३	६५८
कन दै नोराप्यो	६५१	१६१	८	६५४	६१४	६९७	६४६	X	८१	१६२
कपट सतर	२०५	४२९	२७७	३९१	२६०	३९४	२०४	२५१	७९	४३२
कन की ध्यान	६७	२९६	२७८	१५५	४१०	१९६	५५८	४२७	९९	२९८
कनकी टेरन	६९१	६९६	५६२	५७६	६८४	६१०	६८५	११	६५	७०३
कर उठाय	५०३	३४७	८७	२२९	७९	७८	५९७	२९३	X	३५१
कर के मीडे	४२२	५०५	२२५	४६५	५२७	२५१	४२३	४१२	१०८	५१०
करनजातजोती	२९५	२१५	३९९	३२२	२४७	२८७	२९१	३५९	१०१	२१७
करतु मलिन	५२५	१५२	११६	७१	१०७	१०४	४४१	४५६	७२	१५२
कर मुदरी की	३४७	३५३	X	३८	X	१९०	३३७	२२७	१२०	३५६
कर लै चूमि	४०५	५४२	५३०	४८१	३४४	५३१	३९६	२९३	८२	५४७
कर लै सूंघि	६४६	६६३	६९३	६०५	६४३	५९८	६४१	५९१	९१	६६९
करि फुलेल	६४७	६७६	६९४	६१०	६४४	६९९	६४२	५९०	X	६८
करी विरह	४२४	५१६	२२४	४३२	५२८	२५२	४३२	३९६	१०९	५२१
करे चाह सों	३२	७९	१३५	२००	१३४	१४३	३३	६७	७१	७८
करो ऊँचत	६९३	७०३	५६९	६५३	६९१	६१२	६८७	२२	६७	७०९
कलहन हीं एकत	X	इस दोहे को केवल रसकौमुदीकारने विहारी रचित माना है ॥								X

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्ण कवि की टीका के अनुसार	५ रसकौमुदी के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशती के अनुसार	८ हरिप्रसाद की टीका के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
कहत नटत	५८	६२	१३४	१६२	२७६	३५३	५१	१७४	१०२	६२
कहत सबै कवि	२६४	२४६	४२४	११९	४८१	२१०	२६१	६५४	१०४	२४७
कहत सबै बेंदी	४४५	४१	४०	१८४	३७	१६	४४७	५१४	६२	३८
कहति न देवर	१५	५९५	५८२	६३४	११६	१२०	१५	४५	११९	५४९
कहलाने एकत	५६९	५६५	११२	५३५	५८४	६३३	५११	५०७	११७	५६९
कहा अरगजा	×	×	६१४	×	५८६	६३५	×	×	×	×
कहा कहौं बाकी	२९८	२७७	५२२	४७३	३२२	२७६	२९५	३९३	१०५	२८०
कहा कुसुम	५११	१४५	१११	७८	१०५	१०८	८३२	४५८	७३	१४५
कहा भयो जो	३९७	५०९	×	४८०	३४६	५३०	३४७	३८८	८६	५१५
कहा लडैते दृग	२२७	२८०	५२४	२४८	५२३	३००	२५२	४३८	११०	२८३
कहा लेहुगे	३७३	४४३	२११	४१४	२४७	३९७	३६४	८९	११६	४४७
कहि पठई मन	९५	५४८	२५९	४९४	३४७	५३६	९५	११७	८७	५५३
कहि लहि कौ	५२०	१४१	११०	×	९५	१००	४३५	२६५	११	१४१
कहे जु बच	३९४	४९४	२०४	४२६	४६९	५०९	६११	६०९	१०७	४९९
कहै रहै स्रुति	६०८	६३४	६४७	×	६३६	६८०	६०१	५८२	९७	६४१
कागद पर	४०२	५३८	२३७	४८२	३३३	५२९	३९४	३९०	८३	५१४
कारे बरन	४५	६१४	४९६	३६	१७८	३४६	४६	११८	१२१	६१७

कालकूट दूती	३२२	३०७	६३८	६७९	३९५	२९९	३१४	६०१	९८	३०८
कालिंदसहरा	×	×	×	×	×	७२४	×	६२४	×	×
कितौ न गोकुल	७	२२	३५०	२५८	४३२	८१	८	६२६	५९	२१
किय हायल	५१०	१११	९२	१९४	८७	८५	५२४	५३१	६९	११०
कियौ न चितक	२०८	३८१	१५५	३१८	२३३	४२८	२०७	१२७	३७३	३८५
कियौ सबै जग	५८१	५८१	×	५५९	५९८	५४५	५७४	३२४	९०	५८५
कियौ सयानी	२४४	५४५	२४३	४८३	३५७	५३७	२४१	१२०	७८	५५०
कीजै चित सो	६९९	६९९	५६४	६२७	६९३	६१७	६९३	११९	६३	७०५
कीन्हैं हूं कोरिक	२८०	१७७	३९३	३४	४८४	२२६	२७७	१५५	८५	१७९
कुच गिरि चढ़ि	४८४	९४	७०	२२१	६०	५२	४९७	४९०	७०	९२
कुच ढापन	×	×	×	×	×	७१८	×	×	×	×
कुंज भवन	५५८	३७४	३३४	६२	४४३	३२५	५३९	१५६	१००	३७७
कुटिल अलक	४४२	३७	३९	१७९	२५	३	×	४८७	६१	३६
कुढंग कोप तजि	५७३	५७९	६१९	५४०	५९१	६३८	५६६	३१५	११८	५७५
केसर केसर	११७	३८८	१६६	७५	११२	१०३	४७५	९५	७६	३९२
केसर कै सर	५३५	१३९	१०८	३५	३७१	११७	४३१	४४८	७५	१३९
कैवाँ आनत	३४३	×	×	१२१	४६८	×	३४०	२५९	×	१६९
कैसैं छोटे	५९९	६२४	६५२	६६५	६१५	६६९	५९२	५६५	९५	६५९
कोऊ कोरिक	६६७	७०१	५६६	६४१	७११	५९६	६६२	१६	६४	७०७
को कहि सकै	६९९	६६१	६९२	७००	६३५	६९७	६११	५८३	९२	६६६
को छूट्यो इहिं	६३८	६६४	६९६	५८७	६४५	७०९	६३४	४१	९६	६७७

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन की टीका के अनुसार	६ रसकौमुदी के अनुसार	७ शृंगारसप्तशती के अनुसार	८ हरिप्रसाद की आर्य्याओं के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
को जानै ह्वैहै कहा	२७१	१८८	३०१	१३१	४८२	२९५	२६८	३९९	८०	१९०
कोटि अपराध	केवल रसकौमुदीकारने इसे बिहारी कृत माना है ॥							×	×	×
कोटिजतनकीजै	७५	२८४	४६२	३०८	१९८	३६९	६७	१८८	११२	२८७
कोटिजतनकोऊकरै परै	५९५	२६५	६५० ६८५	६८३	६१६	६६०	५८८	५७७	९४	×
कोटिजतनकोऊकरौ न	४०८	३३०	४७५	२७	५४४	२२५	३९७	४२५	१०६	३३३
कोहरसी	५०९	११०	९४	२३६	८५	८८	४२३	५३०	६८	१०१
कौडा आस	४०१	५२२	२३०	११०	३३९	५१०	३९१	४०५	८९	५२८
कौन भांति	६८८	६९३	५५८	५८२	६८८	६०७	६८२	४	६६	६९९
कौन सुनै	३९०	५११	२१९	४५५	५८९	५२१	३४१	७१२	१०३	५२७
कौं बसियै	२७५	२१९	×	१४०	४८३	२१७	२७२	३५०	८४	२२०
कौंहू सह	३७६	४४७	२९६	३९९	२५६	४११	३६८	५४२	८७	४५१
	इति ककारादि। अथ खकारादि ॥									
खरीपातरी	३६७	४३४	२८१	२५५	२४९	४१८	३५	×	१२९	४३६
खरी भीरहू	५७	६०	४७२	९५	१८७	३५४	५०	२२५	१२२	५९
खरी लसति	४९२	१४९	८०	२२०	६८	६४	५०५	४९२	१२५	१४९
खरे अदब	३६१	४५४	११४	३८३	३७२	४६७	३५२	×	१२८	४५८
खल बढई	२९६	२१६	४००	३२१	१७० ७४८	२८८	२९०	×	१२७	२२४

खिंचे मान	२०२	४६१	३०१	४९५	२६७	४२७	१०१	२५०	१३०	४६५
खिलि खिलन बचन	२१९	३६०	५०२	५२९	५५०	३१३	११६	२०९	१३१	३६३
खुलन मि	४५८	५१	४८	५१	३७	२८	४६९	x	१२४	५३
खौरि पनच	४५३	४९	३८६	१८०	३३	२४	४६५	x	१२३	४८
इति खकारादि। अथ गकारादि॥										
गड़ी कुटुम	४३८	६९	६८	९६	२१३	१०४	४२८	१५९	१३९	६९
गड़े बड़े छ	२७६	१००	३४९ ८६	३६९	३८८	७०	१७८	१०१	१४२	१०१
गाढ़ रचना	५०६	४७	६३४	६९५	६२१	६७३	५८९	६१४	१३४	४६
गति दै गति दै	x	x	x	x	x	७२२	x	x	x	x
गदराने	२४८	५९८	२९	५९५	५६६	१७८	२३९	१७६	१३७	६०२
गनती गन	४३१	५३१	२३५	४३६	५३७	२६०	४२०	४००	१५०	५३८
गली अँधेरी	२२१	३२७	४४२	२६१	१७४	५६३	२१८	२००	१४९	३३०
गहकि गाँस	२००	३८४	१६२	३५२	१६२	४६१	x	९०	१४१	३८८
गहिली गरब	२६९	४४२	२८९	२५०	२५१	४२०	३६०	x	१४५	x
गहैन एकौ	६४२	६७२	७०२	५९६	६५८	७०३	x	५८८	१४६	६७७
गह्यो अबोलो	२११	४३३	२८०	३७६	२२१	३९२	११८	x	१४३	४३५
गाढ़े गाढ़े	४९८	x	१२८	९२	७३	७२	५१२	x	१३५	x
गिरि गरु हाथ	x	x	४८७	x	x	x	x	x	x	x
गिरि तैं ऊँचे	६२६	६१८	६५४	x	६१०	६७०	६१९	६०५	१४८	६२१
गिरै कंपि	५६२	५५८	६०१	५६२	६०५	६३०	५५३	२७१	१५४	५६३
गुड़ी उड़ी	२५५	२१३	३९०	१३३	५२२	३३३	२४६	२९०	१५१	२२५

दोहे	१ लालचंद्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचंद्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार ॥	५ देवकीनंदन की टीका के अनुसार	६ रसचंद्रिका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशती के अनुसार	८ हरिचरनदास की टीका के अनुसार	९ रसकौमुदी के अनुसार	१० अमरचंद्रिका के अनुसार
गुनी गुनी	६१०	६३६	६५९	६८५	६४६	६६९	६०३	५७८	१५१	६४३
गुरुजन	७०९	×	×	×	३५८	१२५	१४	६५२	×	×
गोधन तू	६२९	१७	६७७	६०७	६४७	६९३	६२३	४४	१३२	६६८
गोप अथा	१५७	३०८	१४६	३४४	२८१	४४१	१२५	१४६	१३८	३११
गोपिन के	६५५	५२६	२३२	४८६	३३२	५७१	६५०	×	१४०	५३२
गोपिन संग	१०	१९	५१४	५६	१३	५४८	९	६३७	१३३	१८
गोरी छिगुनी	४९६	१२५	८५	२२७	७२	६९	५०९	५०४	१३६	१२३
गोरी गदका	५४३	५९७	×	×	५६७	१७९	५३४	५२५	१५२	६०१
इति गकारादि। अथ घकारादि॥										
घन घेरो	५७७	५७९	६२७	५४७	५९४	६४२	५७०	३२०	१५३	५८२
घर घर	६०६	६९८	६७४	६७८	६२४	६७९	५९८	३४	५५	६२८
घर घर हिँ	७०५	×	×	६१७	७०६	७२८	६९८	×	१५६	६३४
घाम घरीक	४८	३६३	४७४	१७०	१८०	३४८	८६	×	१५४	३६७
इति घकारादि। अथ चकारादि॥										
चकी जकी सी	४२९	२०१	३७३	११९	५३८	२५९	४१८	३५८	२२७	२०३
चख रुचि	२७९	२३०	४१७	२२६	४९०	२००	२७५	५०५	२२५	२३२
चटक न छाँ	५९१	६१९	६४५	६९०	६११	×	५८४	३६२	२२८	६२२

चमक चमक	२४५	३३८	३१२	२९०	५३९	१५३	५३६	६५३	२०८	३४२
चम चमात	४४६	८२	५६	११९	४२	३०	४८१	४८०	२२६	८१
चम्पकली	x	x	x	x	७९	६८	x	x	x	x
चलत गैर	२४६	१९३	३६५	१३४	५२०	३५८	२३७	१६९	२०६	१९५
चलत चल	२३३	४८०	१८७	४८५	३१५	४९९	१२०	४०२	२१०	४८४
चलत रैत	३३९	४७५	x	५२	२१६	३८१	१३३	x	२२०	४७८
चलत पाप	७०२	६२७	५८७	६१२	७०२	७२४	६९६	x	२२४	६३१
चलत ललित	५५५	३६४	२२	५४५	५६१	x	५४६	x	२२१	३६५
चलन न पा	४९७	२०४	५७५	२२२	७४	७१	५२१	४९३	२१८	१०२
चलित ललित	x	x	x	x	x	५५९	x	x	x	x
चली अली कहि	x	x	५१२	x	x	x	x	x	x	x
चले जाहु	६२२	६७५	७०६	६०९	६४२	७०१	६१५	६००	२१४	६८१
चलो चले	३७४	४४५	२९३	४०८	२५२	३१९	३६५	४४२	२१२	४४९
चाले की बाते	२९	३११	१३२	२३	१३७	१४२	२१	४७	२१९	३१९
चाह भरी	१३७	४८३	२५४	४२१	३०९	५०१	१३१	३७१	२०९	४८८
चितई लल	५४	१७६	३८४	९८	१८५	१६९	९३	१९९	२०७	१७८
चित तरसत	१२८	२२३	४०५	५२२	x	२२५	x	४१३	२१६	२२५
चित रैं चितै	६२१	२९५	६३७	६६१	६४१	६८३	६१४	६१६	२१५	२९७
चित चितु	६५३	६४९	५३४	६२०	५७०	५६८	६४८	६१९	२२२	६५५
चितवत जित	५१	६०५	४५२	१६९	५५२	५५५	९०	३६७	२१७	६०९
चितवन रू	३५८	४२३	३०६	३९०	२४४	३९३	३४९	x	२११	४२८

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्ण कवि के ग्रंथ के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद की आर्यागुम्फ के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
चितवनि मो	३१२	२५५	४३१	९४	३८०	२७४	३०४	४०७	२०३	२५६
चित वित	२७८	२३३	४१२	१५३	१७१	२०१	२७५	६२१	२२३	२३५
चिरजीवौ	२२६	८	५८९	३८६	४९७	५३१	२२३	×	२०२	८
चिलक चिक	३१४	२५१	४२८	१०५	३८३	१७२	३०६	४४६	२०५	२५२
चुनरी स्याम	३१८	२५७	४३२	९०	३८४	३२९	३१०	५१३	२०४	२५८
चुवत स्वेद	५८८	५९२	६०८	५६४	५८०	६२०	५८१	३०१	२१३	५९६
	इति चकारादि। अथ छकारादि॥									
छकि रसाल	५६५	५६०	६०३	५३०	५७३	×	५५७	३०२	२३९	५६५
छनौ नेह	१२७	५०४	२१३	४५०	३१८	×	१३६	४१६	२३८	५०९
छप्यौ छबी	४९०	११९	७६	१९३	६६	५९	५०३	४३६	२३२	११८
छप्यौ छपा	१५८	३१३	१४९	३४१	२८७	४४७	१५३	१४३	२३६	३१६
छला छबी	१११	१७९	३१५	२२	१७५	४२९	११०	×	२३५	१८१
छला परौ	११६	४७५	३०३	३७५	२२०	३९०	११५	१३९	२३४	४७९
छाले पड़वे	५३९	१५९	५९	२४४	१११	९३	५३०	५०७	२३१	१५९
छिन छिन मैं	३१३	२५६	×	१४६	३८१	१७३	३०५	४०८	×	२५७
छिनक उ	११०	३७९	३२७	२८	१३८	४३१	१०९	२१६	२४५	३८३
छिनक च	२५४	५६९	६१७	३३३	४५५	३२६	२३५	२९१	२३३	५७३

छिनेकछबीले	३३६	२६५	२४	२९५	४३७	३११	X	२४८	२४४	२६७
छिरकैनार	५५४	३६७	६१०	४९७	५५८	३८६	५४५	२६७	२४०	३७०
छुटतनमुठीगु	५६१	५५५	५११	५५१	६०३	X	५५२	२७०	२४१	५६१
छुटनतपे	३५३	२१७	४०१	१३१	४७२	२२८	३४४	३६६	२४३	२१८
छुटीनसिसु	२७	२५	११०	८	२२१	१२८	१८	५४	२२८	२३
छुटे छुटा	४४१	३६	३५	१७८	२४	११	४५३	४८५	२३०	X
छुटेन लाज	३४	७८	५१२	११	१३५	१४४	३४	२१५	२३७	X
छै छिगुनी	२२५	२३१	४१८	१७१	१३२	X	२२०	X	२४२	३१६
		इति छकारादि। अथजकारादि॥								
जगत जना	६७० ७२६	६७१	५४५	६५१	६७१	X	X	५	२५०	६८४
जग जगल	५०६	१०७	१०	२३३	८३	८३	५२०	५०१	२५२	१०६
जटित नील	४७२	८५	६०	२१०	४८	४३	४८५	५२८	२५३	८४
जदपि नाहिं	७२१	३३१	३१३	२८१	X	१५२	X	६६	२५५	३४३
जदपि चवा	६५	८४	३५४	१६७	११३	३५७	५६	२३४	२५१	८३
जदपि तेज	१५१	५५०	२४६	४९६	३५५	४४१	१४८	५६३	२७१	५५५
जदपि पुराने	७१२	६५९	X	६३३	६५४	X	X	X	X	X
जदपि लौंग	४७३	८७	६२	२११	३७५	४४	४९६	५२१	२८६	८६
जदपि सुन्दर	३२७	२२५	२६४	६०७	४३१	३०८	३११	६१२	२६७	२२७
जदपिहै सोभा	X	७१३	X	X	X	७२१	७००	X	X	X
जनम जलधि	६४१	X	७०३	५१५	६५७	७०२	६२७	५८७	२७१	६७८

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचंद्रिका के अनुसार	४ कृष्णदत्त कवि के ग्रंथ के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसादकृत अनुवाद के अनुसार	९ रसचंद्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
जपमाला	६६९	६८०	५४६	६४६	६७०	२९८	६६३	९३	२४८	६९५
जब जब वे	४२०	५१०	२१८	१४८	५०६	२३१	४००	३८७	२८५	५१६
जम करि	६६८	६७८	५४४	६४०	६६९	५१७	६६४	३	२४९	६९६
जरो कोर	४९१	१३१	७८	१०६	६७	१२३	५०४	५१२	२५६	१३१
जस अपजस	२६८	२३७	४१६	१२५	१६९	२२१	२६५	२४७	२५८	२३९
जहाँ जहाँ ग	४१२	७	४१५	१८९	५०५	२३४	४०२	३४६	×	६
जाके एको	६१८	६६९	७००	६८४	६९८	६८५	६१०	५९५	२८०	×
जात जात	६७६	६८९	५५६ ६७३	६४२	६७६	६०३	६७०	×	२८६	६९६
जात सयान	२७६	२३६	४१३	३२	२९७	२२२	२७३	६२२	२७४	२३८
जात मरी	२४९	५३२	२३८	×	३१२	३४०	२४०	१२४	२६१	×
जा मृगनयनी	७१६	३८	×	×	×	७१७	×	×	२८१	४४
जालरंध्रमग	३२६	२२४	५१७	५२७	४२७	२४९	३१८	३०६	२६८	२२६
जिन दिन दे	६३१	६५५	६८८	५९२	६४८	६९४	६२५	५९३	२७८	६६२
जिहिं निदाघ	३८३	५२३	२३१	४३४	४७१	५२४	३७४	३३२	२६२	५३०
जिहिं भामिनि	१७५	४२२	१९२	३९९	१४८	४८१	१७१	८८	२६४	४२७
जुज्यौ उझकि	५५८	५५६	×	५६६	६०६	६२६	५४९	२७३	२६६	५६०
जुरत सुरत	×	×	×	×	×	×	×	६१	×	×

जुरे दुहूनि के	९२	६६	३४९	२६४ ४०६	१८९	१९६	५४	२२३	२७२	६६
जुवति जोन्ह	१६०	३१५	२२१	३४३	२८६	४४६	१५७	४२	२५७	३१८
जेतन होत	४७०	२०८	३०८	१४४	४६	२४१	४८६	३५३	२५४	२१०
जैती संपति	५१३	६२२	६४८	६७६	६१३	६८९	५८६	४९५	२८४	६२५
जोग जुगति	४५७	२५४	४६	२०४	३६	२७	४६८	४८	२४६	×
जो चाहै चट	३६५	६४४	६६५	६५७	६१८	×	३५६	५८१	२७५	६५०
जो तिय तुम	२१४	४०७	१८८	३८५	१५७	४५६	×	८५	२६३	४२१
जोन सुक्ति पि	५४७	१८६	३५९	६१४	३२९	१२४	५३८	×	२६०	१८८
जोन्ह नहीं	४२०	५११	×	६८९	×	२४५	४१०	४०४	२८३	५१३
जो सिरधर	६२४	६७४	७०५	६६०	६३१	६८२	६०७	×	२८९	६८०
जौलौं लखौं	२०४	२३१	×	२५८	१६८	२२८	१०३	२५३	२८७	२३३
जो वाके तन	३०८	२७६	५२१	४८७	१३१	२८२	३०३	५४०	२८८	२७९
ज्यौं कर सौं चु	५४१	६०७	३०	५०४	५६५	×	५३२	२१४	२७०	६११
ज्यौं ज्यौं आवति	१५४	३१६	१३८	१३७	×	४३८	१५१	१९९	२६९	३२०
ज्यौं ज्यौं पट	५६३	५५९	६०२	५५८	६०९	×	५५४	२७२	२६५	५६४
ज्यौं ज्यौं पावक	१४८	५५२	२७	×	३५४	५४१	१४५	६८	२७६	५५७
ज्यौं ज्यौं बढ़ति	५७९	५८०	६२८	५५०	५९६	×	५७२	३२३	२७७	५८४
ज्यौं ज्यौं जोबन	२२	१०५	१२९	१६	१२४	८२	२३	५१	२७३	१०४
ज्यौं ह्वै हौं त्यौं	६९२	७०२	५६७	५८०	६९०	×	६८६	२१	२५१	७०८
		इति जकारादि। अथ झकारादि ॥								
झटकि चढ़ति	२८५	१९५	३६७	१४१	४९७	२८६	२८२	१५७	२९१	१९७

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद की टीका के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
ठीनेपटमे	४८२	१३६	६६	१८२	५६	६१	४९५	४४२	२९२	१३७
ठुकि ठुकि	१५३	३१७	१३९	३३८	२७७	४३९	१५०	१९६	२९०	३२७
ठूठे जानि	४६१	५८	५२	१६८	×	३५	४७२	४७७	२४७	५६
		इति ठकारादि। अथ ढकारादि॥								
ढटकी घोई	२४३	६४७	३२	५०१	४६५	३२८	२३८	६४२	२९४	१३०
ढनिहाई	१२४	२६९	१४१	३३४	२५२	४३६	१२०	×	२९३	२७१
		इति ढकारादि। अथ ढकारादि॥								
ढाढी मंदिर	७१४	२९८	×	×	×	३६३	×	×	२९५	३००
		इति ढकारादि। अथ डकारादि॥								
डगकुडगति	३१५	२५०	×	१००	×	२७०	३०७	१७७	२९७	७०
डर न टरै	२७७	१९४	३६६	१३२	४७७	२४८	२७४	३३५	२९९	१९६
डारे ठोढी	४८५	९६	७२	२१८	६१	५१	४९८	४४२	२९८	९४
डिगतपानि	६६१	१३	४८८	२६३	१६७	×	६५६	×	२९६	१३
		इति डकारादि। अथ ढकारादि॥								
ढरे ढार	२६३	२००	३७२	११३	११५	२११	२६०	२७८	३०३	२०२
ढोप परी	११८	४७३	३०२	५२१	१८१	४१७	११७	५४४	३०२	४७७
ढीठो दै	२८	१७४	४९९	५२३	५४७	१४०	२९३	२०७	२००	१७६

छोटीलाई	२३७	२५४	९९	२२७	४४०	३१२	३२८	६९	३०१	२९६
				इति ढकारादि। अथ तकारादि॥						
तच्यो आँच	४२८	५२४	२२९	२६७	५३२	२५५	×	४१५	३२८	×
तनन अतान	७०१	१८९	×	४६८	×	२७५	×	३१६	३३९	१९१
तन तीरथ	६८२	४	५८०	३१२	९०	५८२	५७६	२८	३०४	४
तनी सांक	४२१	१९९	३७१ ४८५ ६३९	२७७	५१९	२४७	४१२	×	३३२	२४१
तनक कूठ	५४८	३		×	५४०	१५४	५३७	×	३१५	३३४
तन भूषन	५१४	१२८	३	२५३	२२५	११५	४३३	६३७	३३३	१२७
तन्त्री नार	५९७	६१७	६४३	७०२	५४१	६७१	५९०	२५८	३२७	६२०
तपन तेज	५८३	५८५	६३२	५५४	६००	६४९	५७६	३२८	३२६	५८९
तन कुरसी	४०३	५४१	५२९	४८३	३४३	५२८	३९२	२९८	३३०	५४६
तरसन	९९	२२६	६७	२१४	२९०	५०	८१	५२२	३१२	११४
तरुन कोक	१८०	३८७	१९५	३६०	२५१	४८७	१२७	७८	३२०	३९१
तिय कंत	४६७	७६	×	६३६	४५	३७	४७८	४७५	३११	७५
तिय तन	५७२	५६७	६१५	५४४	५८७	६३७	५६५	३१४	३२५	५७१
तिय लिपि	१८	२५	१२१	७	१२२	११९	१९	५५	३०५	२४
तिय निज	२११	६१०	२४१	४२९	१४१	४३२	२७३	३८२	३३७	६१३
तिय सुख	४४८	४६	×	१८३	२८	१९	४५९	५१६	३०६	४३
तीज परब	३३२	९३	५	३१६	४३५	३८५	३२५	६२९	३२३	१३२
तुम सो तिनि	२०९	४६७	२६२	३१४	२३४	४३०	२०८	×	×	४७१
तुरत सुरत	१६९	३९३	१६९	३५७	१५६	४७८	१७६	८२	३१९	३९८

	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
दोहे	लालचन्द्रिका के अनुसार	हरिप्रकाशटीका के अनुसार	अनवरचन्द्रिका के अनुसार	कृष्णदत्त कवि के ग्रन्थ के अनुसार	देवकी नन्दन टीका के अनुसार	संस्कृतटीका के अनुसार	शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	हरिप्रसाद जी के अनुवाद के अनुसार	रसचन्द्रिका के अनुसार	अमरचन्द्रिका के अनुसार २
तुहूँ कहति	९९	४५९	२९९	४०९	२६५	४०२	९९	२४४	३२१	४६३
तू मन माने	७८	२८६	२६७	६६२	२३७	५८४	६४	५५७	३०९	२८९
तू मोहन	३२४	२८१	९५	३३६	४२५	३०३	३१६	५४९	३३४	२८५
तू रहि सखि	२३२	२८९	९७	२४६	४१४	२९६	२५०	६३०	३२९	२१९
तेरी चलनि चितौ	×	×	५०५	×	×	×	×	×	×	×
तेह तरेरौ	९९१	३८५	१६३	३५४	३७०	४७२	१८३	९२	३२२	३८९
तो तन अ	४३६	१६६	३९१	२६०	११०	११८	४५१	३६९	३३६	१६७
तो पर वारौं	३२३	२५९	१०	३३५	३२४	३०४	३९५	५३६	३३५	२६१
तो रस राच्यो	३६८	४४०	२८८	२५६	२५०	४१९	३५९	×	३२३	४४३
तो लखि मो	४८६	९७	७३	६३८	६२	५३	४९९	३५७	३१०	९५
तोही को छुट	१०७	४५७	२७६	४०७	२६८	४०१	१०६	२४८	३२४	४६२
तोही निरमो	३५२	२४३	२६५	३२५	३४०	४९३	३४३	६३३	३१७	२५१
तो अनेक	६८४	७०६	६७५	६४९	६९९	६०४	६१८	२३	३२८	७१२
तो बलि ए	६९६	७०८	५७२	×	६९४	६१५	६९०	३०	३०७	७१५
तो लगि या	६७९	६८३	५४९	६५२	६८०	५९२	६७३	२८	३०८	६८९
सौं सौं प्यौ सि	५३३	१६२	३९०	२०७	१०९	११९	४४९	४५७	३१४	१६३
त्रिवली नाभि	४१	२६७	३९२	९९	१८२	१६६	४३	७७५	३९८	१६८

			इति तकारादि। अथ थकारादि ॥							
थाकी अन	३०६	९८०	३८२	५०६	५००	२७४	३०१	×	३३९	२४२
थोरेई गुन	६९०	६९५	५६१	५७९	६८३	६०९	६८४	१०	३३८	७०२
			इति थकारादि। अथ दकारादि ॥							
दच्छिन पिय	२०२	४६३	६४०	३२९	३६१	५४३	२९८	६१८	३६७	४६७
दई निगोरे	२००	४५८	×	४२२	२६४	४०४	९८	२४५	३७२	४६१
दिन दस	६३५	६६७	६९८	६७१	६५१	७११	६२९	५८५	३५६	×
दियौ अरग	२३३	२९०	९८	२४७	४२५	२९७	२५१	६३१	३५४	२१२
दियौ जु पिय	५६०	६५४	५९८	५५६	६०८	६२५	५५१	२६८	३५०	५५९
दियौ जु सीस	६८६	२७९	५४२	६२६	६६६	५८८	६८०	४३	३५२	२८२
दिसि दिसि	५६६	५२८	२९५	५३३	५७४	६२३	५५८	२०७	३७४	५३४
दीठन पर	५२८	१५१	११५	७६	९९	१०२	४४४	४५४	३७५	१५१
दीठ बरत	५९	६५	×	१६३	१८८	२७८	५२	२२२	३७६	६५
दीप उजेरे	३१	३३३	३०८	२८८	२२३	१४९	३१	६२	३७०	३३५
दीरघ सांस	६८५	६९२	५५९	६२५	६६७	५८९	६७९	१५	३४२	७०
दुख या इन	३५५	२४४	४२२	२९	१७२	२९५	३४६	५५६	३६८	२४५
दुनते चित	३४६	२२६	४८२	६६३	४०५	१८९	३३६	२२९	३५७	२२८
दुरति न	४९९	१९४	८२	२२३	७५	७४	५१३	४९६	३४४	७१३
दुरै न निघर	९३	४२१	१९१	३६८	१४४	५४९	९३	६३४	३४९	४२५
दुसह दु	६०५	६३२	६५५	७०४	६२३	६९०	५९१	५७९	३५३	६३९
दुसह बिर.	३९३	५८५	२९६	४२७	५३३	५१३	३८२	४२४	३४८	४९०

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ [illegible] के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
दुलह सो	११२	६४	२६०	३२०	२२८	४३३	१११	२३०	३६२	१६५
दूरि भजत	६७१	६८८	५५४ ६७२	६४८	६७५	६००	६६९	३९	३४३	६९५
दूरौ खरे	६४	४७	३५२	१६५	१४१	३५६	५५	२२४	३६९	७६
दृग उर	७७३	१९२	३६४	६३७	४८६	२१६	२७०	३३३	३६४	१९४
दृग थिर	५४२	६०६	X	५०३	५६४	७१९	५३३	२२९	३५८	६१०
दृगनि ल	४६२	५७	५१	१०९	३८	३४	४७३	४७४	३४१	५७
दृग मीचत	२१३	३५१	३३१	५१९	४१९	३४३	२०८	२६३	३६०	३५४
देखत बुरे	२९७	२६४	५२०	४७१	३२१	२८९	२९३	३९७	३६३	१६६
देखत कछु	४२	२७०	४३३	११७	१६५	२५०	४४	२८०	३५५	२७३
देखो सोन	५९७	१३२	१०५	६९	९३	९९	४३७	४५३	३४५	१३३
देखौ जाग	३४४	२१२	३८८	८७	४०२	१८६	३३१	६४४	३६७	२१४
देख्यौ अन	४४	१६८	३५५	१०४	१८३	१६५	४७	१६३	३४६	२७१
देवर फूल	४६	६०९	४५३	६२२	१७७	३४७	४८	१६४	३६६	६१२
देह दुलहैया	२५	३०	१२४	X	१२३	१३७	२५	५७	३४०	२९
देह लग्यौ	३२०	२२०	X	६६४	३८६	१८२	३१२	१६७	३५९	२२१
दोऊ अधि	३६२	४३१	२७९	३८७	२६२	४१४	३५३	२४१	३७१	४३४

दोऊ चोर	२२६	३७०	४४५	५२८	४२०	३४२	२२०	२६६	३६१	३७३
हैन सुधा	२५०	५२७	×	५६९	४३८	३३९	२४१	×	३५६	५९१
			इति	दकारादि।	अथ ध	कारादि॥				
धनि यह	७९	५८८	×	५७०	४३९	३७३	६९	×	३७९	५९२
धुनि सुनि राहित	×	×	४७६	×	×	×	×	×	×	×
धुरवा हौं	३८६	५५२	६२०	५४१	५२६	५२६	३७७	३१०	३७८	५७६
ध्यान आनि	३४८	५९०	३०१ ४८९	२६५	४०८	२९४	३३९	३२०	३७७	५९५
			इति	धकारादि।	अथ नकारादि॥					
नई लगनि	२८४	१९७	३६९	३२	४९६	२८४	२८०	१५८	१८०	१९९
न करन	१८१	४०६	२८०	३६५	२९०	४६०	१८१	९७	१८४	४११
नख रेखा	१७२	४०८	१८२	३५९	२९५	४५९	१६९	८३	१८५	४१३
नखसिख	२६७	२३८	४१७	२१६	३९३	२२३	२६४	३४४	२०२	२४०
नजक धरत	५३८	१५७	९८	२४३	११३	९२	५२९	×	१६२	१५८
नटन सीस	८५	३७५	४६८	३०५	२०२	३७८	७५	१८४	१७३	३७८
नन्द नन्द गोविन्द	×	७११	×	×	×	×	×	×	×	×
नभ लाली	१५२	४६२	१५२	३३७	२७९	४५०	१५९	२२३	२७५	४६६
नये बिरह	१३८	५०३	२२४	८७३	३१३	५०२	१३७	४१०	१९४	५०७
नये बिससिये	५९१	६११	६४७	७०१	६१२	६५६	५८५	×	२०१	६२४
नर की अरु	६२३	६४२	६६३	×	६६४	६८१	६९६	५७५	१८९	६४८
नव नागरि	३१	३१	१२६	१७	१२५	१३३	२२	५२	१५६	३०
नहिं अन्हा	५३	६००	६४८	५०६	५५३	५५४	९२	१९०	२७६	६०४
नहिं दीकोन	×	×	३१४	×	×	१५५	७०१	×	×	×
नहि नचाय	१०६	२५३	१६०	९७ ३८७	३६८	४०६	२०५	२४९	१८६	२५४

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णदत्त कवि के ग्रंथ के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगार सप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद कृत अनुवाद के अनुसार ॥	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमृतचन्द्रिका के अनुसार
नहिं पराग	६३०	२६८	६८४	३	६६१	४३०	६२४	५०	१९०	२७०
नहिं पावस	६२९	६७०	७०१	५८६	६५६	७०८	६२५	५९४	१९८	६७५
नहिं हरि	३४१	३२२	×	५५	४४६	३२७	३३२	५४७	१७४	३२५
नाक चढ़ै	२३४	३००	४६६	५२६	३१०	५६१	२२४	२७८	१९१	३०२
नागरि बि	३३१	२६६	६९३	६०८	४२९	७०६	३२३	×	१९८	२६८
नाहिं अचानकौ	५०७	११	३४२	४९३	५०२	३८५	३१८	१२२	१५८	९१
नाम सुनत	७०	३०२	×	४७	२१४	३६५	६१	६४	२७०	३०५
नावक सर	२३८	८०	३५३	१५४	३७९	१७६	२२९	१९२	१६६	७१
नासा मोरि	४५४	४८	३८५	१९७	३४	२५	४६४	१६८	१६१	४७
नाह गरज	६६०	६३७	५३२	५८५	२०	५७५	६५५	६३२	१९२	६४४
नाहिन ये	५६६	५६४	६११	५३७	५९३	६३२	६५०	३०४	१८७	५६८
नाहिं नहीं	२४७	३४९	५०७	×	२९३	३३६	२३९	१२८	१९५	३५२
निज करनी	६९८	७०५	५७१	५८४	६९७	६१४	६९२	२५	१६३	७११
निज [illegible]	९	९	५७८	३१०	११	५४७	१०	२३६	१५७	९
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	४४७	५२९	२५३	४१५	४२०	१९९	५२०
[illegible]						[illegible]	[illegible]	२०८	१९६	३६४

निरखत	३५४	२२८	४०२	४०३	३५८	२२९	३४५	३६७	१८१	२१९
निसि अंधि	१६१	३२२	१५८	३२९	२९४	४४२	१५८	२४५	१६८	३१५
नीकी नई	६७०	६९१	५५७	५७७	६८७	६००	६८१	२	१६४	६१८
नीकौ लसत	४४५	३९	३८	१८१	२६	१४	४५६	५२०	१६०	४५
नीच हिये	५९४	६२६	६४९	६८२	६१७	६५१	५८७	५९६	×	६२६
नीचीयै	४६५	७५	३५	×	४३	१६८	४७६	४७६	१७८	७४
नीति नीति	२०८	३०२	३२५	२९३	४५२	१६०	२०४	२८५	१७७	३७५
नेह लग्यो हिंग	५	×	४०३	×	×	×	×	×	×	×
नेकु उतै	३५७	३५७	१४२	२६९	२३१	३३५	३४८	४९	१९३	३६०
नैकु न जानी	३०१ ४३३	२७८	५२३	४६६	३२३	२५४	२९७	३९४	१८३	२८१
नैकु न उरसी	२९३	५१३	२२१	४४४	३२०	२६१	२८९	३६५	१९७	५२३
नैकु हसौंही	५८३	१८३	६९	२१७	५९	५८	४९६	४३२	१६७	१००
नैकौ उहि न	३३८	३०३	२०	१४५	४४९	२९२	३३०	३७१	१६५	३०६
नैन लगे	७७	२२७	५०६	×	१६९	३०७	७१	१८६	१७९	२२८
नैना नैकु न	२६२	२४०	४२९	१२७ ४११	२६९	२०९	२५९	३४५	१७१	२४१
न्हाय पहिरि	५०	६०४	४७३	४१	५५९	३५१	८९	१९७	२००	६०८
				इति नकारादि।	अथ पकारादि ॥					
पग पग मग	५२३	२१३	९३	२३८	९०	८६	५२७	५२०	३८३	११२
पत रँग रँग	५४२	१३४	४	१८२	३१	२१	४६३	५११	४१७	×
पत कै हिंग	९०	३१०	४७१	३०१	२११	३८१	८५	२१८	३८९	३१३
पट पाखै	६३४	६६५	×	६०४	४००	७१३	६३८	५१०	४०८	६५६
पट सौं पौंछि	१७४	४१९	१९०	३५८	१४७	४८४	१७०	८६	४००	४१३

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अंकानुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अंकानुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अंकानुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ रसकौमुदी के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
पतवारी	६७२	६८६	५५२	×	६७३	५९५	६६७	३५	४३०	६९३
पतिऋतु	३५९	४२८	×	६९७	२४५	६५०	३५०	६०७	४०४	४३०
पति रति की	३६	३३७	३११	२८४	४५०	१४८	३६	१४८	४१२	३४१
पत्राही तिथि	४८९	१०२	७५	×	६५	५८	५०२	४४७	४०९	९९
परतिय दोष	६५२	६३९	५३६	६११	५७१	४७१	६४७	×	४१२	६४६
परसत पौं	४३९	३०४	४७९	१५६	५१०	२३७	४२७	३०८	४२२	३०७
परयौ जोर	२०७	३४०	३१५	२१८	५४२	१६३	२०३	२४०	३८८	३४४
पलन चलै	६९	२९९	४६५	१३६	४११	३६१	६०	३९९	३९६	३०१
पलनि प्रगटि	४२६	४८७	१९९	४४०	५३०	२७८	४१६	४१८	३९५	×
पलनि पीक	१६५	३८३	१६१	३५०	२९३	४८८	१६२	७७	३९७	३८९
पलसौहैं	२७३	४१०	×	३४५	१४६	४८०	१६८	×	३९९	४१५
पहरत ही	४९३	१४५	७९	२७०	६९	६५	५०६	४५९	३९१	१४४
पहिरन भूषन	५२६	११६	१०३	७२	१०६	१०३	४४२	४५५	३९५	११५
पहुचति उरि	६२	६८	३४८	३०	१९०	३५५	५७	१६५	४१५	६८
पाइ तरुनि	६४४	१२९	६८२	५९०	६६०	७०५	६३९	६१३	४०६	१२७
पाय महावर	५०८	१०९	९५	२३५	८६	८७	५२२	५०२	३९४	१०८
पायलपाय	७१८	४३	६७९	५५६	६३२	२३	६२०	६०३	३८१	४०

फाग़ों नीर	२६	६११	३६८	३८०	३३१	१२७	१६	६४३	३९०	६१४
पानक कर	३८७	५७०	६१८	४२५	२८८	५२०	३९८	३०९	४०३	५७४
पानक सों	२७०	३९८	२७४	३५३	१४५	४७९	१६६	९१	४२१	४०३
पानरा कठिन	३९९	×	६२२	×	×	५२६	३८९	×	×	×
पावरा घन	५७१	५६८	६२६	५३९	५९३	६३६	५६४	३०८	४०२	५७२
पिय को ध्यान	३४९	२०२	३२४ ४२०	४७७	४०९	१९५	३३८	१५२	४११	२०४
पिय लिय सों	४७८	९९	४४	२९२	५२	५६	४९१	४४५	३८६	१७
पिय पानि	१२३	४९६	२०६	४२४	११८	४३७	१२१	१३८	३९३	५०१
पिय निकु	३५	५३६	२६	६७७	३१०	१४५	३५	४३३	३९२	५४३
पिय मन	३२५	२६७	६३६	२४९	४३०	३०९	३११	६०२	४०७	२६९
पीठ दिये ही	५५९	५५३	५९७	५५७	०७	६२८	५५०	२६९	४०१	५५८
फूले फूली	७१	२८५	४६३	४२	१९५	३	६२	१८२	४१८	२८८
फूस मास	१३१	४७७	२४९	३९	३०	४९८	१२४	१०८	४०५	४८१
प्यासे दुपहर	६०१	×	६६६ ६४४	५९९	६२२	६७४	५४४	३०६	४९९	६३८
प्रगट भये	७००	६९७	५६३	×	६९२	६०२	६९४	९२	३८२	७०४
प्रगट्यौ आ	५२७	४८६	१९८	४५१	५३१	२५६	४२७	४३०	३९४	×
प्रतिबिंबित	७०४	६३०	५८५	६११	७०८	७२६	×	×	४१६	६३६
प्रफुला हार	५४४	६९६	५०२	५५	५८	१७७	३५	२९२	४९०	६९०
प्रलय करन	६६२	१२	५८३	६३३	७	५७७	६५७	×	३८०	९२
प्रान प्रिया हिय	१६१	४०४	२७८	३६२	२९४	४७०	१६७	९४	३९८	४०९
प्रीतम दृग	२११	३५२	३३२	५२०	४१८	३४	२०७	२६४	४१४	३५५
प्रेम अडोल	९२	२२२	४१७	४४	१९६	३६४	६३	३५४	३८७	२३३

इति पकारादि ॥

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन-टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशती के अनुसार	८ हरिप्रसाद की आर्या गुम्फ के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
फिरत जु अट	२८९	४१६	१८७	३३०	२९८	४५२	१८६	७६	४२९	४२०
फिरि घर कौं	५६७	५६२	६०५	५३१	५७५	५१५	५५९	×	४२८	५६७
फिरि फिरि चित	२८१	१३८	३८७	×	४२७	२०३	२७८	३३४	४२४	१३८
फिरि २ दौरत	४६३	५९	५३	५०	२१५	३८	४७४	४८२	४२३	५८
फिरि फिरि बिल	९६	६४१	४५६	५४	२१६	३८२	×	२१	४३०	२७८
फिरि फिरि बूझत	४१९	२४२	४२१	१५१	५१८	२४६	४०९	१६१	४२५	२४४
फिरि सुधि दै	३९१	५७८	२४०	४४१	५३५	५११	३८३	×	४२७	५८१
फूली फाली	१५५	३१०	२६९	२५२	२८०	४२४	१५२	५५०	४२६	३१३
फूले फदकत	४६६	८३	५७	१७१	४७	३६	४७७	४६९	४३२	८२
फेरु कछू	३१९	१८२	३५७	९३	३८५	१७१	३११	१९२	४३१	१८४
			इति	फकारादि।	अथ	बकारादि॥				
बड़े कहावत	४९४	२८२	९६	२२५	७०	६७	५०७	४९९	४३८	२८४
बड़े न हूजै	६४९	६३५	६५८	६६८	६२७	६६७	६४४	५६६	४५५	६४२
बढ़त बाढ़ ते	६२४	६४३	६६४	६७२	×	६७०	६१७	५७६	४५६	६४९
बढ़लि निक	५५६	३६२	२१	२२८	५६२	५६०	५४७	३७५	४६१	३६६
बतरस	२५४	३५६	३३३	५१४	४५९	३३१	२४५	२७७	४६७	×
बधू अधर	२७२	२३२	४११	१४७	४८५	२९९	२६९	६४६	×	×

नन नन कों	२७२	२३२	४२१	१६७	४८५	२११	२६१	३४३	४७१	२३४
नन नाटनि	२१२	५२७	५१४	५३२	५७६	५१४	३८४	४२२	४७६	५३३
नन्दु भये को	६८९	६१४	५६०	५७८	६८६	६०८	६८३	९	×	७०१
नर जीते सर	४६०	५५	४९	२०२	४०	३२	४७१	४७३	४३३	५४
नरजे दूनी क्के	५५०	३६९	५५ ५९	५४६	×	६५३	५४१	२३५	४७२	३७२
नरन नास	४७६	९१	१०२	७६	५७	४९	४८९	४६४	४७०	१५३
नासि संकी	२१२	×	३८० ४५५	४३१	४१५	२६७	२८८	३८६	४४४	२८७
नसे नुराई	६०७	६३३	६५६	६८६	६२५	६५८	११९	५८०	४७८	६४०
नहकन रहिं	२३१	२७३	३३०	३८०	४१३	२१८	×	×	५५८	२७५
नहकि नढ़ाई	२७०	६५८	६७१	५१३	२५२	६८८	३६२	५७२	४५३	६६५.
नहके सन	३५६	२४५	४२३	४६	२१२	२१२	३४७	२५५	४७९	२४६
नहधन लै	६५४	६१२	५३५	६२१	५६९	×	६४९	२१३	४६०	६१५
नाढ़त तोउर	२३	४७२	१३३	१३	१२६	७३	२४	४१४	४३७	४७
नाम तमासे	७११	३५८	५००	५२७	५५१	१४१	२१५	२१०	४८१	३६१
नाम नाहु	१४२	५४४	२५७	४९४	३४९	५३५	१३९	११९	४६५	५४९
नामा भामा	२३५	५७६	६२४	४२३	३०७	४१६	१२९	११४	४६३	४८७
नारन को नुरका	×	×	×	×	१६	×	×	×	×	×
नाल नाहा	१२	३८६	१६४	५८	१६०	५५१	११	२०५	४५०	३१०
नाल छवीली	५२४	१५०	७	८४	९८	११३	४२९	४६०	४४१	१५०
नाल नेलि	२१६	२८७	५८५	४६९	३१४	२८३	२१२	५४१	४६२	२१०
नालम नारे	२०३	४६८	५१३	२८३	३६२	१४४	११९	२८६	४५९	४७२
निकसत नव	२८४	५२८	६२६	५६५	४७०	५१७	३७५	×	४५२	५२४
निझुरे जिये	१४७	५५१	२४७	४९५	३५२	५४०	१४४	२३२	४६६	५५६

दोहे	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
	लालचंद्रिका के अनुसार	हरिप्रकाश टीका के अनुसार	अनवरचंद्रिका के अनुसार	कृष्ण कवि की टीका के अनुसार	[illegible] की टीका के अनुसार	संस्कृत टीका के अनुसार	शृंगारसप्तशती के अनुसार	हरिप्रसाद के अनुवाद के अनुसार	रसचंद्रिका के अनुसार	अमरचंद्रिका के अनुसार
बिथुरयौ जावक	१९५	४७१	५९१	३७८	२१९	३९१	११४	१३७	४७४	४७५
बिधि बिधि कै	२५३	४३९	२८७	३९५	×	४१०	२४४	×	४४८	४४२
बिनती रति	२०९	३४१	३१६	२९७	२७४	१५७	२०५	२३९	४४३	३४५
बिनु बरजे	×	×	×	×	×	७२१	×	×	×	×
बिरह जरी	३८५	४९२	२०२	४४२	५१५	५१८	३७६	३१७	४४५	४९७
बिरह बिकल	४०४	५३९	५२७	४८४	३४२	५२५	३७७	२९४	४६४	५४४
बिरह बिथा	३९८	५३५	२३९	३२८	३४१	५२७	३८८	४३१	४४७	५४७
बिरह बिप	४३२	५०२	२१२	×	३३५	२६१	२२१	३२७	४४६	५०६
बिरह सुखा	३९६	५००	२१०	४४८	३३४	२७०	३९६	३८१	४८०	५०४
बिलखी उब	१३४	४७९	२५२	४९७	३०१	४९७	१२८	१०७	५७५	४८३
बिलखी ल	११७	४२४	३०५	३७२	२८९	४९०	११६	१३६	४४९	४२६
बिहसति	५५२	६०२	४५०	५०८	५५६	५५६	५४३	४७७	×	६०६
बिहसि बु	३९	१६९	४८९	२६	१३९	१६१	३९	४६८	×	१७०
बिषम बृषा	६०२	६७७	७०७	५९८	×	×	×	३०५	४५४	६८२
बुधि अनुमान	६८०	६८२	५८४	२३२	८२	७९	६०४	३२	४३५	६८८
बुरी बुराई	६१६	६५३	६६९	×	६३८	६५७	६०८	५९७	४५७	६६०
बेधक अनियारे	४७२	८६	६१	२०७	४९	४२	४८४	४८८	४३९	८५
बेसरि मोती दुति	२४२	८८	६८	२०८	२२४	४७	२३३	५२६	४४२	८७

बेसरि मोतीधुनि	४७५	९०	६८०	५८९	५८	४६	४०८	२२७	४६९	८९
बेंदिरही अति	५७०	५६६	६१३	५३६	५८५	६३४	५६२	×	४५१	५७०
बेंदी भाल न	२५२	१३५	६	२५४	४६०	२१४	२४३	५१८	४४०	१३५
ब्रन बासिन	६७७	६९०	५५५	६३१	३७९	५९१	६७१	३६	४३४	६९०
ब्रन भासबाबर	×	७१४	×	७२०	×	×	×	×	×	×
			इति बकारादि।	अथ	मकारादि॥					
मईं जु तन	५००	११५	८४	६८	७६	७५	५१८	४९७	४८५	११४
भजन करो	६७१	६८५	५५१	६२८	६७२	५९९	६६६	३७	४८६	६९२
भये बटाऊ	१४०	४१२	१५४	३२४	३११	४९२	१३२	२०२	४९०	४१७
भाललालबेंदीदि	४४९	४२	४१	१८७	२८	१७	४५८	४१७	४९४	३९
भाललालबेंदीलल	४४६	४४	×	१८६	२९	१९	४६०	४२३	४८३	४१
भावक उभरौहौं	२४	२७	१२५	६	१२९	१३४	२५	×	४८२	२६
भौंवरि अनभौंवरि	६२७	६५४	६७०	×	६४०	६६५	६०९	५९९	४९७	६६१
भूखन भार	५३७	१५६	९७	२४१	११२	९१	५२८	५०८	४८३	१५७
भृकुटी मट	४१४	१९१	३६३	१३८	५०३	२२९	४०४	२८७	४८४	१९१
भेटत बनत	१५६	३२९	२४२	९८	३५१	५३९	२४३	४२१	४९२	३३२
मौयह ऐसो	७२०	५३०	५९६	४५८	×	२३९	२२८	२९६	४८९	५३६
मौंह उंचै	३९६	७०	३४४	२०१	३७७	२६७	३०८	१६१	४८७	७१
मौंहन त्रास	४३	३३२	१४०	२८७	४६४	२८१	४५	१७१	४७८	३३९
			इति भकारादि।	अथ मकारादि॥						
मकराकृत	४	१६	३३८	५७४	५	४	४	६२०	४१८	१६
मंगल बिं	४५१	१२४	७७	१८८	३२	२०	४६२	४४४	५४५	१२२
मन न ध ति	२३०	२७२	४३४	१५२	४१२	२१४	२४९	५६०	५३९	२७४

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवर चन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णदत्त कवि के ग्रंथ के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद कृत अनुवाद के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
मन न मनावन	२१४	४९२	२७५	३९२	२४२	४९५	२२२	२७४	५२५	४५६
मन-मोहन	६७८	३०५	२७०	६४५	६७८	५८३	६७२	४२	५०२	३०९
मरकत भाजन	१६६	३१४	१७७	३५८	२९१	४६२	१६३	८४	५२१	३९९
मरन भलौ	४३३	५१७	२२५	४६४	३३७ / ५३६	२६३	४२२	३९८	५१८	५२२
मरतु प्यास	६३७	६६८	६९९	६०२	६५०	७१२	६३१	५६८	५२९	६७३
मरिबे कौ	४३४	४८९	२००	४३०	३३६	२६२	४२३	४२८	५१६	४९४
मरी डरी कि	४३०	५०८	२१६	४६३	५४०	२३४	४२९	४३५	५७७	५१३
मलिन देह	१४३	५४७	२५८	४९०	३५०	५३४	१४०	११५	५३५	५५२
मान करत	३६४	४३५	२८२	३८८	२४७	४१६	३५५	५५१	५२४	४३७
मानहु विधि	५२५	११७	१०४	८५	९१	११०	४३६	४७८	५०५	११६
मानहु मुख	२६	१७२	१३०	१४	११७	१३५	२७	५८	५३१	१७४
मार सुमार	३८८	५३३	२३६	४३९	५१४	२४३	३७९	३८२	५१४	५४०
मारौ मनुहारन	४३६	४६६	×	६०	५०८	२३८	४२६	५५१	×	४७०
मिलि चन्दन	४५०	४५	४१ / ४९७	५२५	३०	२२	४६०	२०६	५०१	४२
मिलि चलि चलि	१३६	४८४	२५५	४२२	३०८	५००	१३०	३७०	५४३	४९८
मिलि परछाँ	१६४	१८	३३६	३११	४५४	४४८	१६१	१४९	४१९	१७
मिलि विह	५८०	५८२	६२९	५५१	५१७	६४६	५७३	३२६	५२७	५८६

मिसरी मिस	२६३	३२०	५२५	४९८	×	४४०	२६०	२५०	५११	३२३
मोतन नीति	६०४	६४६	६६७	६८६	×	६७८	५९६	३६	५३०	६५३
मुख पखारि मु	५५३	६०१	४९९	५०७	४५४	५५३	५४२	६३८	५११	६०५
मुँह उघारि	२११	३५५	३३४	५०५	२३५	३२२	२२५	×	५१३	३५८
मुँह धोवति	५२	६०३	४५१	५८९	५५२	५५२	८१	११४	५४२	६०७
मुँह मिठास	२०४	४२७	१९३	३८२	१५८	४६६	२००	४६	५२३	४३१
मूँड चढ़ाये हू तऊ	१४३	६७३	७०४	६७४	६५९	७०४	६३८	५८६	५२८	६७९
मृगनैनी दृग	१४१	५४३	२५६	४८९	×	५३३	१३८	११८	५३४	५४८
मेरी भव बाधा	१	१	१	१	१	१	१	१	४९६	१
मेरे बूझे बात	९०	३४२	३९७	२९८	२०८	३७९	८०	१८३	५०७	३४६
मैं तपाय त्रय	१९३	४१४	५४३	६३०	३१६	४५७	१८८	४१४	५०४	६११
मैं तो सौं कै बा	२२९	२७४	४३५	१४२	४७३	२९३	२४८	३४०	५४०	२७६
मैं बरजी कै	५४०	१६०	१००	२४२	११४	९४	५३१	५०६	५०६	१६०
मैं मिस हाँसी	२१४	३५४	×	७००	५२१	७२३	२०८	२७६	×	३५७
मैं लखि नारी	३९५	४८८	४४७	४५२	४९१	५८६	३८५	१८९	५३६	४९३
मैं लै दयौ	३०२	२५८	४८६	४७५	३२४	२७७	२९८	४९७	५३२	२६०
मैं समझ्यौ	६६६	६८१	५४७	६२९	६८२	५८७	६६१	८	५४६	६८७
मैं हो जान्यौ	२५७	१९५	३५८	१०६	४७५	२०६	२५४	३३९	५१५	१८६
मोरचन्द्रिका	६२८	२०	६७८	५११	६४६	६९२	६२२	६९७	५००	१९
मोर-मुकुट	३	१०	५८१	५७२	४	३	३	६२४	४९७	१०
मोसों मिलव	८६	३७६	४८४	×	२०३	३७६	७६	१३३	५०८	३७९
मोसों मत बोलौ	×	×	४६९	३०४	×	×	×	×	×	×
मोहन मूरत	६६४	३	५७७	६३५	३	५७९	६५९	१४	४९५	३

दोहे	१ लालचंद्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचंद्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की कवित्त टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगार सप्तशती के अनुसार	८ हरिप्रसाद के अनुवाद के अनुसार	९ रसचंद्रिका के अनुसार	१० अमरचंद्रिका के अनुसार
मोहि करत	११	४१८	१८९	३०६	१४३	४७६	१२	८७	५२९	×
मोहि करत	×	×	×	×	×	३६२	×	×	५१९	४२२
मोहितुम्हें	६९४	७०४	५७०	५८१	६८९	६१३	६८८	२७	५०३	७१०
मोहि दियो	१८५	४६५	६४२	३२३	३६४	४५४	१९६	१५५	५०९	४६९
मोहि भरोसो	३३९	३०६	४३७	६४	४२८	३१४	३३९	×	५४१	३१०
मोहि लजा	१०१	४६०	३००	४१०	२६६	४०३	१००	२५४	५२६	४६४
मोहू दीजै	७०१	७००	५६५	५८३	६९६	५८५	६९५	७	५४४	७०६
मोहू सौं तजि	२६६	१८७	३६०	९२	४८८	२०२	२६३	३४२	५३३	१९९
मोहू सौं बा	१९९	३९१	३०४	३९४	२४०	४५८	१९३	१११	५२२	३९४
			इति	मकारादि	अथ यकारादि ॥					
यह बसंत	८९	५६१	६०४	२७३	२०७	३७७	७९	१३५	४६	×
यह बिनस	३००	५१४	२२२	४७४	४९२	२५८	२९६	६५६	५५०	५२९
यह बिरिया	६७३	६८७	५५३	६४३	६७४	५९४	६६८	३८	५५२	६९४
यह मैं तोही	७४	२७३	४६४	२६८	५७२	३६८	२६५	१८०		२०५
या अनुरागी	६६५	१८३	५७६	६३९	३३०	५८०	६६०	६	५४७	७१३
याके उर	२९०	५०७	२१७	४४५	३१९	२७२	२८७	×	५४९	५१२
या भव पा	६९१	६८४	५५०	६५०	६७७	५९३	६९५	४०	५४८	६९०

यौं रस काढै	६६३	६२८	५८८	६१६	७०५	५७४	६५८	×	५५३	६३३
यौं रसमसि	२२८	३७८	३२६	२९५	४१६	३२४	२५३	२८१	५५१	३८२
य्यौं न चलै	१७८	४०५	१५९	३६३	२४९	४७४	१७४	९६	७१८	४१०
य्यौं तै ज्यौं ज्यौं	४९७	२०३	३७५	१३५	५११	२७९	४०७	२५७	×	२०५
			इति	यकारादि	अथ रकारादि ॥					
रंगरातो	४०६	५४०	५२८	४७८	३४५	५३२	३९५	२५२	५१७	५४५
रंगी सुरत	९२	३४५	३२०	२९४	२३०	१६४	८३	२९५	५६०	३४५
रंचन लखि	५३२	२५५	११८	७९	१०२	९७	४४८	४६५	५८४	१५६
रवि बन्दौ	६५०	६१६	५३५	६१८	२५	३६४	६४५	६३३	५७४	६२९
रमन कह्यौ	२१०	३४४	३१४	३००	४५०	१५६	२०६	२३८	५५८	३४८
रस कैसे	१९८	४२६	२७२	३८९	१५९	३९६	११४	७४	५६६	४२९
रस भिजये	५६४	५५७	६००	५६१	६०४	६२९	५५५	३७२	५७०	५६२
रस सिंगार	४५५	५०	४५	२०३	३५	२६	४६६	४७०	५५४	४९
रहति न रन	७०३	६२९	५८६	६१३	७०३	७२५	६७७	६५७	५७९	६३५
रहि न सकी	५८५	५८६	६३३	५५३	१०८	६५१	५७४	३२९	५७२	५९०
रहि न सक्यौ	५२१	१४३	३८८	२५९	६०२	११२	४३८	३४८	५५६	१४३
रहिहै चंचल	१३९	४७६	२४८	५२०	३०४	४१४	१२२	११२	५८०	४८०
रही अचल	६८	२९७	×	×	४०७	३६०	५९	१५३	५६२	२११
रही दहेंडी	२४१	२८३	४६१	२१४	४६१	३३०	२३२	२८४	५०६	२८६
रही पकरि	२०५	३९९	२६६	३७४	२४१	५५५	२९१	१४१	५६४	३०४
रही पैज	३४२	३२३	४३९	१७३	४४५	३१६	३३३	×	५५७	३२६
रही फेरि मुह	८२	३२४	४६७	४८	१११	३७१	७३	×	५८२	३२७

दोहे	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
	लालचन्द्रिका के अनुसार	हरिप्रकाश टीका के अनुसार	अनवरचन्द्रिका के अनुसार	कृष्ण कवि की टीका के अनुसार	देवकीनन्दन टीका के अनुसार	संस्कृत टीका के अनुसार	शृंगारसप्तशती के अनुसार	[illegible] के अनुसार	रसचन्द्रिका के अनुसार	अमरचन्द्रिका के अनुसार
रह्यौ लहू	३३२	२६१	१२	६२	५३३	३१०	३२४	५४५	५६३	२६३
रहे वरौठे	२४५	५४९	२४५	४९१	३५३	५३८	२४२	११६	५७८	५५४
रह्यौ गुही	१२२	२७०	४९०	२७५	२७५	३२३	११४	१२६	५७५	१७२
रह्यौ ऐंचि	१२५	५३४	२३४	४२८	३१६	५०५	१३४	४३४	५६१	५३७
रह्यौ चकित	१८३	४००	१७५	३६६	११२	४४५	१८०	९८	५९७	४०५
रह्यौ ढीठ	५०७	१०८	९१	२३४	८४	८५	५२१	५३२	५५५	१०७
रह्यौ मोह	३१७	२५२	४२९	३७	३८२	१८३	३०९	१७०	५८१	२५३
रह्यौ रुक्यौ	५८९	५९१	६२५	५६३	५८२	६११	५८२	३००	५७१	५९५
राति दिवस	१०३	४५५	×	२	३३२ ३६७	४०५	१०२	२४३	५८३	४५९
राधा हरि	२४५	३४३	३१८ ५०४	२३६	४५८	३२७	२३६	२३७	५५९	३४७
रुक्यौ साँकरे	५८७	५९४	६०९	५६६	५७९	६२१	५८०	×	५६९	५९८
रुख रूखे	७२२	४३६	२८३	४५	×	३९५	×	२५२	५६१	४३८
रुनित भृङ्ग	५८६	५९०	६०६	५६८	५७८	६१८	५९७	२९९	५६८	५९४
रूप सुधा	२२०	१६३	४९८	५२८	५५१	१२०	२१७	२११	५७३	१६४
			इति	रकारादि	।अथ लकारादि ॥					
लई सौंह सी	३०९	१९०	३६२	१५९	५२१	१९३	×	३७३	६०३	११२
लखि गुरु	२५६	४५१	३७४	२८१	३९८	३३६	२४७	२८८	६०४	४५५

लखि दौरत	३०	३३४	३०९	२९५	२२६	१५०	३०	६३	५९९	३३६
लखि लखि	२३५	३७१	३२२	२९१	५४३	१५९	२२६	२६१	६०२	३७४
लखि लौने	३२९	२७१	३२९	४९	३६५	४६५	३२१	१७८	५९२	२७२
लखि सूने घर	×	×	×	×	×	×	×	×	६०५	×
लगति सुभ	५८४	५८४	६३२	५५५	६०१	६४८	५७७	३३१	६१०	५८८
लगी अनल	५०५	१०६	८८	२३०	८१	८०	५१९	६५	५९०	१०५
लग्यो सुमन	७२३	४३२	२८५	२४५	×	३०५	×	५३५	६२४	४४१
लटकि लट	२२२	२४१	४२०	८९	१७९	५७२	२१९	२२१	५८९	२४२
लट लौं	६७५	६२६	६५३	×	६६५	६७२	×	२४	६११	६३०
लपटी पट	५९०	५९३	६०७	५६७	५८१	६२२	५८३	३०३	६०९	५९७
लरिका लैबे	२८३	२४९	४२७	६१	३९९	२२४	२८१	२०३	६१३	२५०
ललनचलनसुनिचुप	७२४	४७८	२५१	४१८	३०२	५०३	१२५	११३	६१५	४८२
ललनचलनसुनिपल	१३२	४८२	२५०	४१९	३००	५०४	१२६	११०	६१६	४८६
ललन सलौने	१८६	४०९	१४५	३२६	४४३	३३४	१८२	६०६	६२०	४२४
ललित स्याम	४८७	९५	७१	२१९	६३	५४	५००	४९१	×	९३
लसत सेत	४७९	९२	६३	२२३	५३	६३	४९२	५२१	५९४	९०
लसै मुरासा	४८०	१२०	६४	२१५	५४	६२	४९३	४६२	५९५	११९
लहं लहाति	५०४	३२	२	२३१	८०	८१	५१८	३३	५८८	३१
लहि रति	४३७	३४६	३२१ ४८०	२९६	५०९	१५८	४२५	४०९	६०२	३१०
लहि सूने	३२१	३२६	४४१	२७९	३८७	१८०	३१३	×	×	३२९
लागत कुं	३३०	७३	४०९	२०६	४२६	३०१	३२२	३४१	५९३	६०
लाज गरब	८७	३७३	३२३	३०७	२०१	३७४	८४	२९७	६०८	३७६

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाशटीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णदत्तकवि के ग्रंथ के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगार सप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद कृत अनुवाद के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
लाज गहौ	५५	९५	×	४९९	१४	३५९	९४	×	५९६	९५
लाज लगाम	२६९	२४७	४२५	११८	१६६	२१३	२६६	३५१ २५६	५९८	२४८
लाल अलौकिक	९९	२६	१२२	४	१२०	१३०	२०	५६	५८७	२५
लाल तिहारे विरह	३०७	५०६	×	४७०	३२७	२६६	३०२	४२१	६१७	५११
लाल तिहारे रूप	३५०	२०९	३७९	११५	४४१	२६५	३४१	३५५	६०७	२११
लालन लहि	१८२	३९२	१६७	३५६	१५२	४७५	९७९	७९	६१९	३९७
लिखन बैठि	५३४	१६५	९	८१	११९	११६	४५०	४५६	६२२	१६६
लीने हू सा	५२७	६७	३४७	८६	२१	१११	४४३	४६१	६१८	६७
लै चुभकी	५५१	३६६	२३	५३८	५५७	५५७	५४४	६४०	६००	३६९
लोपे कोपे	६५७	१४	५८४	६३२	१९	५७३	६५२	×	५८५	१४
लोभ लगे	२६१	१९६	३६८	१२४	४७६	२०७	२५८	३५२	६०६	१९८
लौने मुख	४७७	९८	४३	१९०	५१	५५	४९०	४४३	५९६	९६
ल्याई लाल	३४०	३२१	४४०	१७२	४४४	३१५	३३९	५५८	५९७	३२४
			इति	लकारादि।	अथ वकारादि॥					
वारौं बलि	४६९	२६३	१३	१९२	४९	३०३	४८२	४८१	६२३	२६५
वाहि लखै	५१८	१४०	१०९	६७	९४	१०९	४३४	४५०	६२४	१४०
वाही की चो	२०१	३९६	१७२	३५१	३५९	४५५	१९७	८०	६२६	४०१

नाही निग्नि तें	३६०	४४८	२९७	३९३	२११	४२२	३५१	५५५	६२५	४५२
वेई कर जौ	४९५	३४	३४	२७७	२३	१०	५०८	५००	६२१	३३
वेई गड़ गा	२७७	३८२	१५८	५७	३६९	४८३	१७२	×	६२२	२९६
वेई निरजी	५७५	५७४	६२१	५४२	५८८	६४०	५६८	३१३	६२७	५७८
ने बाढ़ै उन	८३	२९१	४३६	१०३	२००	१८५	७४	२६०	६२९	२९३
ने न इहां	६४५	६६२	६११	६०६	६४५	६९६	६४०	५८९	६२८	६६४
वैसीयै जा	१ ७	९५	१७१	३ ४	२९२	४६३	१६४	८२	६३०	५००
			३	वकारा	।अथ सकारादि॥					
संवतग्रह	७०८	×	×	×	×	×	×	×	×	×
सकलन	३७७	४५३	२९५	५९	३७४	५५०	३६७	२७५	६७८	४५७
सकुच सु	३७	३३	३१०	२०८	१३६	१५१	३७	७२	६११	३४०
सकुचि न	३७८	४४४	२९२	४१३	२५९	३९८	३६९	५३७	६५२	४४८
सकुचि सर	२५१	३३५	१३६	२९१	५४४	१४७	२४२	×	६७०	३२८
सकै सताप	७२५	४९१	×	१२७	×	२७१	×	३६३	६७७	४९६
सखि सोहति	८	६	३३७	३८४	७	६	६	६२३	६३३	७
सखी सिखावति	७१३	२०६	×	×	२३६	×	×	×	×	२०८
सघन कुंज छाया	४११	५	३३५	१५०	११	२३५	४०१	४२३	६३२	५
सघन कुंज घन	१५९	३०९	१४४	८० २५१	२११	४४३	१५६	४५१	६४९	३१२
सङ्गति दोष	६२७	५६	५०	६७०	२१४	३३	६२१	५७४	६३९	५५
सङ्गति सु	६१	६२९	६६०	६७१	६२८	५६४	६०४	५६९	६३८	६४५
सटपटाति	६६	७२	५०	२५	३७८	१७५	४८०	×	६८१	७३
सतर भौंह	९८	४५	×	४०५	२६३	४०७	९७	२४२	६५५	४६०
सतसैया	×	×	×		×	७३०	×	×	×	×

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णदत्तकवि के ग्रंथ के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद कृत अनुवाद के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
सदन सदन	१९५	३८९	१५९	३३२	१५५	४८९	१९०	१०६	६९७	३९५
सन सुकौं	९७	२७५	४५७	५३	२१६	१८४	९६	२००	×	×
सनि कज्जल	३२८	१७५	३८३	९१	×	३०६	३२०	४६८	६८४ ६९९	२७७
सपत बडे	×	×	×	×	×	७११	×	×	×	×
सब अंग	३८	६३	५४	१०५	१९२	४०	३८	७१	६९८	६३
सबही तन	५६	६१	३४३	११२	१८६	३५२	४९	५३८	६५०	६१
सबै सुहाये	४४७	४०	३९	६५५	६३४	११५	६००	५१५	६३६	३७
सबै हँसत	६१२	६४०	६६२	७०३	६२९	६६६	६०५	५७१	६८३	६४७
समरस	३२	२०४	१३६	२०	१३३	१४६	३२	७०	६१३	२०६
समै पलट	६९५	७०९	५७३	६२४	६८५	५०५	६९९	३१	६४०	७१६
समै समै	६२५	×	६६६	६७३	×	६८४	६१८	५६४	६९६	६५२
सम्पति केस	५९८	६२०	६४६	६६६	६१९	६६३	५९१	५६४	६८२	६२३
सरस कुसुम	६३३	६५७	६९०	२४०	६६२	९५	६२७	×	६६७	६६४
सरस सुमि	२१२	३५०	४४४	×	४३२	३४४	२११	५४६	६८५	६५३
ससिवदनी	७१५	४२०	१६८	×	×	×	×	×	×	४२४
सहज सचि	४४०	३३	३३	१७६	२२	९	४५२	४८४	६३५	३२
सहज सेत	५२६	१२१	१०६	×	९२	१२१	४३०	५११	६४७	×

साहित सने	२४०	२५४	४३०	२७२	४७३	२३६	२३१	२८९	६८७	२५५
सहीरंगीलै	८७	३७७	४७०	३०९	२०४	३७५	७७	१३४	६९२	३८१
साजे मोहन	२६५	२२८	×	१२२	४७४	२०५	२६२	३३८	६५१	२३०
सामा सैन	७०६	×	×	६१४	३९	२९	×	×	६९५	६३२
सापक सम	४५९	५३	४७	२०१	×	×	४७०	४७२	६३७	५१
सारी डारी	४६४	१२७	५८	१४३	४१	३१	४७५	४७१	६४६	१२५
सालतिहे	४८१	१२२	६५	२१२	५५	६०	४१४	५२५	६४४	१२०
सीतलता रु	६२०	६९१	६९५	६६७	६३०	७००	६१२	५७०	६६६	६७६
सीरे जतन	३८०	४९५	२०५	४३५	५२३	५२२	३७१	४११	६९०	५००
सीस मुकुट	२	२	५७९	५७१	२	२	२	२०	६३१	२
सुख सौं बीती	३४५	२११	३९६	६९३	४०३	१८८	३३५	६३५	६८६	२१३
सुघर सौति	११३	४६९	२६१	३१९	२२८	४३४	११२	१३१	६८९	४७३
सुदुति दुरा	९१	९३	४६०	३०३	×	३८०	८२	१८५	६४३	९१
सुनत पथिक	४३५	४१८	२०८	४३७	४०१	५०८	४२४	३३०	६७९	५०८
सुनितियचल	×	×	४४६	×	×	×	×	×	×	×
सुनि पग धुनि	२२९	५९९	५१३	२८२	४६२	३३२	२३०	×	६६९	६०३
सुभर भस्यौ	१९६	४१३	१८५	३३१	३६६	४७३	१९२	३३६	६५३	४१८
सुरंग महा	१२१	४०२	१७७	३७७	१६४	३८८	४२	१३२	६५४	४०७
सुरतिन ताल	३११	२३४	४९३	२६४	२१९	१९१	×	२२६	६७२	२३६
सूर उदित	४८८	१०१	१४	१९१	६४	५७	५०१	४३७	६४५	९८
स्वेदसलिल	१४	१७१	५११	२५६	९	३२१	२७	३६४	६८८	१७३
सोवतजा	४१३	५२१	२२८	४५१	५०७	२३२	४०३	१५१	६७४	५२७
सोवत लखि	४०	४३०	२७८	×	१४०	१६२	४०	२६२	६७१	४३३

दोहे	१ लालचन्द्रिका के अनुसार	२ हरिप्रकाश टीका के अनुसार	३ अनवरचन्द्रिका के अनुसार	४ कृष्णकवि की टीका के अनुसार	५ देवकीनन्दन टीका के अनुसार	६ संस्कृत टीका के अनुसार	७ शृंगारसप्तशतिका के अनुसार	८ हरिप्रसाद कृत अनुवाद के अनुसार	९ रसचन्द्रिका के अनुसार	१० अमरचन्द्रिका के अनुसार
सोवत सपने	४०९	५३६	५१८	८८	४०४	१७७	३९९	३९६	६७५	५४२
सोहत अंगुठा	५११	११२	९६	२३९	८८	९०	५२५	×	६४२	१११
सोहत ओढ़े	५	२९	३३९ ४८२	५७५	६	५	५	६२७	६३४	२०
सोहत धोती	३३४	२६२	११	७७	४३६	१२२	३२६	६४१	६४८	२६५
सोहत सँग	६२३	६४८	११५	३६१	६३३	४६८	६०६	४६७	६८०	६५४
सोन जुही	५०१	११८	८३	×	७७	७६	५१५	४९८	६४२	११७
सोहैं हूं चाह्यौ	३६६	४३७	२८४	४०२	×	४०८	३५८	×	६९३	४३९
स्याम सुरति	६५६	५२५	२३३	४५६	३३१	५७२	६५१	३७८	६७६	५३१
स्यौ बिजुरी	४००	५०१	२११	×	३३८	५११	३९०	३११	६९४	५०५
स्वारथ सु	६३६	६६६	६९७	५९४	६५३	७१०	६३०	५७३	६६८	६७१
			इति	सकारादि	अथ हकारादि ॥					
हठन हठीली	५७४	५७३	×	४०४	५९२	६३९	५६७	३११	७१२	५७६
हठि हित करि	१२०	४७०	५९०	३७९	१६३	३८७	४१	१४०	७०२	४७१
हनी सूत	×	×	४३९	×	×	×	×	×	×	×
हम हारी कै	६५८	४५०	२७३	४०१	२५४	४०९	६५३	२८३	७११	४५४
हरषि न बोली	४९	३२८	४४३	२८०	×	३३८	८८	१९५	×	३३१
हरि कीजतु	६९७	७०७	५६८	६४४	६९५	६१६	६९१	२७	७००	७१४

हरि छवि	२५८	२४२	३८४	११४	४७८	२०४	२५५	३४९	×	१४२
हरि हरि नारि	२९९	२८८	५२६	२८१	४९३	२५७	२९५	६५५	७१०	३०४
हँसि उतारि	३०४	२६०	५१९	४७२	३२६	२९०	×	३९२	७१९	२६२
हँसि ओढ़	११४	३४८	५०६	५१२	२७०	३१९	१९३	१२९	७१४	३३७
हँसि हँसाय	३६३	४२५	३०७	३९७	२४६	४२३	३५४	×	७१७	४४०
हँसि हँसि ।	२१७	३५९	५०१	५२५	५४९	१३८	२१२	२०५	७१५	३६२
हँसि हँसि रस	×	×	×	×	×	×	×	६५१	×	×
हा हा वदन	३७२	४४१	२९०	१८९	२५४	४२२	३६१	४४५	७२०	४४६
हित करि तुम	३०३	३०१	४९४	२७१	३२५	२९१	२९९	४२६	७१६	३०३
हिय औरै सी	१२६	५२९	५३४	१३५	४७७	५०६	×	४११	७०९	५३५
हुकुम पाय	७०७	७१२	×	×	७०९	७३९	६९९	×	×	×
हेरि हिंडोरे	५४९	३६८	२४	५	५४६	६५२	५४०	२३०	७१३	×
है हिय रहति	२७४	२२१	४०४	११६	४८९	२२०	२७१	३६०	७०८	२२२
होमति सुख	३०५	१८४	३८१	४४६	४९४	२६८	×	३८५	×	१८५
हौं हीं बौरी	४१६	५२०	२२७	४५९	५१७	२४२	४०६	४०३	×	२२६
हौ रीझी रहि	×	×	×	×	×	७२०	×	×	×	×
हौं रीझी लखि	३३५	१३६	१०७	६५	४३४	९८	३२७	५३४	७०१	१३६
ह्वै कपूर	५२३	१४८	११४	७४	९७	९६	४४०	४५२	×	१४८

इति हकारादि ॥

इति सूचीपत्र समाप्तम् ॥

मुझे जो रसचन्द्रिका ग्रन्थ मिला है, उसमें एक पत्र कम है; इसलिये दोहे ७०३ से ७०७ तक नहीं मिले

ग्वालियरनिवासी श्री विष्णुज्योतिषीरचित सं॰ २०१८के पञ्चाङ्ग के प्रथम दो मास यों हैं ॥

चैत्रशुक्ल				वैशाखकृष्ण ×(चैत्र कृष्ण)					वैशाखशुक्ल				ज्येष्ठकृष्ण ×(वैशाखकृष्ण)				
२	मं	५२	५६	१	मं	४३	११		१	बु	२०	२१	१	गु	२४	३२	
३	बु	४७	१	२	बु	४८	७		२	गु	१५	२४	२	शु	२८	२५	
४	गु	४१	१०	३	गु	५२	४१		३	शु	९	५६	३	श	३१	७	
५	शु	३६	२	४	शु	५६	३१		४	श	५	१३	४	र	३२	३८	
६	श	३१	२९	५	श	५९	९	मेषेऽर्कः २।४१	५	र	१ ५७	५६ ०	५	चं	३२	४४	वृषेऽर्कः ५७ ४३
७	र	२७	४१	६	र	६०	०		७	चं	५६	१९	६	मं	३१	३८	
८	चं	२४	५४	ψ ६	चं	०	३६		८	मं	५५	३४	७	बु	२९	२८	
९	मं	२३	११	७	मं	५७	४२ ५६		९	बु	५६	१५	८	गु	२६	५	
१०	बु	२२	३६	९	बु	५७	२२		१०	गु	५८	१	९	शु	२१	३६	
११	गु	२१	३३	१०	गु	५४	१		११	शु	६०	०	१०	श	१६	२८	
१२	शु	२५	३६	११	शु	४९	५४		११	श	१	१८	११	र	१०	४९	
१३	श	२८	५७	१२	श	४४	४०		१२	र	५	२५	१२	चं	५३ ४	५३ ५४	
१४	र	३३	१३	१३	र	३९	६		१३	चं	१८	४	१४	मं	५२	४४	
१५	चं	३८	४	१४	चं	३३	९		१४	मं	१५	५	३०	बु	४७	२४	
				३०	मं	२७	७		१५	बु	२०	२					

× शुक्लादिमासके अनुसार॥ अमावास्या के दिन ३० लिखना आजतक शुक्लादिमासहीका प्राधान्य दिखलाता है और अधिकमास:अद्यावधि सर्वत्र शुक्लादि ही रहता है॥ ψ इसी दिन विहारीने ग्रंथ समाप्त किया और यही लिखा कि "संवत ग्रहशशिनिजलधिसासे छव तिथि वासर चन्द। चैत मास पच्छ कृष्ण में पूरन आनंदकन्द ॥" ॥ ॥
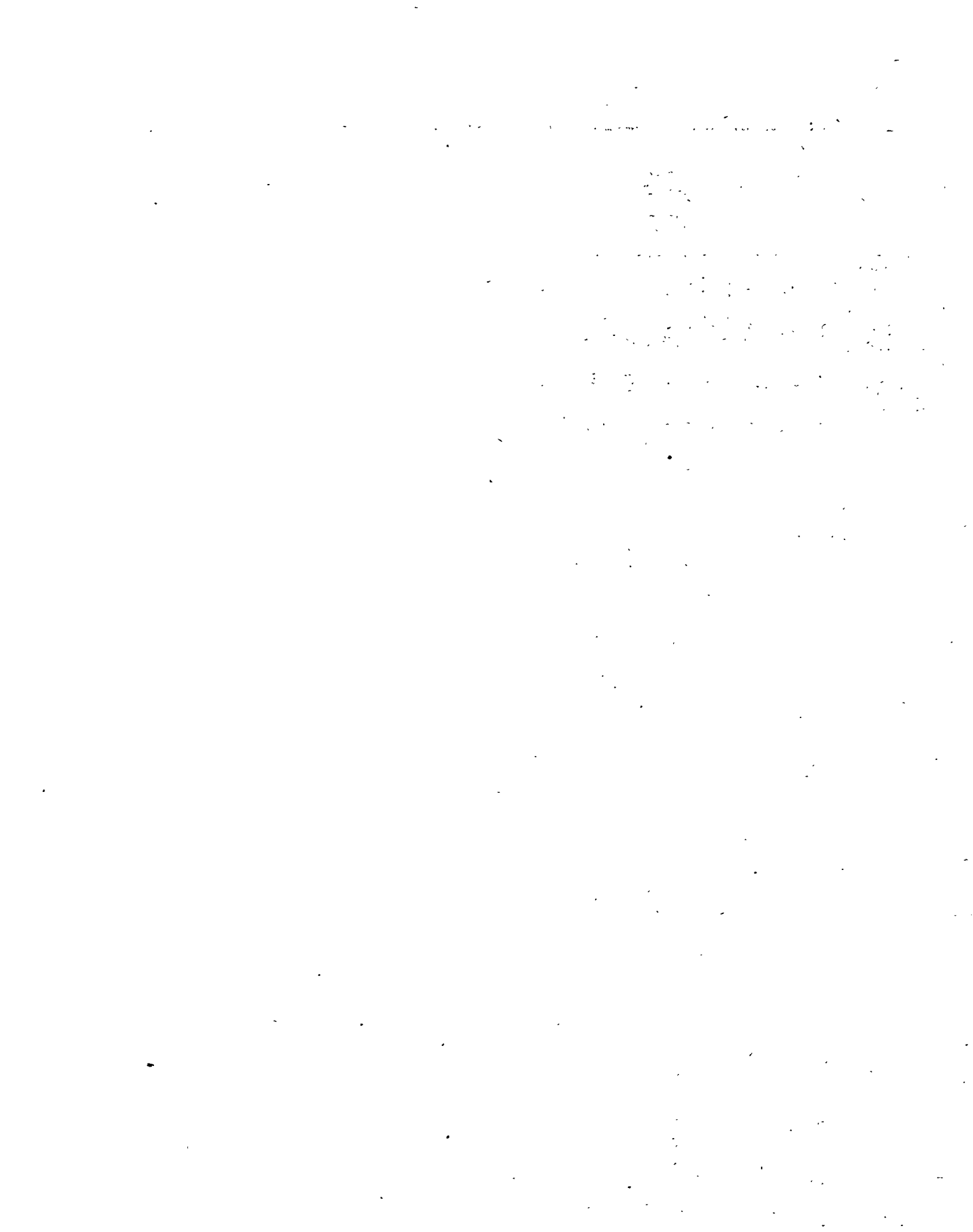
संक्षिप्त निजवृत्तान्त।

मेरा वृत्तान्त किस काम का है और इसमें उपदेश ही क्या निकल सकता है। तथापि एक तो अपने विषय का भला बुरा लेख कदाचित् इतिहासविद्या की किसी अंश में सहायता करे यह समझ तथा मेरे आत्मीय महाराजकुमार बाबू रामदेनीसिंह बाबू रामकृष्णवर्म्मा और नागरीप्रचारिणी के सभ्यगण के प्रोत्साहन से प्रोत्साहित हो मैंने अपना चरखा गाया। और ग्रन्थकारों का स्ववृत्त न लिखना विद्वज्जन मात्र की दृष्टि में जनता है इस भाव से भावित हो मैं लिखने बैठा सो ढट्टा बढ़ गया तब उसमें संक्षिप्त यह उद्धृत किया है। सरस विद्वज्जन इसे भी एक दिहाती कहानी समझ क्षमा करेंगे॥

राजपुताने में जयपुर के समीप भानपुर (मानपुर) नामक ग्राम चिरकाल से प्रसिद्ध विद्वत्स्थान है। वहाँ के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पण्डित ईश्वरराम जी गौड़ थे*॥ इनका पराशर गोत्र, यजुर्वेद, तीन प्रवर, और यहां का परम प्रतिष्ठित भीँडा कुल था। इन के प्रपौत्र पण्डित हरिजी रामजी राजाश्रय के कारण रावत जी की धूला नामक ग्राम में रह गये परन्तु उनके पुत्र पण्डित राजाराम जी धूला से सम्बन्ध छोड़ सकुटुम्ब काशी में आ बसे और अपने गुणगौरव से काशी के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी कहलाये। इनके अनेक सन्तानों में चिरञ्जीवी दोही पुत्र हुए, ज्येष्ठ पण्डित दुर्गादत्तजी और कनिष्ठ पण्डित देवीदत्तजी। ये पण्डित दुर्गादत्तजी वेही हैं जो कविमंडल में दत्त कवि प्रसिद्ध हैं। इनका जीवनचरित्र खड्गविलास यन्त्रालय में अलग पूर्ण रीति से छप चुका है॥

ये कभी जयपुर में भी जाके कुछ दिन रह जाते थे और कभी काशी में भी रहते थे॥ ये सं० १९१२ में सकुटुम्ब जयपुर में गये सो तीन वर्ष जयपुर ही में रह गये थे। इस समय इनकी तीन कन्या तो विवाहिता थीं सो काशी में थीं पर ज्येष्ठ पुत्र गणेशदत्त साथ थे। इनके द्वितीय पुत्र का जन्म जयपुर ही में सिलावटों के महल्ले में सं० १९१५ चैत्र शुक्ल ८ को हुआ॥ वह ही मैं हूँ॥

सं० १९१६ में मेरे पूज्यपिता श्री पण्डित दुर्गादत्तजी जयपुर से सकुटुम्ब काशी आये॥ शास्त्रानुसार पञ्चम वर्ष से मेरी शिक्षा का आरम्भ हुआ॥ अक्षरारम्भ के साथ ही अमरकोष औ रूपावली घुखाना प्रारम्भ किया गया॥ मेरी माता भी पढ़ी लिखी थीं और बड़ी बहिनें और दादी तथा चाची भी पढ़ी थीं॥ मेरे पिता प्रसिद्ध विद्वान् ही थे॥ मेरी शिक्षा चतुरस्र होने लगी॥ अर्थात् संस्कृत में कुछ २ काव्य कोष और भाषा में अनेक कवित्त सवैये कंठस्थ हो गये॥ पिताजी ने अहोरात्र के व्यावहारिक पदार्थों का संस्कृत में नाम सिखला दिया॥ मैं संस्कृत की बात चीत समझने लगा॥ मेरा खेल यही था कि पिताजी के साथ मेला तमाशा देख लेना अथवा पिता ही जी के साथ शतरञ्ज खेलना वा भाँति भाँति के इन्द्रजाल के तमाशे करके अपनी माता, भौजाई, बहिन, भानजे, भानजी आदि को प्रसन्न करना॥

---

* कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि डेढ़ सौ दो सौ वर्ष और पहले ये मण्डावाग्राम से आये थे।

मेरे पिताजी ने देखा कि खेल की प्रवृत्ति का रुकना कठिन है और स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोकना अनुचित भी है तो मुझे बुद्धिमत्ता के खेल में लगाया ॥ अत: मेरे पिताजी ने स्वयं तथा और गुणियों से मदद दिलवा के मुझे कौतुक और शतरंज आदि सिखलाये ॥

काशीस्थ प्रसिद्ध विद्वान् पण्डित घनश्यामजी गौड़ ने मेरा उपनयन कराया ॥ १० वर्ष के वय में मैं हिन्दी भाषा में कुछ कुछ कविता करने लग गया था । परन्तु मेरी कविता को जो सुनता था वह कहता था कि इनकी बनाई कविता नहीं हैं, पिताजी से बनवाई है ।

जब कुछ लोग मेरी अवहेला करते थे और मैं उदास होता था तब मेरे पिता जी यह श्लोक कहते थे।

"कमलिनि मलिनीकरोषि चेत: किमिति बकैरवहेलितानभिज्ञै: ।
परिणतमकरन्दमार्मिकास्ते जगति भवन्तु चिरायुषो मिलिन्दा: ॥"

अर्थात् मूर्ख बगुले अनादर करें तो कमलिनी को दु:खित न होना चाहिये भगवान् करे उसके मर्मज्ञ भ्रमर चिरञ्जीवी रहैं ॥

इनदिनों मणिदेव के पुत्र सुप्रसिद्ध हनुमानकवि और द्विजकवि मन्नालाल, गोस्वामी दम्पतिकिशोर पञ्जाब के बाबा निहालसिंह आदि मेरे पिताजी के पास काव्य पढ़ते थे सो मैं भी उनलोगों का पाठ यथा शक्ति सुनता था और कविता करता था सो सुनकर सब कोई भी मेरा उत्साह बढ़ाते थे। इसी दशवर्ष के वय में मैं प्रस्तार नष्टोद्दिष्टादि में कुशल हो गया था ॥

सं० १९२६ में जोधपुर के राजगुरु ओझा तुलशीदत्तजी काशी में आये। ये स्वयं भी अच्छे कवि तथा पहलवान थे। और कवि तथा पहलवानों से बड़ी चाह से मिलते थे। मेरे पिताजी से इनने भी पढ़ना आरम्भ किया और काशी के सभी कविजन का इनके यहां सम्मान हुआ ॥ इन दिनों इनके यहां एक समस्या उड़ रही थी वही समस्या इनने मुझे भी दी ॥

समस्या—"जनि तोरहु नेह को काचो तगा ।"—इस पर मैं यह पूर्ति कर लाया ॥

मुरली तजि कै तरवार गही अरु जामा गह्यो तजि पीरो झगा ।
तजी अम्बिकादत्त सबै हम हूँ अहै साँचहु कौन को कौन सगा ॥
कहियो तुम ऊधव साँवरे सों इहाँ प्रेम को पन्थ पगा सो पगा ।
इन जोग विराग झटक्कन सों जनि तोरहु नेह को काचो तगा ॥

मति जोरहु प्रीति चहूँ दिस मैं तुम कोऊ दिना लला खैहो दगा ।
कवि अम्बिकादत्त परें वल के परिहै पुनि पेचहू कोऊ जगा ॥
सुरझावहु गाँठ हिये की हहा मन के सब भर्मन देहु भगा ।
जिय की अरुझावनि ऐंचनि सों जनि तोरहु नेह को काचो तगा ॥

इनने भी मेरी कविता सुन वही आशङ्का की कि इस छोटे वय में ऐसी अच्छी कविता का होना बहुत कठिन है सो विशेष सम्भव है कि पिता की सहायता से यह कविता बनी हो। इस सन्देह की निवृत्ति के लिये उनने एक दिन दूसरी समस्या दी और कहा कि मेरे सामने पूरी करो।

समस्या "मूँदि गई आँखें तब लाखैं कौन काम की।"

इस समय सेवककवि, नारायणकवि, हनुमानकवि, द्विजकविमन्नालाल और मेरे पूज्य पिता पंडित दुर्गादत्त जी उपस्थित थे। मैंने तत्क्षण कवित्त बनाया सो यह है—

चमकि चमाचम रहे हैं मनिगन चारु सोहत चहूँघाँ धूम धाम धन धाम की।
फूल फुलवारी फल फैलि कै फबे हैं तऊ छवि छटकीली यह नाहिन अराम की॥
काया हाड़ चाम की लै राम की बिहारी सुधि जाम की को जानै बात करत हराम की
अम्बादत्त भाषैं अभिलाषैं क्यौं करत झूठ मूँदि गई आँखैं तब लाखैं कौन काम की॥

इसके पूर्व मैंने सभा में कभी कविता नहीं की थी, यह प्रथमही कविता हुई और ओझाजी ने पारितोषिक सर्वाङ्ग के दिव्य वस्त्र तथा प्रशंसा पत्र देकर गुणग्राहिता प्रगट की। गुणियों के समाज में इसी समय मेरा नाम फैला।

इसी छोटे वय में पिताजी ने मुझे कथा कहना आरम्भ कराया था। प्रति एकादशी की कथा घर में मैं कह लेता था। मेरी माता भगिनी आदि सुनती थीं और अनन्त हरितालिका आदि सब कथा समय २ पर अल्पपरिश्रम से अभ्यास कर मैं कह लेता था इस कारण मेरी धृष्टता बढ़ती जाती थी, सभाक्षोभ हटता जाता था वाक्‌चातुरी आती जाती थी और व्रज भाषा के अनर्गल भाषण का पूरा अभ्यास होता जाता था॥ पिताजी प्रसङ्ग २ पर दोहे इतिहास श्लोक आदि की घटना भी बैठा देते थे और संक्षेप विस्तार सरसता आदि के कौशल बतलाते जाते थे।

ग्यारह वर्ष के वय में मैं अमरकोष, रूपावली और कुछ काव्य समाप्त कर पण्डित कृष्णदत्तजी से लघुकौमुदी पढ़ने लगा और श्रीमद्भागवत दशमस्कन्ध पिताजी से पढ़ता था। पिताजी के पास जितने विद्यार्थी जितने २ पाठ पढ़ते उन सबको यथा शक्ति सुनता था इससे और भी योग्यता बढ़ती जाती थी॥

सं० १९२६ में ग्वाल कवि के शिष्य खड्गकवि काशी जीमें आये और श्रीराधारमणजी के मन्दिर में झाँकी के उत्सव में अनेक कविजन के सामने उनने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र को यह समस्या दी—

समस्या "सूरज देखि सकै नहिं घुघ्घू।"

इसे सुन थोड़ी देर बाबू हरिश्चन्द्र चुप रहे और दो तीन बेर लेखनी बोड़ कहा कि कोई उत्तम कविता इस पर नहीं हो सकती। इस पर खड्ग कवि कुछ मुसकिरा कर इधर उधर देखने लगे तब मेरे पूज्य पिता पण्डित दुर्गादत्तजी ने कहा कि "आपको इसी समस्या से आग्रह हो तो यह इस

लड़के को दीजिये और बाबू साहेब को दूसरी समस्या दीजियेगा ।" यह कह कर मेरे पिता जी ने मेरी ओर संकेत किया । बाबू हरिश्चन्द्र मुझे इतना तो जानते थे कि मुझे सैंकड़ों कवित्त कंठ थे और मैं कुछ भाषा कविता भी करता था परन्तु सभा में तत्क्षण कविता के सामर्थ्य के विषय में अपरिचयी थे ॥ सोत्साह उनने मुझे पत्र लेखनी आदि दिया, सब सतर्क हो देखने लगे ॥ मैंने कविता रची सो यह है ।

गोद लियेँ हरि कौं नँदराय जू सुग्गा कहायो कह्यो उन सुग्घू ।
तोतरे बैन सुनो चित चैन भो काग कहायो कह्यो तब कुग्घू ॥
अम्बिकादत्त अनन्दित ह्वै पुनि बाघ कहायेँ कह्यो उन बुग्घू ।
देखि सकैं नहि पातकी सो जिमि सूरज देखि सकै नहि घुग्घू ॥

साधु वाद से मन्दिर गूँज उठा और बाबू हरिश्चन्द्रजी से स्नेहानुग्रह इसी क्षण से बढ़ा ।

घर आने पर पिताजी ने बहुत आशीर्वाद दिये तब मैंने यही सवैया भेट कर प्रणाम किया और कहा कि यह कविता आप की है आपही के शिक्षा प्रभाव से प्रादुर्भूत है सो आपही के अर्पण है (उनने अङ्गीकार किया)

सं० १९२७ में बाबूहरिश्चन्द्रजी ने कविताबर्द्धिनीसभा का स्थापन किया । प्रथम बार यही समस्या थी कि

"चिरजीवी रहो विकटोरियारानी"

यह भी आज्ञा थी कि प्रातःकाल का वर्णन हो । इसपर मैंने भी पूर्ति की, सो दैवात् सब से बिलक्षण हुई क्योंकि विकटोरिया कटोरिया का यमक किसी में न था । इस पूर्ति सहित बाबू हरिश्चन्द्रजी ने इसके विषय में निज प्रसिद्ध पत्र कविवचनसुधा में यों लिखा ।

"कविवचनसुधा जि० १ कार्तिक कृष्ण ३० सं० १९२७" बारानसी (नं० ४)

अम्बिकादत्त गौड़ * ।

आनँद तें परजा बिकसे सब कौल से कोससिरी हरखानी ।
सेवकिनी चिरियाँ सम चारहुँओर तेँ बोलि रही मृदु बानी ॥
भोरप्रताप सो जाको प्रताप लखें इमि अम्बिकादत्त बखानी ।
पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवी रहै बिकटोरिया रानी ॥

ईश्वर की कृपा से कविता में तो मेरी प्रसिद्धि हो ही गई थी परन्तु क्रमशः कथा कहने में भी प्रसिद्धि हो चली । पहले घर में कथा में पक्का हुआ फिर काशी के उस समय के सुप्रसिद्ध गोलघर वाले राधारमणजी के मन्दिर में कथा कही । (इत्यादि)

* इस विलक्षण बालक कवि की बुद्धि भी बिलक्षणही है, और अवस्था इसकी केवल बारह वर्ष की है । हम इसके और समाचार भी लिखेंगे ॥ क० व० सुधा० ॥

मेरी कुछ सितार की ओर रुचि देख पिताजी ने एक सितारी मंगादी और कुछ सितार सीखने का प्रबन्ध भी करा दिया।

इस समय काशिराज की ओर से धर्मसभा का स्थापन हुआ था वहाँ छात्रों की परीक्षा होती थी उसमें मैंने भी साहित्य में परीक्षा दी॥ व्युत्पन्न देख पण्डित बस्तीराम जी पण्डित सखाराम भट्ट, प्रभृति महानुभावों की कृपा बढ़ी। तेरह वर्ष के वय में मेरा विवाह हुआ। पण्डित कृष्णलाल वाजपेयी जी से (जो इन दिनों भरतपुर में राजकार्य में हैं) मैंने न्यायशास्त्र पढ़ना आरम्भ किया। धर्मसभा में पारितोषिक के दिन काशीराज महाराज ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह बहादुर अपने हाथ से पारितोषिक बांटते थे सो महाराज ने मुझे अल्पवय में पारितोषिकाधिकारी देख कुछ पूछा जिसका मैंने श्लोकबद्ध उत्तर दिया तब महाराज बहुत ही प्रसन्न हुए। उनके पण्डित श्रीताराचरणतर्करत्न भट्टाचार्य ने कुछ और पूछा उसका भी उत्तर मैंने श्लोक ही में दिया। महाराज ने भट्टाचार्य से कहा कि इन्हें कुछ आप भी पढ़ाइये और हमारे यहां भी जब तब लाया कीजिये। थोड़े दिनों के अनन्तर काशी के प्रधान रईस बाबू ऐश्वर्य्य देव नारायणसिंह से महाराज ने स्वयं मेरी प्रशंसा की और कहा कि उन्हें खोज कर हमारे यहां लाइये। बाबू साहेब मुझे वहां ले गये धीरे धीरे आना जाना रहा। पर गङ्गा पार का कष्टप्रद दरबार समझ मैं प्रायः नहीं जाता था।

मैं ने पण्डित ताराचरणतर्करत्नभट्टाचार्य के यहां साहित्यदर्पण और सिद्धान्तलक्षण (न्याय) पढ़ना आरम्भ किया। प्रातःकाल प्रतिदिन आत्मावीरेश्वर के मन्दिर में कथा कहता था।

जिस समय मेरा बारह वर्ष का वय था उसी समय एक तैलङ्ग हद्द अष्टावधान काशी में आये और प्रसिद्ध गुणिप्रिय भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी के यहां अपना अष्टावधान कौशल दिखलाया। उस समय पिताजी के सहित मैं भी उपस्थित था। उनके अष्टावधान होने के अनन्तर बाबू हरिश्चन्द्रजी ने पण्डितों की ओर दृष्टि दे कर कहा कि इस समय काशीवासी भी कोई चमत्कार इनको दिखलाते तो काशी का नाम रह जाता। यह सुन सब तो चुप रहे परन्तु मेरे पूज्य पिता पण्डित दुर्गादत्तव्यासजी ने कहा कि अच्छा यह बालक एक सरस्वती यन्त्र कविता करता है सो देखिये।

मेरे आगे लेखनी, मसि, पत्र, खसकाये गये। मैंने एक पत्र पर आठ आठ कोष्ठ की चार पंक्ति वाला आयत यन्त्र बनाया और पूछा कि किस पदार्थ का वर्णन हो॥

बाबू हरिश्चन्द्र के सहोदर अनुज बाबू गोकुलचन्द्रजी ने कौतुकपूर्वक कहा कि इस घड़ी का वर्णन कीजिये॥ मैंने कहा "इन कोष्ठों में जहां जहां कहिये मैं कोई कोई अक्षर लिखता जाऊँ सूधा बाँचने में श्लोक होगा।" इसका भावार्थ तैलङ्ग शतावधान को समझा दिया गया। वे जिस २ कोष्ठ में बताते गये वहां वहां मैं अक्षर लिखता गया अन्त में यह श्लोक प्रस्तुत हुआ॥

"घटी सुवृत्तासुगतिर्द्वादशाङ्कसमन्विता। उन्निद्रा सततं भाति वेश्यावीव विलक्षणा॥"

साधुवादध्वनि के अनन्तर शतावधान ने उसी विषय पर एक और श्लोक बनाने को कहा तो वैसे ही यह बना ॥

"घटी खटखुटाशब्दव्याजेनेन कथयत्युत । रामं रट रट प्राज्ञ किमन्यैर्विफलैः श्रमैः ॥,,

फिर बाबू हरिश्चन्द्र जो ने साधुवाद पूर्वक अनेक हिन्दी कविता भी मुझसे स्वरचित पढ़वाई और कई एक का तात्पर्य उन शतावधान से कहा । उनने कहा "सुकविरेषः ।"

बाबू हरिश्चन्द्र जी ने कहा लोजिये अब आपको सुकवि का खिताब मिल गया । पण्डित सीतलाप्रसाद तिवारी और बेचन पण्डित जी प्रभृति उस समय के कालिज के उपस्थित पण्डितगण ने भी कहा ठीक है ये सुकविपद के योग्य हैं और किसी समय अवश्य ही भगवत् कृपा से जगत्प्रसिद्ध सुकवि हो जायँगे । भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने "इससे बढ़ के आपको क्या दें" कह एक प्रशंसापत्र लिख दिया और उसमें "काशी कवितावर्द्धिनो सभा से सुकवि पद मिला" इसको सूचना दी ॥ (मैं किसी पद्य में सुकवि औ किसी, में पूरा नाम देने लगा) ॥

तेरह हो वर्ष के वय में मैं पितृचरण सहित डुमराँव राजधानी में आया । यहाँ के राजा, महाराज राधिकाप्रसादसिंह मेरी कविता सुन अति प्रसन्न हुए, और भरे दरबार में कई एक समस्यायें दीं जिनकी पूर्ति मैंने तत्क्षण की । महाराज बहादुर को बिदित हुआ कि मैं भागवत पढ़ता हूं । कहा किसी श्लोक का अर्थ कहिये मैंने 'नौमोड्यते" श्लोक का अर्थ कहा सारो सभा अति प्रसन्न हो गई । रस मिलने से महाराज बहादुर ने कई दिन तक श्रीमदभागवत का अर्थ सुना । यह रामनवमी के उत्सव का समय था, अनेक बबुआन औ गुणीजन उपस्थित थे ॥

क्रमशः मुझ को इधर तो साङ्ख्ययोग वेदान्त पढ़ने का व्यसन हुआ और उधर सङ्गीत में सितार जलतरङ्ग, नसतरङ्ग आदि का । पर सभी ऐसा चला जाता था कि एक कार्य से दूसरे में विघ्न नहीं पहुंचता था । तिस पर भी पिताजी के वृद्ध तथा समय बिलक्षण होने के कारण कुछ कुछ कुटुम्बपोषण की भी चिन्ता रखनी पड़ती थी । मैं रानो बड़हर के यहाँ अनुष्ठान करता तथा कथा भी कहता था । मुझे शास्त्रार्थ का भी व्यसन हुआ ।

सं० १९३१ में काशी के गवर्नमेण्ट कालिज में ऐंग्लो संस्कृत विभाग में मैंने नाम लिखवाया ॥ अंगरेजी भो कुछ समझ चला । मैं अपने बहनोई पण्डित बासुदेव जी से वैद्यजीवनादि छोटे २ वैद्यक ग्रन्थ भी पढ़ने लगा और इस समय के काशी के सुप्रसिद्ध वैद्य विश्वनाथ कविराज विद्या कल्पद्रुम से अधिक स्नेह होने के कारण कितनेही वैद्यक के सुगूढ़ तत्व उनसे भी पाये । मैंने वंगभाषा में भी परिश्रम आरम्भ किया और धीरे २ हिन्दी के लेख लिखने लगा । इन दिनों आर्यमित्र नामक एक पत्र काशी से निकलता था मैं उसमें नाना प्रकार के लेख लिखने लगा और प्रस्तारदीपक, ललितानाटिकादि ग्रन्थों की रचना में हाथ डाला (मेरे रचित ग्रन्थों की सूचनिका अन्त में है उसमें सब स्पष्ट होगा)

(इन दिनों मेरा और भारतजीवन के सम्पादक बाबू रामकृष्ण का अधिक सङ्ग रहता था। और बाबू देवकीनन्दन बाबू अमीरसिंह बाबू कार्तिकप्रसाद प्रभृति हमलोगों के अन्तरङ्ग मित्र थे जिनसे आजतक वही घन स्नेह चला जाता है)

कालिज में नाना प्रकार की समस्यायें उड़ती थीं, उनकी पूर्ति से कुछ नाम बढ़ा।

पण्डित रामचन्द्रजी से (इन दिनों अलवर में अध्यापक हैं) और पं० जानकीप्रसाद ओझा से (इन दिनों पटना कालिज में अध्यापक हैं) मेरा अति स्नेह था॥ प्रति दिन श्लोकबद्ध भाषण का अभ्यास बढ़ाया यहां तक कि हमलोग तीनों एक २ घंटा श्लोकबद्ध भाषण करने लगे। महाराज मिथिलेश का राज्याभिषेक समय आसन्न था। उनके पण्डित युगलकिशोर पाठकजी के द्वारा राजाज्ञा पा कर मैंने महाराज के लिये प्रसिद्ध सामवत नाटक बनाया॥

सं० १८३४ में ऐंग्लो की उत्तम वर्ग तक की पढ़ाई मैंने समाप्त की, साथही डाइरेक्टर केम्सन साहब ने ऐंग्लो विभाग को उठा दिया। तब से अंगरेजी का अभ्यास घर ही में रहा। इसी वर्ष अभिनव स्थापित काश्मीराधीश के संस्कृत कालिज में मैंने नाम लिखवाया। वहां परीक्षा दी। कालिज की प्रधान अध्यक्षता जगत्प्रसिद्ध स्वामी विशुद्धानन्दजी के हाथ में थी। इनने यावत्पण्डितों के समक्ष मुझे व्यास पद दिया। (यों तो मैं पहलेही से व्यासजी कहा जाता था परन्तु अब वह पद और भी पक्का होगया

सं० १८३७ में काशी गवर्मेंण्ट कालिज में आचार्य परीक्षा नियत हुई। यह परीक्षा और सब परीक्षाओं से उत्तम है। मेरे सब ग्रन्थ तैयारही थे। चार मास में पुनः जीर्णोद्धार करके परीक्षा दी। इस वर्ष साहित्य में १३ और व्याकरण में १५ छात्र परीक्षा देने गये थे। उनमें साहित्य में केवल मैं उत्तीर्ण हुआ और व्याकरण में २ छात्र उत्तीर्ण हुए। इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने के कारण गवर्मेंण्ट से मुझे साहित्याचार्य पद मिला।

शोक का विषय यही है कि सं० १८३१ में तो मेरी माता का परलोक हो गया और सं० १८३७ के आरम्भही में मेरे पूज्य पिता का भी काशीवास हो गया। इस कारण मैं अति दुःखित था। पिता जी के उपरान्त पूरा भार आ पड़ा। ज्येष्ठ भ्राता पूर्वही प्रसन्न नहीं रहते थे। दुष्टों ने झगड़े बढ़ाये। पिता जी यद्यपि स्वयं विभाग कर गये थे तथापि बखेड़ा उठा। ऋण अधिक हो गया और आश्चर्य यह है कि इसी अवस्था में मुझे आचार्य परीक्षा पास करना पड़ा था जो ईश्वर की कृपा ही से हुआ॥

इसी समय मैंने दर्शनशास्त्र में कलकत्ता उपाधि परीक्षा का भी यत्न किया था परन्तु मार्ग ही में वैद्यनाथ में अति ज्वरग्रस्त हो गया और फिर आया॥

थोड़ेही दिनों के अनन्तर पोरबन्दर के गोस्वामी वल्लभकुलावतंस श्री १०८ जीवनलाल जी महाराज से मुझे परिचय हुआ।

ये मुझ से कुछ पढ़ने लगे और उनके साथ २ कलकत्ते गया वहां तीन मास रहना हुआ। और

इसी बीच बड़े बाजार में जिस मकान में गुसाईंजी टिके थे उसी में नित्य सभा होने लगी और सनातनधर्म के विभिन्न विषयों पर मेरी २८ वक्तृतायें हुई। शीघ्र कविता के भी अनेक कौशल मैंने दिखाये कई सभाओं में वङ्गदेशीय पण्डितों से गहन शास्त्रार्थ हुए। इन सब पण्डित सभाओं के वृत्तान्त कलकत्ते के इस समय के सारसुधानिधि, भारतमित्र, और उचितवक्ता पत्रों में छपे थे।

काशी में आने पर मैंने वैष्णवपत्रिका नामक मासिक पत्र निकाला।

पिता जी के परिश्रम से और ईश्वर की कृपा से इस समय मुझे ऐसा अभ्यास हो गया था कि मैं एक घड़ी अर्थात् २४ मिण्ट में १०० श्लोक बना लेता था। इसको देखकर काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के सभ्य पण्डितों ने सं॰ १९३८ में माघ मास में मुझे 'घटिकाशतक'' पद सहित एक चांदी का पदक (तगमा) दिया॥

जीविका के अभाव से मैं कष्ट ग्रस्त था और ऋण सिर पर सवार था। सं॰ १९४० में बनारस कालिज के प्रिंसिपल ने मुझे मधुबनी संस्कृत स्कूल का अध्यक्ष बना दरभंगे जिले में भेज दिया। थोड़े ही दिनों के अनन्तर यहां मैंने अनेक सभाओं का स्थापन किया और तिरहुत भाषा का अभ्यास किया तथा संस्कृत शिक्षा की व्युत्पादक अभिनवप्रणाली निकाली जो उस समय तो वहां के निवासियों को अति अप्रिय लगी परन्तु आज उसी उद्योग के फल स्वरूप बिहार संस्कृत संजीवन समाज नियत है जिसके द्वारा बिहार में संस्कृत का प्रचार है। दो वर्ष श्रम करने में उस समय के स्कूलों के इंसपेक्टर पोप साहेब मेरे सहायक हुये और फिर क्रमशः यह समाज स्थापित हुआ। स्थापित होने के अनन्तर भी इस सभा की उन्नति के लिये घूम २ कर राजा महाराजाओं से सहायता दिलवाई।

बिहार में आर्य समाजियों ने प्रवेश करना चाहा था और पहले पहल बांकीपुर में इनकी धूम हुई उसी समय मैं बुलाया गया। मैं इस समय अत्यन्त आपदग्रस्त था क्योंकि एक तो मधुबनी में मेरा गृह दाह हो गया था जिसमें मेरे हस्तलिखित कई एक पुस्तक भस्म हो गये थे और दूसरे मेरा सहोदर युवा छोटा भाई जिसको मैं स्वयं शिक्षा देता था और बिवाह कराया था और जिसे मैं अपने साथ रखता था शान्त हो गया था॥

मैं बांकीपुर में आया। तीन चार व्याख्यान कालिज में बड़ी धूम से हुए। कालिज के द्वार पर मेला लग गया। बिगड़े हुए। एफ् ए; बीए; ठिकाने आये। इस लगाव में बांकीपुर छपरा आदि स्थानों में कई एक सभायें हुई जिसमें मैं भी बुलाया गया;। इससे आर्य समाज तथा ब्रह्मसमाज का वेग रुक गया (सं॰ १९४२)।

मधुबनी से उदास हो मैंने इस्तीफ़ा दे दिया। परन्तु तिसपर भी मेरी जान न छुटी। साथ ही इन्सपेक्टर ने मोज़फ्फ़रपुर जिला स्कूल में मुझे हेड पण्डित नियत किया (सं॰ १९४३); वहां जाने पर धर्मसभा, सुनीतिसभाआदि कई मण्डलियां जमगई। इस समय मैंने पुष्करजी तक की यात्रा की

और निज जन्मस्थान जयपुर का दर्शन किया। इस समय तक विहार में मैं अनेक धर्मसभाओं का स्थापन कर चुका था सो हरिहर क्षेत्र में उनकी सम्मिलनी की महासभा स्थापित की॥

इस समय भागलपुर में प्राइवेट कालिज होने से भागलपुर ज़िला स्कूल क्षतिग्रस्त हो रहा था। इन्सपेक्टर ने मुझे वहां भेज दिया (१८४४) वहां आर्यसमाजी लोग घुसना चाहते थे सो भिड़विड़ाये और ईश्वरानन्दस्वामी को बुला व्याख्यान कराया। मैंने भी सनातनधर्मपोषण पर दो चार व्याख्यान किये। फिर अनेक आर्यसमाजी आचार्य बुलाये गये। कर्णगढ़ पर बड़े समारोह की सभायें हुईं। सनातन धर्म का विजय हुआ। इस स्मरण पर विजयिनी धर्म सभा का कार्य गढ़ पर स्थापन हुआ तथा नगर में विजय सभा प्रभृति और भी अनेक सभा स्थापित हुईं। (सनातनधर्म की जय नामक पोथी बांकीपुर सुनीतिसंचारिणी की ओर से छपी) इसी वर्ष छपरे में आर्यसमाजियों का विशेष धूम हल्ला हुआ। मैं बुलाया गया और भी अनेक विद्वान् एकत्रित थे। अनेक व्याख्यान हुए। दूसरे दूसरे नगरों से कितने श्रोता उपस्थित हुए। सनातन धर्म का विजय हुआ।

इसी समय पोप साहेब के द्वारा मैंने विहारसंस्कृतसंजीवन स्थापित किया जिसके कार्य सम्पादक पहले तो यहां के ऐसिस्टेन्ट इंसपेक्टर मिस्टर टेरी थे फिर मैं स्वयं कार्य सम्पादक हुआ और विहार में संस्कृत की उन्नति होने लगी॥ इस समय तक सौ से अधिक छात्र विहार संस्कृत सञ्जीवन से दो दो चार २ वर्ष तक मासिक पा पढ़ कर डिग्रीत हुए हैं।

सं० १८४५ में सामवत नाटक खड्गविलास में छप कर तयार हुआ महाराज मिथिलेश के अर्पित हुआ। महाराज बहादुर ने भी अपनी योग्यतानुसार मेरा सम्मान किया।

इसी समय ज़िला मैमनसिंह रामगोपालपुर के ज़मीन्दार बाबू योगीन्द्रनाथ चौधरी ने मुझे बुलाया रामगोपालपुर में पण्डित मंडली में एकदिन संस्कृत में और एक दिन बङ्गभाषा में भी मुझे व्याख्यान करना पड़ा। ढाकाप्रकाश प्रभृति पत्रों में इसका इतिवृत्त छपा॥

संस्कृत में गद्य (उपन्यास) शिवराजविजय बनाने में मैंने हाथ लगाया। यह इस समय कई वर्ष से बना हुआ तयार है, परन्तु इस समय कोई गुणग्राही ऐसा नहीं देख पड़ता जो दो चार सहस्र रुपये लगाकर प्रकाशित करे। महाराज हथुआ ने पहिले इस भार का स्वीकार किया फिर आजकल करते परलोक सिधारे॥ अब कई वर्ष से कांकरोलीनरेश गोस्वामी श्री १०८ बालकृष्णलाल महाराज इसे छपवाने की प्रतिज्ञा कर रहे हैं। कदाचित् ये पूरी करें॥

सनातनधर्म महामण्डल दिल्ली से "विहारभूषण पद" के साथ सोने का तग़मा मुझे मिला (यह महाराजाधिराज मिथिलेश्वर के व्यय से मिला)॥

सं० १८४८ में विहारीविहार (विहारी के दोहों पर कुण्डलियाओं का ग्रन्थ) कई वर्ष के परिश्रम से मैंने बनाकर समाप्त किया पर किसी ने यह पुस्तक हस्तलिखित ही चुरा लिया।

पुनः इसको बहुतश्रम से तयार किया॥ सं० १९४९ में कलकत्ते से हरियाणा के हिसार की यात्रा की।

सं० १९५० में छुट्टी लेकर देश भ्रमण के लिये मैं चला। डुमरांव में रीवांनरेश से साक्षात् हुआ। गया में माध्वाचार्य का दर्शन हुआ। फिर मैं बम्बई गया यहां वल्लभकुलभूषण गोस्वामी श्री१०८ जीवनलालजी महाराज विराजते थे (इनने पहले कुछ मुझसे पढ़ा था) इनने भी मेरा साहाय्य किया। हम लोग साथ २ पटने आये। यहां अनेक सभायें हुईं। काशी की महासभा में कांकरीलीनरेश गोस्वामी श्री १०८ बालकृष्णलाल महाराज ने मुझे "भारतरत्न" पद सहित सुवर्ण पदक (तग़मा) दिया (१९५१) फिर गोस्वामी श्री १०८ जीवनाचार्य के साथ मैंने पंजाब की यात्रा की।

सहारनपुर, लाहौर, अमृतसर, आदि स्थानों में होते हुए डेराइस्माइल खां में कुछ दिन रह कर डेराग़ाजी खां गये। यहां पर मैं दो मास बीमार पड़ा रहा। जीवनाशा जाती रही। परन्तु आयुःशेष था। अच्छा हुआ पुनः मुल्तान पहुंचा। यहां महासभायें बड़ी धूम से हुईं। घटिका शतक शतावधानादि कौशल देख पण्डितों ने प्रशंसापत्र दिये। फिर वहां से शिकारपुर, रोढ़ी, शक्कर, रेवन, अहमदपुर आदि स्थानों को देखते हमलोग नगरठट्ठा पहुंचे। वहां से कुछ आवश्यकतानुसार लौट कर मैं काशी चला आया। यह यात्रा डेढ़ वर्ष की हुई॥

धीरे २ भागलपुर स्कूल की अवनति होने लगी, लड़के घटने लगे। गवर्नमेन्ट ने मुझे भागलपुर से बदल के छपरा भेज दिया जो इस समय बिहार में प्रथम है और सारे बङ्गाल में भी ऐसे स्कूल कदाचित् ही एक दो और हों तो हों।

यहां से भी ग्रीष्मावकाश में मैं बम्बई, श्रीजीद्वार, जयपुर आदि स्थानों में यात्रा कर चुका हूं॥ महाराजाधिराज श्रीअयोध्यानरेश ने मुझे 'शतावधान" पद सहित सुवर्ण पदक तथा सन्मान पत्र दिये और बम्बई में गोस्वामी श्री १०८ घनश्यामलालजी महाराज ने महा सभा कर "भारतभूषण" पद सहित सुवर्ण पदक दिया।

थोड़ेही दिन हुए किसी कारण से मैं जयपुर गया था फिरती बार श्रीमथुराजी में मेरे सच्चेगुणग्राही गोस्वामी श्री १०८ जीवनलालजी महाराज का दर्शन हुआ। वे मुझे साथ ले ग्वालियर पधारे। वहां उनी महाराज के आधिपत्य में अनेक सभायें हुईं और उपदेश व्याख्यानादि हुए। वहां के प्रायः सभी मुख्य मुख्य पण्डितों ने मुझे आशीर्वाद पत्र दिये हैं॥

इनदिनों मैं छपरे में अध्यापन कर रहा हूं। श्रीमहारानी विक्टोरिया को कोटि कोटि धन्यवाद दे रहा हूं जिसके अवलम्ब से मेरे ऐसे कदर्थ्य पण्डितों का भी सुख से कालयापन होता है॥ भारतीय विद्वज्जनों की मुझपर बड़ी कृपा रहती है और उसी से मैं आनन्द में रहता हूं॥ भगवान ने मुझे एक कन्या दी है और एक पुत्र चिरञ्जीवी राधाकुमार सातएं वर्ष में है॥

स्वरचित ग्रन्थों का विवरण ॥

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रायन्त्र नाम	विशेष
१	प्रस्तारदीपक	१९२५				अपूर्ण हिन्दीभाषा
२	गणेशशतक	१९२६	१९२७			संस्कृत
३	शिवविवाह	१९२७				अपूर्ण
४	सांख्यसागरसुधा	१९३४	१९३४	१९५२	व्यासयन्त्रालय भागलपूर	दादूमहावीरप्रसा-दरचित भाषाटीका सहित
५	पातञ्जलप्रतिबिम्ब	१९३४	१९३७	१९४८	व्या० य०	संस्कृत
६	कुण्डलीदर्पण	१९३४	१९३५			सं० अमुद्रित
७	सामवत नाटक	१९३४	१९३७	१९४५	खड्गविलास बांकीपुर	संस्कृत
८	इतिहाससंक्षेप (संस्कृ०)	१९३४				सं० अपूर्ण
९	रेखागणित (श्लोकबद्ध) १ अ०	१९३५	१९३५			सं० अमुद्रित
१०	ललिता नाटिका	१९३५	१९३५	१९५०	हरिप्रकाश काशी	व्रजभाषा
११	रत्नपुराण	१९३५				अपूर्ण संस्कृत
१२	आनन्द मञ्जरी	१९३६	१९३६			व्रजभाषा (गीत)
१३	चिकित्साचमत्कार	१९३६				अपूर्ण (मधुमती में छपता होगया)
१४	अबोधनिवारण	१९३७	१९३७	१९३७	"	हिन्दीभाषा तीनवार छपचुका
१५	गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन	१९३७	१९३७	१९३७	"	संस्कृत (दोबेर छपा)
१६	ताश कौतुक पचीसी	१९३७	१९३७	१९३७	"	हिन्दी भाषा
१७	समस्यापूर्तिसर्वस्व	१९३७				अपूर्ण संस्कृत
१८	रसीली कजरी	१९३९	१९३९	१९३९	हरिप्रकाश काशी	हिन्दी भाषा

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रा यन्त्र नाम	विशेष
१९	द्रव्यस्तोत्र	१९३९	१९३९	१९३९	खड्गविलास (बांकीपुर)	संस्कृत
२०	चतुरंग चातुरी	१९३९	१९३९	१९४१	चन्द्रप्रभा काशी	हि० भाषा
२१	गोसंकट नाटक	१९३९	१९३९	" "	खड्गविलास	"
२२	महाताशकौतुकपचासा	१९३९	१९३९	१९३९	चं० प्र० काशी	"
२३	तर्कसंग्रह भाषाटीका	१९४०	१९४०	" "	हरिप्रकाश	"
२४	सांख्यतरंगिणी	१९४०	१९४८	१९४८	खड्गवि० (बांकी०)	"
२५	क्षेत्रकौशल	१९४०	१९४०	१९४१	चं० प्र० काशी	"
२६	पंडित प्रपंच	१९४०				"
२७	आश्चर्य वृत्तान्त	१९४१	१९४५	१९५०	व्यास यन्त्रालय भागलपुर	"
२८	छन्दः प्रबन्ध	१९४१				अपूर्ण
२९	रेखागणित भाषा	१९४२	१९४२	१९४३	खड्गविलास	"
३०	धर्म की धूम	१९४२	१९४२	१९४२	"	व्रजभाषा
३१	दयानन्दमतमूलोच्छेद	१९४२	१९४२	१९४२	"	हि० भाषा
३२	दुःखद्रुमकुठार	१९४२	१९४३	१९४३	ह० प्र०	संस्कृत
३३	पावसपचासा	१९४२	१९४२	१९४२	ख० वि०	व्रजभाषा
३४	कलियुग औधी	१९४३	१९४३	१९४२	नारायणप्रे० (मुजफ्फरपुर)	हि० भाषा
३५	दोषग्राही औ गुणग्राही	१९४३				अपूर्ण
३६	उपदेशलता	१९४३	१९४३	१९४३	ख० वि०	हिन्दी
३७	सुकविसतसई	१९४३	१९४३	१९४४	नारायणप्रेस	व्रजभाषा
३८	मानसप्रशंसा	१९४२	१९४४	१९४४	ख० वि०	व्रजभाषा रामायण की भूमिका में छपी

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रायन्त्र नाम	विशेष
३९	आर्य्यभाषा सूत्रधार	१९४३				सूत्रवृत्ति संस्कृत अपूर्ण
४०	भाषाभाष्य	१९४३				आर्य्यभाषासूत्रधार पर अपूर्ण
४१	पुष्पवर्षा	१९४४	१९४४	१९४४	नारायण	व्रजभाषा
४२	भारतसौभाग्य	१९४४	१९४४	१९४४	ख॰ वि॰	हि॰ भा॰ नाटक
४३	विहारी विहार	१९४४	१९५२	१९५४	भारतजीवन का॰	व्रजभाषा
४४	रत्नाष्टक	१९४४	१९४४	१९४४	चं॰ प्र॰	संस्कृत
४५	मनकी उमंग	१९४४	१९४४	१९४४	नारायण	हिं॰ तथा व्र॰ भा॰
४६	कथा कुसुम	१९४४	१९४४	१९४४	ख॰ वि॰	संस्कृत
४७	पुष्पोपहार	१९४४	१९४४	१९४४	"	" तथा व्र॰ भा॰
४८	मूर्ति पूजा	१९४४	१९४७	१९४८	व्यासयन्त्रालय	हिन्दी
४९	संस्कृताभ्यासपुस्तक	१९४५	१९४५	१९४५	चं॰ प्र॰ काशी	सं॰ अंग्रेजी॰
५०	कथाकुसुम कलिका	१९४५	१९४५	१९४५	व्यासयन्त्राल॰	हिन्दीभाषा
५१	प्राकृत प्रवेशिका	१९४५	१९४५			अमुद्रित सं॰
५२	संस्कृत संजीवन	१९४५	१९४५	१९४५	चं॰ प्र॰	हिं॰ भाषा
५३	प्राकृतगूढशब्दकोश	१९४५	१९४५	१९४५	ख॰ वि॰	सामन्तकेअंत में।
५४	अनुष्टुब्लक्षणोद्धार	१९४५	१९४५			अमुद्रित॰ सं॰
५५	शिवराजविजय	१९४५	१९५०			"
५६	बालव्याकरण	१९४६	१९४६	१९४६	चं॰ प्र॰	सं॰ अंग्रेज़ी
५७	होहो होरी	१९४६	१९४६	१९४६	व्यासयन्त्रालय	व्र॰ भाषा
५८	झूलन झमक	१९४८	१९४८	१९४८	व्यासयन्त्राल॰	व्र॰ भाषा

	ग्रन्थ नाम	आरम्भ समय	समाप्ति समय	मुद्रण समय	मुद्रण यन्त्र नाम	विशेष
५९	स्वर्गसभा	१९४८	१९४८	१९४८	व्यासयन्त्रालय	ब्र॰ भा॰
६०	विभक्ति विभाग	१९४९	१९४९	१९४९	"	हिन्दी
६१	पढ़े पढ़े पत्थर	१४९				अपूर्ण
६२	सहस्रनामरामायण	१९५०	१९५०	१९५०	" "	सं॰
६३	गद्यकाव्यमीमांसा	१९५०	१९५०	१९५०	" "	सं॰
६४	मरहट्टा नाटक	१९५०				अपूर्ण॰ हि॰ भा॰
६५	साहित्य नवनीत	१९५०	१९५०	१९५०	प्रीतयन्त्रालय	हिन्दी
६६	वर्ण व्यवस्था	१९५०	१९५२			" अमुद्रित
६७	बिहारी चरित	१९५०	१९५४	१९५४	भारतजीव॰	बिहारी बिहार के आरम्भ में।
६८	आश्रमधर्मनिरूपण	१९५०	१९५२			अमुद्रित
६९	अवतार कारिका	१९५४	१९५४	१९५४	व्यास यन्त्रा॰	अवतारमीमांसा के अन्त में सं॰
७०	अवतारमीमांसा	१९५१	१९५१	१९५४	व्या॰ यं॰	हिन्दी
७१	बिहारीव्याख्याकारचरितावली	१९५१	१९५४	१९५४	भारतजीवन	बिहारी बिहार की भूमिका में
७२	पश्चिमयात्रा	१९५१				अपूर्ण
७३	स्वामिचरित	१९५१	१९५२			अमुद्रित ब्र॰ भा॰
७४	शीघ्रलेखप्रणाली	१९५२	१९५२			" हिं॰ भाषा
७५	गद्यकाव्यमीमांसा भा॰	१९५३	१९५३	१९५४	राजराजेश्वरी	" "
७६	घनश्याम विनोद	१९५३				अपूर्ण ब्र॰ भा॰
७७	रांची यात्रा	१९५४				" हिं॰ भाषा
७८	निज वृत्तान्त	१९५४	१९५४	१९५४		" " " अमुद्रित

विहारीविहार पर हिन्दी भाषा के कतिपय मर्मज्ञो की समालोचना।

वनारस कालीज दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर पंडित स्वामि श्री राममिश्रशास्त्री
महामहोपाध्याय प्रेषित ।

विहारिरचितेकाव्ये धुर्यं माधुर्यमस्ति यत्। अंविकादत्तकविना तत्सहस्रगुणीकृतम् ॥

पाटली पुत्तस्थ महाराजकुमार वावू रामदीदीनसिंह कृत ।

सतसैया के दोहरा जगजाहिर जिमि वान। सुकवि अंविकादत्त नें तिनपैं फेरी सान ॥

करी विहारीसतसई जगजाहिर जिहिनाम। सुकविव्यास तापैरची कुण्डलिया सुखधाम ॥

दोहा मैं कवितामिली जोड़परत नहिंजान। रसउलह्यौ पुनिसौगुनो मोहतसवै सुजान ॥

डुमरावनिवासी रामकिशोर कवि कृत

दोहा।

सतसैया के दोहराज्यौं नावक के तीर। धनुही कुंडलिया रची सुकवि व्यास तहँ वीर॥

तारणपुरनिवासी वावू रामचरणसिंह कृत

दोहा।

करी विहारी सतसई भरी अनेक सवाद। व्यासअंविकादत्त पुनि राखी तेंहि मरजाद॥

रसकरिडाखोसौगुनो निजकविता के जोर। सुकवि छाँड़ि ऐसी करै या जग मैं को और॥

काशिराजाश्रित श्रीवलदेव कवि प्रेषित।

सतसइया को दोहरा कुण्डलिया मह कीन ।
व्यास अंविकादत्त वर परम सुखद करि दीन ॥
परम सुखद करि दीन विहारी कवि को दोहा ।
अति उत्तम यह भयो जाहि सुनते मन मोहा ॥
वलदेवहु सुचि काव्य सरस सुनि चित हरसइया ।
सगुन दोष तें रहित भई पूरित सतसइया ॥

कवित्त ।

सरस विहारी दोहा ताकी कुण्डलिया मढ़ी बढ़ि नहि देखि जगजाहिर सुनामी नर।
शास्त्रन के पंडित हैं सब गुन मंडित हैं दै दै उपदेस जग जीवन करत तर ॥
कहै बलदेव विद्यादान निसि दिन देत सुतन समेत याको शंकर अनन्द कर ।
परम उदार सरदार सुकुमार अति सुन्दर सुशील अंबादत्त व्यास विप्रवर ॥

सोरठा— कुण्डलिया सुभ कौन काव्य विहारीसतसई ।
अम्बादत्त प्रवीन रची सरसता सौगुनी ॥

दोहा— सरस विहारी दोहरा कहत सुनत कवि लोग ।
अब कुण्डल या को श्रवन भूषन धारन जोग ॥

रतनपुरा छपरानिवासी बाबू विहारीसिंह रसराज कृत

कवित्त ।

विहारीविहार कों विलोकत विहारी बेस रहत कलेस ना सुजन मन मौज है ।
काव्य गुन सरस भरे हैं जामें कूटि कूटि भाव भेद उज्जल प्रसाद गुन ओज है ॥
नायिका के चित्र इन आँखिन के सोहें फिरें खीचे जनु मदन मुसौअर के चौज है ।
जगत प्रसिद्ध व्यास भारतरतन बेस ताकी कविता कों सुनि नाचत मनोज है ॥
एक एक दोहा पर कुंडल अनेक रचे पृथक पृथक भाव भेद दरसायो है ।
सुकवि रसीले की अनोखी कविता पै रीझि कौन सो सुजान नाहिं मन हरषायो है॥
प्रथम विहारी ना विहारी छोड़ी कोऊ ठौर रचि कै रंगोन दोहा रंग सरसायो है ।
तामें व्यास जोड़ तोड़ काट साट बाँधी बेस कीनोहै खरादखूब जोड़ ना दिखायोहै
कविता विहारी की प्रसिद्ध जग जाहिर है दोहा के समान दोहा भयो है न होनहार।
केते ग्रन्थकार कीन्ही टीका पर टीका बेस टीका सिर टीका भई रससों भरी अपार॥
सुकवि रसीले व्यास परम निपुनता सों ललित कुंडलिया रची साँचे में सुढार ढार ।
भाव भेद पूरि रीति नीति अलंकार धारि रस दरसायो है अनोखि ढंग बार बार ॥

दरभंगानिवासी श्रीविश्वनाथ झा कवि कृत ।

सुकवि विहारीलाल जू की सप्तशतिका के परम गँभीर भाव चढ़त न दीठी है ।

तापै रचि रोला मनो भींत पर चित्र खैंचि आशय लखायो सुच्छ जैसे कोऊ चीठी है ॥
जाकी रस माधुरी पै सरस सुजानन कों कविताई सु औरन की लागत ज्यों सीठी है ।
हौं तो विश्वनाथ मुक्त कण्ठ ह्वै पुकारौं अजू अम्बादत्तजूकी कविताई अतिमीठी है ॥

कवि लाल विहारि के दोहरा पै विसुनाथ किते कविताई करी ।
पर कुण्डलियाहुँ रचै लगे केते रही सबही की अधूरी परी ॥
दृढ़ कै पन अम्बिकादत्त जू व्यास रमापति प्रीति हिये में धरी ।
सुविहारीविहार रच्यो सिगरो रचना कै सुधा मधुराई भरी ॥

माझा (जिला सारन) निवासी श्याम कवि कृत ।

कुण्डलिया तें सतसई सोभा मौगुन कीन ।
जुगल लाड़िली लाल की कीरति कलित नवीन ॥
कीरति कलित नवीन सुनत गुनिजन हितकारी ।
जिन चरनन की धूरि मुनिन निज सिर पर धारी ॥
मुदित होंहि नर नारि विलोकत अद्भुत चलिया ।
सोधि सुकवि वर स्याम कीन ऐसी कुण्डलिया ॥

पटनानिवासी बाबू पत्तनलाल उपनाम (सुसील) कवि कृत ।

जैसे मृगनैनी पिकवैनी चन्दमुखी सोभा औरहू सुसील बढ़ै साजत सिँगार सों ।
विविध मसाले मेवे डारिकैते पाक माँहिँ बढ़त सुगन्ध औ सवाद मजेदार सों ॥
भारतरतन व्यास अम्बादत्त कवि रच्यो तैसेहीं विहारी को विहार सुखसार सों ।
एक तो अमोल दोहे आप मनमोहे लेत तापैं सोहे कुंडल ये अति ही वहार सों ॥ १ ॥

सवैया ।

एक तो दोहे विहारी रचे अनमोल महा सिगरो जस गावै ।
तापै सजे भलि कुण्डलिया कवि अम्बिकादत्त महा मन भावै ॥
सो सुख है या विहारीविहार में सोने में जैसे सुगन्ध समावै ।
याहि प्रसंसिवे हेत सुसील की बुद्धि नहीं कहुँ आखर पावै ॥ २ ॥
भाव भी भाव जे गुप्त रहे कछु बूझन माहिँ रही कठिनैया ।

श्रीकविवर्य्य विहारी सुसील के दोहन में जे अहैं सतसैया ॥
अम्बिकादत्त किये सुगमै रचि कुण्डलिया तिन्ह पैं सुखदैया ।
मो मन होत अनन्द महा लखि देत उन्हैं सत कोटि वधैया ॥ ३ ॥

कवित्त ।

श्रीकवि विहारी जू के जैसे हैं रसीले दोहे तैसेही चुटीले यह कौन नाहिँ जाने है ।
केते भये टीके गद्य पद्य माहिँ नीके याके ताहू पै न काहू मन टप्तताई आने है ॥
नितही नवीन यापैं सजे हैं प्रवीन साज आज यह ग्रन्थ अति अन्तमोद माने है ।
सुकवि सुसील व्यास अम्बादत्त जाहि रचेपुनि पुनि देखैं जी न देखे बिना माने है ॥४॥
एक तो रसीले चटकीले मजेदार दोहे तापै और नोन मिर्च लागे बढ़े स्वाद हैं ।
कहाँ लौं प्रसंसा करैं व्यास अम्बादत्त जू की पुनिपुनि लाख लाख देत धन्यबाद हैं ॥
वे जे वहुतेरी वात श्रीकवि विहारी जू के जीवनचरित्र माहिँ कारन बिवाद हैं ।
खोज ढूंढ़ि तिनकोहू निरनय कीनो यामें देखि सों सुसील होत अति अहलाद हैं ॥५॥
काहू काहू दोहे पर पाँच पाँच सात सात कीनी कुण्डलिया भली सरस सुहानी हैं ।
भाँति भाँति भावन रुचावन रचनि ताकी स्तौनही सवाद जानैं जाति ना बखानी हैं॥
सुकवि सुसील कविबर व्यास अम्बादत्त मधुर महान रची सुधारस सानी हैं ।
आपही सो रसिक सुजान देखि जान जैहैं आँख आगे वस्तु काह कहन कहानी हैं ॥

यद्यपि सतसैया पै वहु कवि विरची हैं कुंडलियाँ ।
पूरन ललित हाव भावन सोँ खिलतीँ लखि मन कलियाँ ॥
पै काहू के सिगरे पूरे काहुक रहे अधूरे ।
हैं सवही के कथित काव्य अति सुन्दर रोचक रूरे ॥
पै जे पूरे अहैं सोउ सव आवत देखन नाहीं ।
कारन मुद्रित भये नाहिँ हैं फुटकर कछुक सुनाहीं ॥
अव यह पूरन सकल भाँति सों मुद्रित आँखनि आगे ।
रोम रोम पुलकत है लखि कै अति ही उर अनुरागे ॥
यह सौभाग्य लिख्यौ विधिना जनु सुकविहि कवि के माथे ।

सकल भाँति सों पूरन करि धरि दीनी हाथन हाथै ॥
भारतेन्दु बाबू हरिचँद की आवत देखन माहीं।
पै कुंडलिया सतसैया के सब दोहन पर नाहीं ॥
पटना हरमन्दिर महन्थवर श्री सुमेरसिँहजी ने।
विरची कछु कुंडलिया इनके पै मुद्रन नहिँ कीने ॥
यामें चरित बिहारी जू के सुकवि व्यास जू भाषे ।
टीकाकारहु के चरित्र पुनि खोज ढूँढ़ि कै राखे ॥
अरु बहु दोहे जिहिँ बहु कवि निज ग्रन्थन में तजि दीने ।
सोऊ सब टिप्पन कै कै या ग्रन्थि माहिँ लिख लीने ॥
जातें इनके भले परिश्रम आवत देखन माहीं।
धन्य धन्य पुनि धन्य धन्य बिनु कहे जात रहि नाहीं ॥
माँगत हम कर जोरि राम सों रहैं सुकवि नित सुखिया।
भारतरत्न भव्य भाषा के गद्य पद्य के मुखिया ॥
यह वर ग्रन्थ समाज कविन के बहु विधि आदर पावै।
सुकवि व्यास अम्बिकादत्त को सुजस सुभग जग छावै ॥

रसिक कवि सभा कानपुर।

ऐसा कौन अभागा काव्यप्रेमी होगा जिसने बिहारीलाल के रसमय चटकीले दोहे न पढ़े हों और पढ़ कर भी मोहित न हुआ हो। परन्तु ऐसे रसीले ग्रन्थ का गूढ़ तात्पर्य्य हर एक मनुष्य की समझ में साधारणत: नहीं आता था इस कारण हमारे हिन्दीहितैषी व्यासजी ने दोहों पर कुण्डलिया करके "सोने में सुगन्ध कर दी" अर्थात् एक तो बिहारी के दोहे तिसपर भी एक प्रसिद्ध कवि की कविता में टीका, क्यों न मन लुभाने वाली हो। अत: हमारी सभा व्यास जी को हृदय से शतश: धन्यवाद देती है कि जिन्होंने बहुत बड़ा परिश्रम करके ऐसे उपयोगी ग्रन्थ को लिखकर भाषा का गौरव बढ़ाया ॥

कुण्डलिया।

रचे बिहारी लाल बहु, दोहा चित्र विचित्र। जिनके अवलोकन किये, मन भो परम पवित्र ॥ मन भो परम पवित्र काव्य को एक वसीला। "रसिक" हिये बसिगयो

'विहारिविहार' रसीला ॥ शब्द सलिल वहु अर्थ ग्रन्थ अद्भुत रस चरचे। जो कछु सुकवि सुजान, जान यह कुंडल विरचे ॥

सत्यसमालोचक रसिकेश चरणकिंकर मनोहरलालमिश्र मंत्री।

वूंदीन्द्रमहाराजाधिराज के कविवर

परम प्रतिष्ठाधिकारी श्रीरावजी साहब श्री कविराज गुलावसिंहजी कृत।

सम्मति के हेत ग्रन्थ तुम जो पठायो यहाँ ताहि सुनि देखि भयो आनँद अपार है।
तिलक निहारि दस सार सब ही को लेइ छन्दोवद्ध कीनो सब जग सुखकार है ॥
सुकवि गुलाव यामैं आसय अथाहन को पूरन परिश्रम सों कीनो निरधार है।
मोसे मन वारेन के मन कौ हरनहार मोहन को मोहकारी विहारी विहार है ॥१॥

उक्त रावजी साहब के कुमार श्रीरामनाथसिंह जी कृत।

विहारी विहार नाम ग्रन्थ जो पठायो यहां सम्मति के काज सुनौ नीको सव भाय है।
छन्दोवद्ध पाठ अर्थ सरल सुहावन मैं आशय अनूप लखि हिय हुलसाय है ॥
कहै कवि रामनाथ रावरे परिश्रम को मेरे जानि नीको यहै फल उपजाय है।
वुध कविराजन की राजी माँहि मान पाय रावरो सुजस दिग अंतन लौं छाय है ॥

(वूंदी निवासिनी श्रीमती चन्द्रकलाबाई कृत)

दोहा।

सम्मति हित आयो यहां तिलकविहारी चारु।
सुकवि अंविकादत्त कृत सोहै अति मनहारु ॥ १ ॥
चंदकला नैं वुधन कौं यहां सुनाये सोय।
अति प्रसन्न ह्वै कहत भे वाह वाह सव लोय ॥ २ ॥

श्री पण्डित छोटेलालजी पटना मिरचाई गंज ।

श्रीअम्बिकादत्त व्यासजी ने श्री विहारी सतसई के सात से दोहों के समस्त ग्रन्थ की कुण्डिया बनाई किसी ने आज तक न किया ऐसा विचित्र काव्य जिसको पढ़ने में एक काल थोड़ा वाचाँ सुति करने की सामर्थ न रही तो एक शेर याद आया कि—

आईना लेके हाथ में तू वार वार देख । ऐ गुल तू अपने हुस्न की आपी वहार देख ।

पं० गंगाप्रसाद अवस्थी मास्टर उपसभापति रसिक कवि सभा (कानपुर)

कुण्डलिया ।

उमग्यो रस अतिही मधुर गूढ़ शब्द रमनीक । काव्य रसीलो रसभरो लगत न कतहू फीक ॥ लगत न कतहूं फीक हृदय उत्साह वढ़ावै । पढ़त न जिय अलसात सुकवि जन के मन भावै ॥ कह "गंगापरसाद" होय हरि भक्ति रँग रँग्यो । देखि (विहारिविहार) परम उर आनँद उमग्यो ॥ १ ॥

काशी निवासी कविवर वावू रामकृष्ण वर्म्मा (वीर) कविकृत ।

दोहा ।

सतसैया के दोहरा जगजाहिर सुखसार ।
व्यासअम्बिकादत्त तहँ कुण्डल किये अपार ॥ १ ॥
कुण्डलिया को ग्रन्थ कोउ पूरो मिलै न आज ।
वाद अढ़ाई सौ वरस व्यास कियो सो काज ॥ २ ॥
जोड़ परत जान्यो नहीं रस एकै दरसाय ।
उक्ति जुक्ति मय चौगुनी सौगुन सुख सरसाय ॥३॥
एती टीका आजु लौं जानी कोऊ नाहिं ।
जेती टीका के चरित लिखि भूमिका माँहिं ॥४॥
जीवनचरितन लिखन में केते कीने खोज ।
केते ग्रन्थन देखि कै लेख लिखे भरि ओज ॥ ५ ॥
सतसैया की पूर्ति की तिथि पै हो सन्देह ।
याको उत्तर आजुलौं कोउ न कियो थछेह ॥६॥

ले सुकलादिक मास कों पूरी गनना ठानि ।
सिद्ध करी छठ सोम कों सुकवि भूमिका मानि ॥७॥
रह्यौ विहारीवंस पै झगरो अतिहि प्रसिद्ध ।
सुकवि मिटायो सोउ कियो चौबे बंस सुसिद्ध ॥८॥
भिन्न २ टीकान के क्रम मैं हैं अति भेद ।
याभों टीका खोज मैं होत हतो अति खेद ॥ ९ ॥
अतिहि परिश्रम कै सुकवि तिलकक्रमन के अंक ।
सव दोहन के नाम दै लिखि दीने निःसंक ॥१०॥
अहै कहां को दोहरा कौन न मान्यो कौन ।
दर्पन सो सव प्रगट भो उड़िगो संसय जौन ॥११॥
ललित भूमिका को भयो एक दूसरो ग्रंथ ।
कवि के जीवनचरित को सुकवि चलायो पन्थ ॥१२॥
कोसलेस महराज धनि जिनको आश्रय पाइ ।
सुकवि व्यास या ग्रन्थ कोँ प्रगट कियो चित लाइ ॥१३॥
जौलौं कविजन के हिये रस को रहै हुलास ।
तौलौं जग या ग्रन्थ को दूनों बढ़ै प्रकास ॥ १४ ॥

कवित्त ।

दोहा की सु जग में प्रसिद्ध सतसई जाको सुकवि विहारीदास खास रचवैया है ।
ताकी समता में आज आँखिन विलोक्यो या विहारी को विहार बीर साँचो कहवैयाहै ॥
परम रसीली भाव भेदन लसीली जाकी कविता गसीली चारु चित्त की हरैया है ।
सुकवि सुजान जू ने सुकवि सुजान हेतु कुंडल कै कीनी या अनूप सतसैया है ॥१॥

काशीराजाश्रित सीतलाप्रसाद कविकृत ।

रस की सुमञ्जरी से दोहा हैं विहारी जू के कृष्णकवि कीनी मञ्जुताई तासु दो गुनी ।
सूरति मिसर हाव भाव अलङ्कार साजि महिमा करी है निज कविता से चौगुनी ॥
हरिपरसाद काव्यकला दरसाइ तापै सीतल वखाने मधुराई कीनी नौ गुनी ।
व्यास अम्वादत्त के विहारी के विहार मांहि कुण्डलिया कीनी सतसई सोभा सौगुनी ॥

FROM G. A. GRIERSON ESQUIRE.

BANKIPUR.
12th April, 1898.

Dear Sir,

I return with thanks your set of forms of the Bihari Bihar, and congratulate you on the successful completion of your work. I read the introduction with special interest and was much gratified to see so much fresh light thrown on difficult historical questions. Indeed I have no hesitation in saying that it is a model of historical research conducted with industry and sobriety, both of which are, unfortunately, too often abandoned by writers in this country in favour of credulity and hasty conclusions.

Regarding the date given in the 708th *Doha* you are right that it falls on a Monday according to the "Amánta" reckoning. As I wrote to you the other day it is equivalent to Monday March 31st, 1662 A. D. old style. There is now no doubt on that point and you have cleared away one of the difficulties which I felt when preparing my edition of the Lalchandrika. Personally, however, I still have doubts as to whether this Doha was really written by Bihari Lal.

Your account of the various commentators on the Satsai is a most valuable contribution to the Literary History of Hindostan, and my only regret is that, in your kindness, you should have given so disproportionate a space to my share in this work.

श्रीयुत जी० ए० ग्रेयर्सन् साहब बहादुर के पत्र का भावार्थ ।

प्रिय महाशय,

आप के बिहारीबिहार के छपे हुए पत्रों की पुस्तिका को धन्यवादपूर्वक लौटाता हूं और आप को सफलतापूर्वक ग्रन्थ पूरण करने की बधाई देता हूं। मैंने आप की भूमिका को विशेष रुचिपूर्वक पढ़ा और इतिहास सम्बन्धी कठिन वादग्रस्त विषयों पर ऐसी नवीन आभा का प्रचार देख हर्ष से गद्गद हो गया।

वस्तुत: मैं मुक्त कण्ठ से कहता हूं कि ऐतिहासिक निर्णय का यह एक निदर्शन हुआ है जो ऐसे श्रम और गम्भीरता से सम्पादित किया गया है कि इस देश के ग्रन्थ लेखकों से प्राय: त्वरित निश्चय और गतानुगतिकता (भोलापन) के कारण (वैसे श्रम और गाम्भीर्य) नहीं हो बताते हैं॥

७०८ संख्या के दोहे वाली मिति के विषय में आपका कहना सत्य है कि अमान्त गणना (शुक्लादि) के अनुसार इस दिन सोमवार पड़ता है। यह प्राचीन रीति के अनुसार १६६२ को ३१वीं मार्च थी जैसा कि थोड़े दिन हुए मैंने आप को लिखा था। अब इस विषय में कोई सन्देह न रहा और आपने एक झगड़े को निमटा दिया जो मेरे लालचन्द्रिका के प्रकाश के समय मुझे बड़ा कठिन विदित होता था। तथापि यह मेरा निज सन्देह अभी तक है कि वह दोहा सचमुच बिहारी का बनाया है कि नहीं॥

सतसई के नाना व्याख्याकारों के जो आपने चरित्र लिखे हैं यह भारत के साहित्य के इतिहास के लिये बड़ा ही उपयोगी लेख हुआ है मैं केवल इतने ही से कुछ लज्जित हूं कि आपने कृपापूर्वक इस ग्रन्थ में मेरे विषय में इतना अधिक लिखा है।

(काशी निवासी बाबू राधाकृष्णदास लिखित)

"बिहारीबिहार"

भाषाकविकुलमुकुटमणि, भाषा कविता के अगाध सागर, "घट नहि सिन्धु समाय" की कहावत को विपरीत करनेवाले श्री बृन्दाबनबिहारी के प्रेमाधिकारी बिहारी, का नाम कौन ऐसा हिन्दी का जाननेवाला है जिसके हृदय में बिहार न करता होगा! कौन ऐसा भाषाप्रेमी होगा जिसके हृदय को इनकी कविता ने मोहित न कर लिया होगा! उनके विषय में कुछ कहना केवल "छोटे मुंह बड़ी बात" कहना है। इस अनूठे कवि के आश्रय पर कितने ही महान कवियों ने अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखाया है, इनके दोहों पर कितनों ही ने टीका, कितनों ही ने कुण्डलिया, कितनों ही ने कवित्त, कितनों ही ने भाषान्तर करके गौरव पाया है, एतद्देशीय ही नहीं वरन विदेशीय विद्वानों ने भी इनके अमूल्य कवितारत्न को अपने हृदय सम्पुट में आदरपूर्वक स्थान दिया है।

इनके गूढ़ाशय भावों को स्पष्ट करने तथा अपनी ओर से और भी उन्हें अलङ्कृत करने के लिये कितने ही महान् कवियों ने कुण्डलिया बनाईं परन्तु खेद का विषय है कि पूरी सतसई पर कुण्डलिया किसी की भी लोगों को प्राप्य नहीं हैं, इस अभावको दूर करने के लिये हमारे मित्र साहित्याचार्य पण्डित अम्बिकादत्तव्यास जी समस्त भाषा प्रेमियों के धन्यवादार्ह हैं। परन्तु केवल इतना ही करने के लिये हम उन्हें धन्यवाद नहीं देते वरञ्च उनका ऐतिहासिक अनुसन्धान विशेष प्रशंसनीय और आदरणीय है।

इस देश के लोगों में इतिहास पर अधिक रुचि न होने के कारण बड़ी ही हानि हुई है, इतने थोड़े काल के हुए बिहारी कवि का ठीक वृत्तान्त नहीं मिलता यह कैसे खेद की बात है। व्यासजी ने इस ओर विशेष ध्यान देकर बड़ा उपकार किया है और दूसरों को उदाहरण दिखलाया है। कवि बिहारी तथा उसके टीकाकारों की खोज में जैसा परिश्रम इन्होंने किया है और सफलता प्राप्त की है वैसी आज तक मेरी समझ में कदाचित् ही किसी को प्राप्त हुई हो। बिहारी सतसई की समाप्ति की तिथि आदि के विषय में चिरकाल से बड़े झगड़े चले आते थे पर

अब व्यासजी के श्रम के द्वारा वे निर्विवाद हो गये। मैं व्यासजी का बड़ा उपकार मानता हूं कि उन्हों ने ग्रन्थ छपने के पूर्व ही इसे देखने का अवसर मुझे दिया—

आनन्दवनविहारी व्यासजी ने विहारविहारी होकर इस "बिहारीविहार" द्वारा निःसन्देह भाषासाहित्य का उपकार और अपनी अटल कीर्ति का स्थापन किया है।

इस अवसर पर श्री अयोध्यानरेश महाराजा बहादुर आनरेबुल प्रतापनारायणसिंह के० सी० आई० ई० साहब को भी मैं क्या समस्त हिन्दी के प्रेमी धन्यवाद देते हैं कि जिनके आश्रय से व्यासजी के इस ग्रन्थरत्न का प्रकाश हुआ॥

श्री राधाकृष्णदास—काशी।

छपराहिन्दीसाहित्यसमाज के कार्यसम्पादक बाबू जगन्नाथशरण बीए बीएल् लिखित

दोहा। सुभग सतसई पूर्ण ससि बिकसत कला उदोत।
कुण्डलिया की कर छटा जगमगात नव जोत॥
विविध भाव भूषित कियो ग्रन्थ विहारीलाल।
सुकवि याहि भूषित कियो कुण्डलिया छवि माल।
आप रसीली सतसई लखि कवि रहे बिकान।
भूषण कुण्डलिया दिये तेहिँ कह सुकवि सुजान॥
निज मति बुद्धि विकास ते मथि सागर इतिहास।
ग्रन्थकार बहु कविन के जीवन किये प्रकास॥

ग्रन्थ से इसकी भूमिका पर ग्रन्थकर्त्ता का कम आग्रह नहीं हुआ है। क्योंकि जो २ साहित्य सम्बन्धी ऐतिहासिक विषय अत्यन्त परिश्रम से इकट्ठे किये हैं वैसे हिन्दी की पुस्तकों की भूमिका में कम पाये जाते हैं। भूमिका के पढ़ने वालों के लिये विहारी का वंश समय आदि निर्व्विवाद हो जाता है। जिस दोहे को ग्रीयर्सन साहेब प्रभृति ने जाल ठहराया था। उसको आप ने किस परिश्रम और तर्क से असली होना सिद्ध करके और अनेक युक्ति और प्रमाणों से सतसई का सं० १७१९ में पूर्ण होना निश्चय किया है। अब तक विहारी के दोहे से फुट कर शब्दों को लेकर अपने कल्पित अनुमानों से फैला कर उनका जीवन लोगों ने लिखा था। पर उस से इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं था। विहारी के जीवन लिखने वालों में सबसे अधिक प्रशंसा औ धन्यवाद आपही का है॥

भूमिका में इसके सिवा और भी अनेक विषय हैं जिस से ग्रन्थकर्त्ता के परिश्रम तथा अन्वेषण (Research) का परिचय मिलता है जो सदैव हिन्दी साहित्य के पाठक को उपयोगी है। विहारीसतसई के २६ व्याख्याओं के नाम और उनके रचयिताओं के संक्षिप्त जीवन दिये हैं। इनमें कई एक ऐसे भी हैं जिनका नाम भी आज तक विदित न था। किस परिश्रम से विहारी के समय के क-

वियों का पता लगा के उनकी नामावली दी है। सारी भूमिका ऐतिहासिक विषयों से भरी है जिसके पढ़ने में कुण्डलियाओं से कम आनन्द नहीं होता। धन्य हैं महाराजाधिराज कोशलेश्वर जिनके आश्रय से ऐसा अपूर्व ग्रन्थरत्न प्रगट हुआ।

अख़्तियारपुरनिवासी अभिनवकवि बाबू ब्रजनन्दनसहाय कृत।

रसिकविनोद अरु कविन प्रमोद कान कोविद महान कहँ अति सुखदाई है।
व्रज जू सुदोहरे विहारी के अभूषित कै कुण्डली मण्डकदार सुकवि बनाई है॥
काव्य के खजाने की अनूपम सुकृति एक सिरी कवि अम्बादत्तव्यास दिखराई है।
दौरो कविजन जयमाल पहिराओ इन्हें चहुंवा विहारी के बिहार की बधाई है॥

दोहा विहारी के मूच समान सो अर्थ औ शब्द के बाँटे सुधार हैं।
भाव के मोतिन सों ज्यों गुँथे ब्रज धार कै धार अधार सिँगार हैं॥
भाष्य से कुण्डल तापै रचे सुकवी रस सानै विवेक अगार हैं।
देख्यो सुन्यो न कहूँ कबहूँ प्रगट्यो जग जैसो बिहारी बिहार हैं॥

श्री व्यास रामशङ्करशर्म्म लिखित।

श्रीयुत पण्डित अम्बिकादत्त व्यास जी साहित्याचार्य्य का बनाया हुआ विहारी-विहार मैंने देखा, अतिप्रसन्न हुआ। कुण्डलियां ललित, सरस, और भाव पूर्ण हैं। उपोद्‌घात में सप्तशती के विषय में जो कुछ लिखा गया है उससे व्यासजी की बहुज्ञता सूचित होती है और उसमें अधिकांश ऐसे विषय हैं जो आजतक लोगों को विदित न थे। दोहों की अनुक्रमणिका और उनके क्रम का विवरण जो पुस्तक के अन्त में दिया गया है लोगों को उस से बहुत सुबिधा होगा। व्यासजी ऐसे प्रसिद्ध पुरुष के विषय में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उनकी योग्यता से प्रायः देशमात्र परिचित है। इस स्थान पर हम महामान्य आदरणीय श्रीमन्महाराज अयोध्यानरेश की गुण-ग्राहकता की विशेष सराहना करते हैं जो श्रीमान् ने व्यास जी के परिश्रम और गुण पर रीझ कर विहारीविहार के प्रादुर्भाव में पूरी सहायता की। उदारता के अतिरिक्त महाराज की अपूर्व रसिकता और भाषाकविता का प्रेम इससे स्पष्ट है॥

गङ्गापूर।
१८–५–९८।

श्रीव्यास रामशङ्करशर्म्मा

शुद्धाशुद्धिपत्रम्—भूमिका।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध।	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१५	वत्तीस	पचीस।	३४	१५	मश्रग्गी	श्रग्गी।
७	२	नाम राय	नाम—राय।	४१	२०।१८	'कहते हैं' के आगे और दो पंक्ति लेख है सो नहीं चाहिये।	कहते हैं॥
१४	२१	१८४१	१५४२।				
२०	२	पूर्वार्द्ध छुटगयाहै	"विलसद्दहरिप्रसादो हरिप्रसादो बुधान् नीति।"	५१	१५	सेलिस्वरी	श्रूस्वरी
				५३	१८	स्व।तन्त्रेण	स्वातन्त्रेण।

शुद्धाशुद्धपत्रम्।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१८	१	जन	जनु।	१४०	८	जै जै कहि	जै कहि मुख
२०	२१	कम्मास	कम्मास वा वह सुई जो मक्का शरीफ ही की ओर रहती है।	,,	१९	ह्र	ह्र।
				१४३	१६	वेद	वेंद।
				१४७	६	ध।रज	धीरज।
				१५१	१८	लौहिताम्	लौहित्यम्
१७	१४	सधि	सुधि।	१५२	२	छनन	छननन।
६२	२२	समास	समास।	१५४	७	ह्र	ह्रु।
६४	२४	अस्वेन	अश्वेन।	१५९	१	कह्रौ	कह्रौ।
६५	१२	छूवत	छुवत।	१६२	८	कौन	कौन।
७७	२२	कहाँ	कहा।	,,	१४	झूमक	झूमत।
८०	११	रहै	रहे।	१६३	१२	हॉर	हरि।
८७	१२	झपटन	झपट्टन।	१६४	२०	आनक	सुखकन्द।
९१	५	सोँ	कोँ।	१६९	५	झिलौ	झिल्लौ।
९४	६	माहै	मोह।	१७८	१५	विन्त	वित्त।
१०६	६	अन्यारे	अनियारे।	१८५	८	कह	कहै।
१२५	९	चहै	वहै।	१८७	१७	समान	सनमान।
,,	९	छूटत	छुटत।	१८९	१८	कर्णा	कर्ण।
,,	११	क	कै।	२०६	१८	वनी रहौ	भलीहौ वनीहौ
१२७	३	सिचान	हिचान।	२११	३	दोखि	देखि।
,,	१४	दह	देह।	२१५	८	सूहृदता	सुहृदता।
१२८	१	लमुझावट	समुझावट।				

दौड़िये, दौड़िये, चूकिये मत।

पण्डितअम्बिकादत्तव्यासविरचित

ये ग्रन्थ हमारे यहां मिलैंगे।

अवतारमीमांसा १)

इन दिनों भगवान् के अवतार लेने के विषय में भी नवयुवकों को नाना प्रकार की शङ्कायें उड़ा करती हैं और हमारे दयानन्दी लोग अवतारों के विषय में मनमानी डेढ़ दाल की खिचड़ी पकाया करते हैं। पर ये सब मन के लड्डू तभी तक हैं जब तक यह ग्रन्थ न देखा जाय॥ इस ग्रन्थ में उन सब शङ्काओं का निरास किया गया है, जितनी शङ्का हो सकती हैं और वेदादि समस्त प्रमाणों से अवतार सिद्ध किये गये हैं॥ विशेष यह है कि इस ग्रन्थ में गोकुल के गोस्वामी श्री १०८ जीवनलालजी महाराज का चित्र है और ग्रन्थकर्त्ता पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का भी चित्र है॥

संस्कृत के पठन पाठन वाले सज्जनों के लिये अत्यन्त उपयोगी बात इसमें यह रखी गई है कि इस ग्रन्थ के अन्त में अवतारमीमांसाकारिका श्लोकबद्ध रखी गई हैं। इससे छात्रों के पठन पाठन का और विषय के याद करने का बड़ा सुभीता होगा॥

गद्यकाव्यमीमांसा।)

उपन्यास किसे कहते हैं, उपन्यास कितने प्रकार के हो सकते हैं, उनके विषय में प्राचीनों ने क्या कहा है अब क्या कहना चाहिये इत्यादि गम्भीर विषय की आलोचना का एक मात्र ग्रन्थ। हिन्दी भाषा में क्या संस्कृत में भी आज तक ऐसा ग्रन्थ नहीं बना है। हिन्दी के तथा साहित्य के जो प्रेमी हों सो अवश्यही इसको संग्रह करें।

रामसहस्रनाम रामायण ॥)

इस ग्रन्थ में रामचन्द्र का सहस्र नाम है। और ये इस शृङ्खला से हैं कि क्रमशः समस्त रामायण सातों काण्ड की कथा आंखों के आगे आ जाती है। वैष्णव क्या धर्मिष्ठ मात्र के लेने योग्य है॥ इसके अन्त में और भी कई एक स्तोत्र हैं॥

स्वामिचरितामृत।)

काशीवासी जगत्प्रसिद्ध स्वामी भास्करानन्द सरस्वती जी का जीवनचरित्र। सरल कवित्त सवैये आदि छन्दों में।

तर्कसंग्रह भाषा टीका सहित दाम ॥)

यह न्यायसमुद्र में घुसने का पहला ग्रन्थ है। औ इसकी भाषा टीका ऐसी है कि इस कठिन न्याय शास्त्र के सिंह को भी गौ बना दिया है।

भाषा ऋजुपाठ—दाम ।/)

जो प्रायः इन्ट्रेन्स स्कूलों के चौथे क्लास में ऋजुपाठ पढ़ाया जाता है उसी का हिन्दी में उल्था, यह छात्रों का अत्यन्त ही उपयोगी उत्तम उत्तम कहानियों से भरा तीसरी बार छपा।

भाषाऋजुपाठ कैथी—दाम ।/)

वही ग्रन्थ कैथी अक्षरों में छपा।

भाषाऋजुपाठ प्रथम परिच्छेद—दाम ≠)

उसी ग्रन्थ का एक छोटा भाग, कैथी में औ हिन्दी में अलग अलग।

क्षेत्रकौशल—दाम ॥)

रेखागणित का अपूर्व ग्रन्थ जिसमें जोड़ने घटाने के क्रम से रेखागणित चलाया है, जो समझें उनके लिये रत्न है।

कलियुग औ घी—दाम ≠)

एक हास्य रूपक, जिसमें कलियुग में घी आदि की कैसी दुर्दशा है सो दिखलाई है हँसते हँसते उपदेश पाओ।

पावसपचासा—दाम ≠)

इसमें पचास कवित्त वर्षा ऋतु के वर्णन में है। जिसको कुछ भी कविता का रस है उनके लिये यह सर्वस है।

ताशकौतुकपचीसी—दाम ॥)

तास के पचीस इन्द्रजाल।

महाताशकौतुकपचासा—दाम ॥।)

तास के अत्यन्तही अपूर्व पचास खेल। जिसके आगे भूत विद्या औ कर्णपिशाची झख मारे।

चतुरंगचातुरी—दाम १)

शतरञ्ज खेलने की अपूर्व किताब जिसमें घोड़े की चाल किलों की बनावट औ मात करने के नकशे देखनेही लायक हैं। इसे देख बड़े बड़े खिलाड़ी दांतो के नीचे अँगुली दाबते हैं।

पुष्पवर्षा—दाम ≠)

यह किताब महारानी के जुबली उत्सव पर बनाई गई है। इसमें दो गन्धर्वों को भूमण्डल यात्रा के बहाने से महारानी विक्टोरिया के इतिहास तथा प्रताप का वर्णन है औ जहां जहां महारानी का राज्य है उन स्थानों का ऐसा वर्णन किया गया है कि साहित्य औ भूगोल विद्या दोनों का आनन्द इकट्ठा टपकता है।

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन—दाम ⁄)॥

(पण्डितपक्षार)—इसमें संस्कृत में सौ वाक्य है औ प्रत्येक में एक एक दो दो व्याकरण की अशुद्धि हैं पर वे ऐसी गुप्त रक्खी गई हैं कि शीघ्र नहीं समझ में आतीं यह इन्ट्रेन्स के छात्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

* धर्म की धूम—दाम ⁄)

यह पोथी अनुराग औ उत्साह से परिपूर्ण गीतों से भरी है। जिसे कुछ भी भारत पर प्रेम है, जाति पर अनुराग है धर्म पर विश्वास है औ उन्नति पर उमङ्ग है उसका यह जीवन धन है (इसके गीत धर्मसभाओं के उत्सवों में प्रायः गाये जाते हैं)

द्रव्यस्तोत्र—दाम)॥

संस्कृत में द्रव्य के गुण दोष के वर्णन में व्यंगमय काव्य।

* भारतसौभाग्य—दाम ॥)

महारानी विक्टोरिया के जुबली महोत्सव पर नाटकाकार काव्य। इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है क्योंकि इसका पूरा आनन्द इसके देखनेही से मिलेगा इसकी लम्बी चौड़ी प्रशंसा इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध अखबारों में भी छपी है।

ललितानाटिका—दाम ।)

यह पोथी व्रजभाषा में बनी है इसकी बातूनी बोल चाल औ छन्दों की रचना अतिही मनोहर है। इसमें एक हास्य औ शृङ्गार रसमय कृष्णलीला पर अभिनय है बस पढ़ते जाओ हँसते जाओ प्रेम में मत्त होते जाओ औ आनन्द के आंसू बहाते जाओ।

* गोसङ्कट नाटक—दाम ⁄)॥

यह अत्यन्तही अपूर्व नाटक है इसमें यवनों का गो पर अत्याचार औ हिन्दुओं की उनसे बात चीत फिर शाह अकबर के यहां उनकी नालिश फिर शाह अकबर की आज्ञा से गोवध का उठ जाना औ हिन्दुओं का महोत्सव मचाना यह सब अति मनोहरता से वर्णित है। यह इतना मधुर है कि हाथ में लेने पर हाथ से किताब नहीं छुटती है। दाम बहुत ही कम रक्खा है।

मन की उमंग—दाम ।)

इसमें छोटे २ आठ अभिनय औ एक छोटी सी भजनावली है; इसमें एक एक अभिनय ऐसे हैं जिनकी पटना, छपरा, मोतिहारी, आदि स्थानों में अनेक अनेक बेर क्रीड़ा हो चुकी हैं औ होती हैं। जिनने क्रीड़ा देखी वे आनन्द से जड़ हो गये।

सुकविसतसई—दाम ॥)

इसमें भी कृष्ण की बाललीला पर भांति भांति की उक्ति युक्तियों से भरे ७०० सौ दोहे हैं, यह प्रेमीभक्त पुरुषों के लिये अमृत का मोदक है जिन्हें कबिता औ प्रेम की चाह है वे इसके लेने से न चूकें।

दुःखद्रुमकुठार दाम—ℊ)

यह ग्रन्थ संस्कृत में है ज्ञान भक्ति औ वैराग्य से भरा है तिस पर भी काव्य है इसका गद्य देखते ही मन मोहित हो जाता है।

Practical Sanskrit Part, I.

संस्कृताभ्यासपुस्तक प्रथम भाग—दाम ।ℊ)

अङ्गरेजी में—जो प्रायः इन्ट्रेन्स स्कूलों के ३ औ ४ वर्गों में पढ़ाई जाती है।

Practical Sanskrit Part, II

संस्कृताभ्यासपुस्तक द्वितीय भाग—दाम ॥)

यह उसी ग्रन्थ का दूसरा भाग है॥ हँसी खेल में संस्कृत विद्या सिखलाई जाती है॥

Children's Sanskrit Grammar.

बालव्याकरण—दाम ०)

यह प्रायः इन्ट्रेन्स स्कूलों के ५ वर्ग में पढ़ाया जाता है। यह अंगरेजी में छोटा सा संस्कृत का व्याकरण है बड़े २ व्याकरणों के कान काटता है।

कथाकुसुम—दाम ॥ℊ)

संस्कृत में छोटी छोटी कहानी संस्कृत आरम्भ करनेवालों का अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ, ज़िला स्कूलों के ४ वर्ग में प्रायः पढ़ाया जाता है, इसमें कहानियों के अनुसार तसवीरें भी हैं।

रत्नाष्टक—दाम ।)

संस्कृत में कहानियों सहित नीति के भरे आठ उपदेश यह ग्रन्थ प्रायः इन्ट्रेन्स स्कूलों के तीसरे वर्ग में पढ़ाया जाता है।

बात बात में बात—दाम ℊ)

कथाकुसुम का हिन्दी में तर्जुमा, हिन्दी पढ़ने वालों के लिये भी उपयोगी। (यह ग्रन्थ कैथी में भी छपा है इसमें इतिहास सम्बन्धी चित्र भी हैं॥

उपदेशलता—दाम ।)

इसका आनन्द इसके पढ़नेही से ज्ञात होगा। यह ग्रन्थ नागरी में छपा है औ कैथी में भी छपा है।

* दयानन्दमतमूलोच्छेद—दाम ॥)

दयानन्द के मत खण्डन पर पण्डित अम्बिकादत्तव्यास की वक्तृता अंगरेजी औ उर्दू तर्जुमा सहित।

अबोधनिवारण—दाम ≠)

दयानन्द की भूलों का संग्रह। जो दयानन्दी हैं और जो सनातन धर्मावलम्बी है दोनों के अवश्य देखने योग्य।

हो हो होरी—दाम)॥

नाम ही से समझ जाइये।

झूलन झमक्क—दाम)॥

पढ़ने से ऐसा मालूम होगा कि मानों अयोध्या या वृन्दावन में खड़े हैं। और झूलन की सैर कर रहे हैं।

पातञ्जलप्रतिबिम्ब—दाम ⁄)

संस्कृत में योगसूत्रों पर कारिका, सभी तारीफ करते हैं तो हम क्या कहैं।

साङ्ख्यतरङ्गिणी—दाम ॥)

साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी कारिका, भाषा टीका औ अपूर्व भूमिका सहित।

स्वर्गसभा—दाम ≠)

हिन्दी भाषा में अपने ढङ्ग का फरद, छोटा उपदेशक उपन्यास॥

पुष्पोपहार—दाम ≠)

गाने लायक छन्दों में, संस्कृत में शिव सरस्वती लक्ष्मी विष्णु आदिके अनेक स्तोत्र औ भजन।

* रेखागणित—दाम ।)

पहला अध्याय। उत्तम उत्तम प्रश्नों सहित ४ भागों में विभक्त और जिसकी संज्ञा दोहे और चौपाइयों में भी टिप्पणी में लिखी हैं नागरी औ कैथी दोनों में अलग अलग छपा है।

रसीली कजरी—दाम ⁄)

तरह तरह की कजलियों की किताब, इसका आनन्द पढ़ने औ गानेही से मिलेगा।

विहारीविहार—दाम २॥)

विहारी जी के दोहों पर कुण्डलिया का ग्रन्थ॥

सांख्यसागरसुधा—दाम ≢)

यदि कुछ भी सांख्य में प्रेम रखते हो तो अवश्य देखिये। यह ग्रन्थ सांख्य शास्त्र के समुद्र का जहाज है। मूल संस्कृत। टीका भाषा।

मूर्तिपूजा—दाम ॥)

जिसको मूर्त्ति पूजा में कुछ भी शङ्का हो सो इस ग्रन्थ के देखने से वञ्चित न रहे, और जिसे मूर्त्ति पूजा पर औरों के सन्देह मिटाने की इच्छा है वह भी इसे अवश्य ही ले और जो इसके खण्डन का घमण्ड रखता हो वह भी इसे अवश्य ही खरीदे। इसमें पण्डित अम्बिकादत्त व्यास का वह उपदेश है जिसे सुन सैकड़ों दयानन्दी सभा आपही टूट गई और हजारों नास्तिक से आस्तिक हो गये।